भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें

[आगरा विश्वविद्यालय के संशोधित पाठ्य-क्रमानुसार]

लेखक

बी० पी० जौहरी

प्रिंसिपल एण्ड प्रोफेसर आफ हिस्ट्री ऑफ ऐजूकेशन

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज

दयालबाग

एवं

पी० डी० पाठक

लेक्चरार इन हिस्ट्री ऑफ ऐजूकेशन

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज

दयालबाग

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड आगरा

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य ८.५०

मुद्रक
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा

भूमिका

यह पुस्तक आगरा विश्वविद्यालय के बी० टी० के संशोधित पाठ्य-क्रम के अनुसार लिखी गई है। इसके लेखन में पाठ्य-क्रम के अनोखेपन के कारण अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। पाठ्य-क्रम में यह निश्चित रूप से नहीं बताया गया है कि छात्रों को भारतीय शिक्षा के इतिहास का किस समय से अध्ययन करना है। स्वतन्त्रता से पूर्व अति भ्रमोत्पादक शब्द है क्योंकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ने प्राचीनकाल से लेकर १९४७ तक स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं किया। फिर शिक्षा के समस्त इतिहास के लिए, जो अत्यधिक लम्बी अवधि में से होकर गुजरता है केवल ६ लेक्चर निर्धारित किये गये हैं। क्या यह सम्भव है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में जो परिवर्तन समय-समय पर हुये हैं, उनको ६ लेक्चरों में समाप्त कर दिया जाय? यदि पाठ्य-क्रम का उद्देश्य यह है कि छात्राध्यापकों को विभिन्न शिक्षा-पद्धतियों आयोगों और समितियों के नाम बता दिये जायें—क्योंकि इससे अधिक ६ लेक्चरों में नहीं हो सकेगा—तो उससे अध्ययन करने वालों का क्या हित होगा? सबसे बड़ी परेशानी यह है कि पाठ्य-क्रम को दो भागों में तो विभाजित कर दिया गया है पर इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं है कि किस भाग में से कितने और कितने नम्बर के प्रश्न दिए जायेंगे। ऐसी स्थिति में पेपर-सेटर इस बात के लिये स्वतन्त्र है कि वह परीक्षा में कुछ भी पूछ ले। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर पुस्तक की रचना की गई है जिससे कि इसको पढ़ने के बाद छात्र प्रत्येक प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में सफल हो सकें। हमने इस पुस्तक के अन्त में 'अपव्यय एवं अवरोधन' का एक अध्याय अपनी ओर से जोड़ दिया है क्योंकि यह बात सर्व विदित है कि अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या शिक्षा के सभी स्तरों पर है और किसी भी स्तर पर इसके सम्बन्ध में प्रश्न दिया जा सकता है। हम श्री बाबूराम शर्मा के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ा।

लेखक गण

विषय सूची

अध्याय १

वैदिक शिक्षा

विषय-प्रवेश १, शिक्षा का तात्पर्य १, शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्श २, शिक्षा की व्यवस्था ३ शिक्षा के आधार भूत तत्व एवं विशेषताएं ४।

अध्याय २

बौद्ध शिक्षा

विषय प्रवेश ११, शिक्षा की व्यवस्था ११ सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा १२, उच्च शिक्षा १३, शिक्षा के आधारभूत तत्व एवं विशेषताएँ १४, ब्राह्मणीय और बौद्ध शिक्षा की समानता १६, ब्राह्मणीय और बौद्ध शिक्षा की असमानता २१।

अध्याय ३

मुस्लिम-कालीन शिक्षा

विषय-प्रवेश २४ मुस्लिम शासकों के समय में शिक्षा २५, शिक्षा के उद्देश्य ३० शिक्षा की व्यवस्था ३१ शिक्षा के आधारभूत तत्व एवं विशेषताएँ ३३, स्त्री शिक्षा ३५ व्यावसायिक शिक्षा ३६।

अध्याय ४

आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ (मिशनरी प्रयास)

विषय प्रवेश ४० मिशनरियों के शिक्षा-कार्य ४१ चार्ल्स ग्रांट ४२ १७९३ और १८१३ के आज्ञा-पत्र ४३ १८१३ के बाद मिशनरी प्रयास ४३ मिशन स्कूलों की विशेषताएं ४४।

अध्याय ५

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य (१६०० १८३३)

विषय प्रवेश ४६ कलकत्ता मदरसा ४७ बनारस संस्कृत कॉलेज ४७ फोर्ट विलियम कॉलेज ४८ १८१३ का आज्ञा-पत्र ४८ कम्पनी की शिक्षा नीति (१८१३ ३३) ४८।

अध्याय ६

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद और निस्यन्दन सिद्धान्त

विषय प्रवेश ५ प्राच्यवादी ५० पाश्चात्यवादी ५१ मैकाले का विवरण पत्र ५१ बैंटिक की स्वीकृति ५३ भारतीय शिक्षा को मैकाले की देन ५३ विवाद का अन्त ५८ निस्यन्दन सिद्धान्त ५५।

अध्याय ७

शिक्षा की प्रगति (१८३३ १८५३)

विषय प्रवेश ५८ बंगाल ५८ बम्बई ५६ मद्रास ६१ पश्चिमोत्तर प्रान्त ६१ पंजाब ६२ उच्च शिक्षा ६२।

अध्याय ८

वुड का घोषणा-पत्र (१८५४)

विषय प्रवेश ६४ घोषणा पत्र की सिफारिशें ६४ घोषणा पत्र का मूल्यांकन ६७।

अध्याय ९

शिक्षा की प्रगति (१८५४ १८८२)

विषय प्रवेश ७१ प्राथमिक शिक्षा ७१ माध्यमिक शिक्षा ७३ उच्च शिक्षा ७४।

अध्याय १०

भारतीय शिक्षा-आयोग (१८८२ १८८३)

विषय प्रवेश ७५ आयोग का कार्य-क्षेत्र एवं उद्देश्य ७६ आयोग की सिफारिशें और सुझाव ७७ आयोग का मूल्यांकन ८० ।

अध्याय ११

शिक्षा की प्रगति (१८८२ १९०२)

विषय प्रवेश ८२ प्राथमिक शिक्षा ८२ माध्यमिक शिक्षा ८३ उच्च शिक्षा ८३ ।

अध्याय १२

लार्ड कर्जन की शिक्षा-नीति (१८९९ १९०५)

विषय-प्रवेश ८५ शिमला शिक्षा-सम्मेलन ८६ शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९०४) ८६ भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (१९०२) ८७ भारतीय विश्व विद्यालय अधिनियम (१९०४) ८८ विश्वविद्यालय अधिनियम का मूल्यांकन ८९ कर्जन और माध्यमिक शिक्षा ८९ कर्जन और प्राथमिक शिक्षा ९० भारतीय शिक्षा को कर्जन की देन ९० ।

अध्याय १३

राष्ट्रीय आन्दोलन का शिक्षा पर प्रभाव (१९०५ १९२१)

विषय प्रवेश ९२ राष्ट्रीय शिक्षा की माँग ९३ राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा ९३ राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण ९४।

अध्याय १४

शिक्षा की प्रगति (१९०५ १९२१)

विषय-प्रवेश ९६ शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९१३) ९६, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (१९१७) ९- आयोग की सिफारिशें और सुझाव ९८ आयोग का मूल्यांकन ९९ उच्च शिक्षा १००, माध्यमिक शिक्षा १००, प्राथमिक शिक्षा १०१ प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास १०२ बड़ौदा नरेश का प्रथम प्रयास १०२ गोखले का विधेयक १०२ अनिवार्य शिक्षा अधिनियम १०४ ।

अध्याय १५
शिक्षा की प्रगति (१९२१ १९३७)

विषय प्रवेश १०६ द्वैध-शासन की स्थापना १०६ हर्टाग समिति (१९२९) १०७ उच्च शिक्षा १०७ माध्यमिक शिक्षा १०८ प्राथमिक शिक्षा १०९।

अध्याय १६
शिक्षा की प्रगति (१९३७-१९४७)

विषय प्रवेश १११ केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-कार्य १११ केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ११२ केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय ११२ केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय ११२ विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ११२ ऐबट एण्ड वुड रिपोर्ट (१९३७) ११२ सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव ११३ व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी सुझाव ११३ उच्च शिक्षा ११४ माध्यमिक शिक्षा ११४, प्राथमिक शिक्षा ११४।

अध्याय १७
बेसिक शिक्षा

विषय प्रवेश ११७ महात्मा गांधी के शिक्षा विषयक विचार ११७ बेसिक शिक्षा का जन्म ११८ जाकिर हुसैन समिति ११८ बेसिक शिक्षा की रूप रेखा ११९ पाठ्य-क्रम ११९ अध्यापन विधि ११९ बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त १२ बेसिक शिक्षा के उद्देश्य १२१ बेसिक शिक्षा की विशेषताएं १२२ बेसिक शिक्षा के दोष १२५।

अध्याय १८
सार्जेण्ट योजना, (१९४४)

विषय प्रवेश १२७ सार्जेण्ट योजना की सिफारिशें १२७ सार्जेण्ट योजना मूल्यांकन १३ ।

अध्याय १९
अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का सिंहावलोकन

विषय प्रवेश १३२ अंग्रेजी शिक्षा के लाभ १३२ अंग्रेजी शिक्षा की हानियाँ १३४ राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास में असफलता १३५।

अध्याय २०
विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४८ १९४९)

विषय-प्रवेश १३७ आयोग के विचार तथा सुझाव १३८, राधाकृष्णन् कमीशन का मूल्यांकन १४५।

अध्याय २१

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२-१९५३)

विषय प्रवेश १४६ आयोग के विचार एवं सुझाव १४७ उपसंहार १५३।

अध्याय २२

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा

विषय प्रवेश १५४ प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा १५५ द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा १५७ तृतीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा १६१।

अध्याय २३

नव भारत में शिक्षा (१९४७-६५)

विषय प्रवेश १६६ प्राथमिक शिक्षा १६६ बेसिक शिक्षा १७० माध्यमिक शिक्षा १७१ विश्वविद्यालय शिक्षा १७२, ग्रामीण उच्च शिक्षा १७४ स्त्री शिक्षा १७५ विकलाङ्गों की शिक्षा १७६।

अध्याय २४

प्राथमिक शिक्षा

विषय प्रवेश १८१ समस्यायें और उनके समाधान १८१ (१) सरकार की दोषपूर्ण नीति १८२ (२) राजनीतिक कठिनाइयाँ १८४ (३) दोषपूर्ण शिक्षा प्रशासन १८५ (४) शिक्षकों का अभाव १८६ (५), शिक्षण का निम्न स्तर १८७ (६) धनाभाव १८८ (७) विद्यालय-स्थापन एवं विद्यालय भवन १८९ (८) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम १९० (९) अपव्यय एवं अवरोधन १९२ (१०) प्राकृतिक बाधायें १९३, (११) सामाजिक कुरीतियाँ १९४, (१२) भाषा १९५।

अध्याय २५

माध्यमिक शिक्षा

विषय प्रवेश १९७ माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप १९८ माध्यमिक शिक्षा का विकास १९८ समस्यायें और उनके समाधान १९९ (१) उद्देश्यविहीनता १९९, (२) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम २०० (३) अनुशासनहीनता २०१ (४) प्रतिगत स्कूलों की अनावश्यक वृद्धि २०२ (५) शिक्षा का निम्न स्तर २०२ (६) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली २०४ (७) सामुदायिक जीवन का अभाव २०५

(८) अपव्यय एव अवरोधन २०६ (९) सगठन २०७ (१०) माध्यमिक विद्यालयों का प्रबन्ध २०८।

अध्याय २६

उच्च शिक्षा

विषय प्रवेश २१२ सामान्य उच्च शिक्षा की प्रगति २१२ व्यावसायिक उच्च शिक्षा की प्रगति २१३ समस्यायें और उनके समाधान २१३ (१) उद्देश्यविहीनता २१३, ( ) अपव्यय २१५ (३) दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम २१६ (४) शिक्षा म विशिष्टीकरण २१७ (५) मार्गप्रदर्शन एवं समुपदेशन का अभाव २१८ (६) शिक्षा का निम्न स्तर २१९ (७) शिक्षा का माध्यम, अंग्रेजी २२० (८) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली २२ , (९) अनुशासनहीनता २२१ (१) छात्र समितियाँ २२२।

अध्याय २७

समाज (प्रौढ़) शिक्षा

प्रौढ़ तथा समाज शिक्षा का इतिहास २२५ प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा का स्थान एव महत्त्व २३० प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ एव परिभाषा २३२ प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा २ २ प्रौढ़ शिक्षा तथा समाज शिक्षा म अन्तर २३३ समाज शिक्षा का अर्थ एव परिभाषा २३३ समाज शिक्षा का पचमुखी कार्य-क्रम २३५ समाज शिक्षा के लक्ष्य २३६ समाज शिक्षा के उद्देश्य २३७ समाज शिक्षा की आवश्यकता २४० समस्यायें और उनके समाधान २४५ (१) निरक्षता २४६ पाठ्य-क्रम २४८ (३) शिक्षण-पद्धति २५२ (४) अध्यापकों का अभाव २५३ (५) उपयुक्त साहित्य २५५ (६) शिक्षा क साधन २५६ (७) धनाभाव २५७ (८) उत्तरदायित्व २५६।

अध्याय २८

प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा

विषय प्रवेश २६१ भारत मे प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता २६२ प्राचीन भारत म प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा २६३ मुस्लिम काल म प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा २६४ अंग्रेजी राज्य म प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा २६५ स्वतन्त्र भारत मे प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा २६५ स्वतन्त्र भारत म प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा २६५ स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

२६८ स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा २७० आधुनिकतम गतिविधियाँ २७५ प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति ७२६, समस्यायें और उनके समाधान ७७७ (१) अनुचित दृष्टिकोण २७७ (२) शिक्षालयों का अभाव २७८ सकीर्ण पाठ्यक्रम २७८ (४) शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम २७९ (५) प्रायोगिक शिक्षा का न्यून महत्त्व २८० (३) उपरान्त शिक्षा का अभाव २८०, (७) शिक्षकों का अभाव २८१।

अध्याय २९

अध्यापक शिक्षा

विषय प्रवेश २८३ प्राचीन भारत में अध्यापक शिक्षा २८४ मुस्लिमकाल में अध्यापक शिक्षा २८४, अध्यापक शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास २८४ वुड का घोषणा-पत्र एवं अध्यापक शिक्षा २८५ (१८५९ से १८७२ तक) अध्यापक शिक्षा २ ६ १८-२ में अध्यापक शिक्षा की स्थिति २८७ अध्यापक शिक्षा की नियमित व्यवस्था २८८ शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९०४) २८९ शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९१३) २९० कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग और अध्यापक शिक्षा २९० हर्टाग समिति और अध्यापक शिक्षा २९० अध्यापक शिक्षा पर विहगम दृष्टिपात (१८८२ १९४७) २९१ अध्यापक प्रशिक्षण की प्रगति (१९३१ ४१) २९१ स्वतन्त्र भारत में प्रशिक्षण सुविधायें २९२ स्वतन्त्र भारत में अध्यापक शिक्षा का विस्तार २९३ अध्यापक-शिक्षा का विस्तार (१९४९ १९५८) २९८ वर्तमान प्रशिक्षण-संस्थायें २९४ पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण केन्द्र २९४ नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय २९६ माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालय २९८ प्रशिक्षण महाविद्यालय २९९ शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थायें ३०१ विशेष प्रशिक्षण-केन्द्र ३०१ समस्यायें और उनके समाधान ३०३ —१ प्रशिक्षण एवं स्कूल-कार्य की सम्बन्ध विहीनता ३०४ २ सिद्धान्त पर अनुचित बल ३०५ ३ मानवीय पहलू की उपेक्षा ३०६ ४ स्वतन्त्रता रहित वातावरण ३०८ ५ प्रशिक्षण के लिये व्यक्तियों का चुनाव ३०९ ६ बुनियादी एवं गैर-बुनियादी पाठ्यक्रमों की आवश्यकता ३१० उपसंहार ३११।

अध्याय ३०

अपव्यय एवं अवरोधन

विषय प्रवेश ३१३ अपव्यय का अर्थ एवं परिभाषा ३१३ अवरोधन का अर्थ एवं परिभाषा ३१४ अपव्यय एवं अवरोधन-न्याय के दो पहलू ३१५

प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन ३१६ माध्यमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन ३१७, विश्वविद्यालय शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन ३१८, अपव्यय और अवरोधन के कारण तथा उनके निवारण के उपाय ३१६, (१) दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था ३१६ (२) दूषित वातावरण ३२० (३) प्रभाव हीन शिक्षण-पद्धति ३२१ (४) दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम ३२२ (५) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली ३२३ (६) छात्रों की शारीरिक दुर्बलता ३२३, (७) अभिभावकों की अशिक्षा ३२४, आर्थिक कठिनाइयाँ ३२५, (९) सामाजिक कुरीतियाँ ३२७।

१

वैदिक शिक्षा

(Vedic Education)

विषय प्रवेश

'शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिये अनिवार्य है। भारतवासियों ने शिक्षा के इस गहन महत्व को समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने विशाल धार्मिक साहित्य को सुरक्षित रखा और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक विचारकों एवं विद्वानों को जन्म दिया जिनसे इस देश का मस्तक आज भी यश और गौरव से उन्नत है।

शिक्षा का तात्पर्य (Purpose of Education)

A S Altekar का कथन है— वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करती है।'

(From the Vedic Age downwards the central conception of education of the Indians has been that it is a source of illumination giving us a correct lead in th various spheres of life)

'सुभाषित रत्न संग्रह" में यह कहा गया है कि एक मनुष्य ने भले ही विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो पर यदि उसमें अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं हुआ है और उसे अपने अध्ययन के फलस्वरूप अन्तज्य ति प्राप्त नहीं हुई है तो वह मूर्ख है। केवल क्रियाशील मनुष्य ही वास्तव में शिक्षित है। शिक्षा उदर-पूर्ति की समस्या को अवश्य हल करती है परन्तु वदिक काल में शिक्षा को जीविका का साधन नहीं माना गया और जिन्होने एसा मत व्यक्त किया उनकी घोर निन्दा की गई। सारांश में वदिक काल में शिक्षा का तात्पर्य अन्तर्ज्योति और शक्ति से था जिससे मानव के शारीरिक मानसिक बौद्धिक तथा आत्मिक बलों का सतुलित विकास हो सकता था।

शिक्षा के उद्देश्य तथा आदश (Aims & Ideals of Education)

वदिक काल म शिक्षा के उद्देश्यों का विवेचन करते हुए Altekar ने लिखा है—'ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना चरित्र निर्माण व्यक्तित्व का विकास नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय सस्कृति का सरक्षण और प्रसार—प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य एव आदर्श थे।' (Infusion of a spirit of piety and religiousness formation of character development of personality inculcation of civic and social duties promotion of social efficiency, and preservation and spread of national culture may be described as the chief aims and ideals of Ancient Indian Education)

१ ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता—वैदिक काल मे शिक्षा बालक में ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का समावेश करती थी। प्रत्येक प्रकार की शिक्षा म विभिन्न सस्कारो की व्यवस्था छात्रों द्वारा विभिन्न व्रतों का पालन नियमित सध्या एव धार्मिक उत्सव का यही अभिप्राय था।

२ चरित्र निर्माण—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्रों की पाठ्य पुस्तकों म सदाचार के उपदेश होते थे उनको अपने आचार्यों से सदाचार के उपदेश मिलते थे उन्हें एसे वातावरण में रखा जाता था जिससे उनका चारित्रिक उत्थान हो और उनके समक्ष राष्ट्र की महान् विभूतियों के आदर्श बारम्बार उपस्थित किये जाते थ।

३ व्यक्तित्व का विकास—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्रो म आत्म सम्मान की भावना का विकास, आत्म-विश्वास को प्रोत्साहन आत्म-सयम के

महत्त्व पर बल तथा न्याय और विवेक की शक्ति को जन्म देने की विधियों को अपनाया जाता था।

४ नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन—शिक्षा ब्रह्मचारियों में नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों के पालन की भावना को भरती थी। उनको स्वार्थपूर्ण जीवन व्यतीत न करने की शिक्षा दी जाती थी। शुल्क न मिलने पर भी वैदिक साहित्य का अध्यापन—उनका कर्त्तव्य बताया जाता था। उन्हें पुत्र पति तथा पिता के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करने का उपदेश दिया जाता था। उन्हें अपने धन से अतिथियों का सत्कार एवं दुखियों की सहायता करना आवश्यक था।

५ सामाजिक कुशलता की उन्नति—सामाजिक कुशलता की उन्नति और इसके फलस्वरूप मानव के सुख की वृद्धि के लिये विभिन्न शास्त्रों व्यवसायों तथा उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। छात्रों का मानसिक विकास करने के साथ-साथ उनको उस व्यवसाय की शिक्षा निश्चित रूप से दी जाती थी जिसे वे अपने भावी जीवन में अपनाना चाहते थे।

६ राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार—प्रत्येक पिता अपने पुत्र को अपने व्यवसाय की शिक्षा देता था। प्रत्येक आर्य वैदिक साहित्य के किसी न किसी भाग को याद करता था। प्रत्येक ब्राह्मण वेदों को कण्ठस्थ करता था। इन कार्यों से भारतीयों को कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता था पर इनको करके वे अपने पूर्वजों की संस्कृति एवं ज्ञान का संरक्षण तथा प्रसार करते थे।

शिक्षा की व्यवस्था (Organization of Education)

वेदों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सुदूर अतीत में भी भारत में संगठित रूप से गुरुओं द्वारा शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद में कुछ इस प्रकार का संकेत मिलता है जिससे पाठशाला के समान किसी संस्था का अनुमान किया जा सकता है। छान्दोग्य उपनिषद् से ज्ञात होता है कि बालक गुरु-गृह में रहकर विद्याध्ययन करते थे। वैदिक साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वैदिक युग में संघ, परिषद् चरण मठ गुरुकुल तथा आश्रम स्थापित हो गये थे जहाँ गुरु वैयक्तिक रूप से स्वयमेव शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते थे। ग्रामों में प्राथमिक पाठशालायें भी थीं।

उपर्युक्त सभी शिक्षा-संस्थायें सावास (Residential) थीं और बाह्य नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त थीं। इनमें छात्रों का प्रवेश एक निश्चित आयु में होता था। प्रवेश के समय छात्रों को लिखने-पढ़ने और गणित का ज्ञान होना आवश्यक था। प्राचीन भारत में ५वीं, ६ठी (ईस्वी) शताब्दी तक समाज या

राज्य की ओर से शिक्षा प्रदान करने के लिए आधुनिक समय के समान सुसगठित शिक्षा सस्थाओं का अभाव था। इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं का विकास सर्वप्रथम बौद्ध विद्वानों द्वारा किया गया था।

वदिक युग तथा महाभारत-काल में वेद-पुराण व्याकरण ज्योतिष, दर्शन, कला आदि विषयों का अध्ययन किया जाता था। इनके अतिरिक्त श्रम विभाजन पर आधारित समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ण के अनुसार भी शिक्षा दी जाती थी। उदाहरणार्थ—ब्राह्मणों को धर्म-कर्म की क्षत्रियों को युद्ध विद्या और राजनीति की वश्यों को वाणिज्य और कृषि-विज्ञान की तथा शूद्रों को विविध साधारण कलाओं और हस्त-कार्य की।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एव विशेषताएँ
(Basic Principles & Features of Education)

शिक्षा के जिन उद्देश्यों और आदर्शों का वर्णन पहले किया जा चुका है, उनकी प्राप्ति के लिये वदिक काल के शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा की एक विशिष्ट प्रणाली का निर्माण किया—जो साम्राज्यों के पतन तथा समाज के परिवर्तनों से प्रभावित नहीं हुई और जिसने इन सहस्रों वर्षों के उपरान्त भी हमारे देश म शिक्षा की ज्योति को जलता हुआ रखा है। इस शिक्षा प्रणाली के निम्नांकित आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ थी —

१ उपनयन सस्कार—ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वश्य वर्ण का प्रत्येक बालक उपनयन-सस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन का प्रारम्भ करता था। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है—पास ले जाना अर्थात् शिक्षा के लिए गुरु के पास पहुँचाना। उपनीत बालक को ही गुरु सावित्री मत्र (गुरु मत्र) का उपदेश देकर शिक्षा देना आरम्भ करता था। जिस प्रकार बिना 'बपतिस्मा' के कोई ईसाई नहीं होता और बिना कलमा के मुसलमान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार वदिक काल म उपनयन-सस्कार को किए बिना कोई बालक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता था।

२ विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु—बालक को किस आयु म विद्याध्ययन का प्रारम्भ करना चाहिए इस सम्बन्ध में वदिक शास्त्रकारों म मतभेद है। मनु के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वश्य छात्र का उपनयन सस्कार क्रमश ८ ११ और १२ वर्ष की आयु म हो जाना चाहिए। याज्ञवल्क्य के अनुसार कुल की प्रथा के अनुसार किसी भी सुविधापूर्ण समय पर उपनयन-सस्कार सम्पन्न किया जा सकता है परन्तु इस बात का परामर्श दिया गया है कि ब्राह्मण को अपने पाँचवें वर्ष में क्षत्रिय को छठे वर्ष में, और

वन्य को आठवें वर्ष में विद्याध्ययन का प्रारम्भ कर देना चाहिए। जिन छात्रों का निश्चित आयु में उपनयन संस्कार नहीं होता था वे सावित्री मन्त्र को सीखने के अधिकारी नहीं रह जाते थे। शूद्रों का विद्याध्ययन का अधिकार नहीं था।

३ अध्ययन काल—वदिक काल में यह बात स्वीकार कर ली गई थी कि वेदों के अध्ययन के लिए अति दीर्घ काल की आवश्यकता है। भारद्वाज ने तीन जन्मों में तीन वेदों का अध्ययन किया। इन्द्र ने प्रजापति के शिष्य बनकर १०५ वर्ष तक विद्याध्ययन किया। वदिक काल में सामान्य रूप से अध्ययन-काल १२ वर्ष का था। इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा गया है कि १२ वर्ष की अवधि केवल एक वेद के अध्ययन के लिए है। यदि एक छात्र चारों वेदों का अध्ययन करता है तो उसे प्रत्येक वेद के अध्ययन में १२ वर्ष लगाने पड़ते थे। पर सभी छात्र चारों वेदों का अध्ययन नहीं करते थे। साहित्य तथा धर्म-शास्त्र में छात्र अपना अध्ययन १० वर्ष में समाप्त कर देते थे।

४ शिक्षा-सत्र—शिक्षा-सत्र की अवधि एक वर्ष में साढ़े चार या साढ़े पाँच मास की होती थी। साधारणतः विद्याध्ययन का कार्यक्रम श्रावण मास की पूर्णिमा को 'उपाकर्म' समारोह में प्रारम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को 'छन्दसाम उत्सर्जनम्' समारोह के साथ समाप्त होता था।

५ शिक्षण का समय—शिक्षण का कार्य किस समय से किस समय तक चलता था, इस सम्बन्ध में स्मृतियाँ बिल्कुल मौन हैं। पर क्योंकि वैदिक काल में मुद्रणालय कागज एवं सस्ती पुस्तकें नहीं थीं अत स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलता है कि पठन-पाठन का सब कार्य आचार्य की देख-रेख में होता था। सम्भवतः शिक्षण का कार्य प्रातःकाल से मध्याह्न तक और फिर कुछ विश्राम तथा भोजनादि के उपरान्त सायंकाल तक चलता था। प्राचीन ढंग की संस्कृत पाठशालाएँ कुछ समय पूर्व तक इसी प्रकार के कार्यक्रम का अनुसरण करती थीं।

६ विद्यालय भवन—वदिक काल में विद्यालय भवन किस प्रकार के थे इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार के साधन उपलब्ध नहीं हैं। पुन मौसम में अध्ययन-अध्यापन का कार्य वृक्षों के नीचे होता था परन्तु वर्षा के समय किसी प्रकार के आच्छादन की व्यवस्था अवश्य होगी। विहारों एवं देवालयों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए भव्य भवन बने हुए थे।

७ गुरुकुल-प्रणाली—वैदिक कालीन शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता गुरुकुल प्रणाली थी। छात्र अपने गुरु के कुल अथवा किसी आश्रम में रहते थे। वहां रहकर छात्र ज्ञान प्राप्त करते थे। गुरुकुल साधारणत: कोलाहल से दूर प्रकृति के सुन्दर वक्ष में स्थित होते थे। परन्तु वे किसी गाँव या नगर के समीप अवश्य होते थे जिससे उनमें निवास करने वाले छात्रों की अल्प आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

८ छात्र एवं उनका जीवन—छात्रों के खान-पान वेश-भूषा आचार व्यवहार आदि के सम्बन्ध में निश्चित नियम थे—जिनका पालन करना अनिवार्य था। यथा—

(i) खान-पान—मनु ने लिखा है कि छात्रों को दिन में केवल दो बार भोजन करना चाहिए—एक बार प्रात:काल और एक बार सायंकाल। इन दोनों भोजनों के मध्य में उनको अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। उसे अधिक भोजन से बचना चाहिए क्योंकि यह रोग का कारण तथा आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होता है। छात्रों को मांस मधु पान और बासी भोजन न खाने का आदेश था।

(ii) वेश भूषा—छात्रों की वेश भूषा निर्धारित थी। उपनयन के बाद पहिनी जाने वाली मेखला विभिन्न जातियों के छात्रों के लिए विभिन्न वस्तु की बनी हुई थी। मनु के अनुसार ब्राह्मण की मेखला मूंज घास की क्षत्रिय की तांत की और वैश्य की ऊन की बनी हुई होती थी। अपने शरीर के निम्न भाग को ढकने के लिए ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य छात्र क्रमश: सन रेशम और ऊन के वस्त्रों के टुकड़ों का और ऊपरी भाग के लिये क्रमश: काले मृग चित्तीदार मृग एवं बकरे की खाला का प्रयोग करते थे। छात्र जिन डण्डों को लेकर इधर उधर आते-जाते थे उन्हें उनको खड़ा करके देखना पड़ता था और वे बिना जले हुए देखने में सौम्य और भय उत्पादक नहीं हो सकते थे क्योंकि उनका प्रयोग केवल सुरक्षा के लिये किया जाता था। छात्रों को अंजन सुगन्धि छाते तथा जूतों का प्रयोग मना था। वे अपने शरीर को किसी प्रकार भी सजा नहीं सकते थे। बाल सँवारने की मनाही थी।

(iii) आचार-व्यवहार—छात्रों का जीवन शिष्टाचार मर्यादा तथा आत्म संयम से पूर्ण होता था। उन्हें अपने जीवन को पवित्र रखने के लिये दोनों समय संध्या वन्दना एवं हवन करना पड़ता था। उन्हें गुरुजनों का आदर तथा सम्मान करना होता था। उन्हें असत्य भाषण गाली-गलौज एवं चुगलखोरी से दूर रहने की शिक्षा दी जाती थी। उनके द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के पालन किये

जाने पर वस्त्र लिया जाता था । वे अपने पास न तो धन रख सकते थे और न कोई वस्तु खरीद सकते थे । वे नृत्य संगीत तथा जुए का आनन्द नहीं ले सकते थे । वे स्त्रियों से आवश्यकता से अधिक बात नहीं कर सकते थे । उन्हें आत्म संयम और काम, क्रोध तथा लोभ से मुक्त रहने की शिक्षा दी जाती थी ।

(iv) आदतों की सादगी—प्रत्येक हिन्दू छात्र को सादी आदतों की शिक्षा दी जाती थी । इस बात से कोई प्रयोजन नहीं होता था कि वह किस कुल का है । धनवान तथा निर्धन—सभी परिवारों के बालकों को जीवन का एक ही ढंग अपनाना पड़ता था । महाभारत तथा रामायण में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि राजकुमारों को भी छात्र जीवन की उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था जिनका सामना उनके निर्धन सहपाठी करते थे ।

(v) छात्रों की दिनचर्या—छात्र पक्षियों के चहचहाने से पूर्व उठते थे । नित्य क्रिया के बाद वे स्नान तथा सध्या करते थे । वेदों का अध्ययन करने वाले छात्र प्रात काल का अधिकांश भाग हवन आदि करने में व्यतीत करते थे । उस समय में अन्य विषयों के छात्र पुराने पाठों को दोहराते तथा नये पाठ को पढ़ते थे । दोपहर के समय वे भोजन करने के लिये अपना कार्य समाप्त कर देते थे । कुछ समय के बाद वे फिर विद्याध्ययन मे जुट जाते थे और सायकाल तक इस कार्य में लगे रहते थे । सूर्यास्त के समय वे सन्ध्या तथा हवन करने के बाद भोजन करते थे ।

९ अध्यापकों के प्रति छात्रों के कर्त्तव्य—वैदिक काल में छात्रों के अध्यापकों के प्रति अनेक कर्त्तव्य थे । वे गुरु का स्थान राजा माता पिता एवं देवता से निम्न नहीं समझते थे और उनका हृदय से सम्मान करते थे । वे प्रात काल गुरु से पूर्व उठ कर उसका अभिवादन करते थे और उससे नीचे आसन पर बैठते थे । वे आचार्य की प्रत्येक आज्ञा का शिरोधार्य करते थे । पर यदि गुरु धर्माचरण से च्युत हो जाता था तो वे उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य नहीं थे । वे गुरु की सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे । वे आचार्य के लिए प्रतिदिन निश्चित समय पर जल और दातौन पहुँचाते थे, उसके स्नान की व्यवस्था करते थे उसकी गृहस्थी के छोटे-मोटे काम करते थे और उसके खेतों में कार्य करते थे ।

१० छात्रों के प्रति अध्यापकों के कर्त्तव्य—वैदिक ऋषियों ने आचार्य को छात्र का 'मानस पिता' (Spiritual Father) कहा है । अत वैदिक काल मे आचार्य छात्रों के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करते थे । अध्यापक का यह कर्त्तव्य

तो था ही कि वह अपने छात्र को ज्ञान प्रदान करे, परन्तु इसके अतिरिक्त उसके कुछ कर्त्तव्य और थे। वह अपने विद्यार्थियों के चरित्र का सदैव ध्यान रखता था। अत वह उनको बताता था कि उन्हें किन आदतों का निर्माण और किन का त्याग करना चाहिए, उन्हें अपने स्वास्थ्य की उन्नति किस प्रकार करनी चाहिए उन्हें किस प्रकार का भोजन करना चाहिए और उन्हें कैसे व्यक्तियों से सम्पर्क रखना चाहिए। यदि कोई छात्र बीमार हो जाता था तो अध्यापक पिता के समान उसकी चिकित्सा तथा सेवा करता था। साराश म उसका कर्त्तव्य था—अपने विद्यार्थियों का शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करना।

११ दण्ड—भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था में दण्ड का स्थान तो था पर शारीरिक दण्ड के सम्बन्ध म शिक्षा-शास्त्री एक मत के नहीं हैं। आपस्तम्ब ने लिखा है कि गुरु हठी छात्रों को अपने पास से दूर भेज दे या उनसे उपवास करवाये। मनु का कथन है कि यदि छात्र अपराध करता है तो गुरु उसको रज्जु या पतली छड़ी से दण्ड दे सकता है। इसी प्रकार का मत गौतम और विष्णु के द्वारा तथा महाभारत म व्यक्त किया गया है।

१२ निशुल्क शिक्षा—ब्राह्मणों का कर्त्तव्य शिक्षा देना समझा जाता था। जब तक एक छात्र विद्या प्राप्त करता रहता था तब तक गुरु उससे किसी प्रकार का शुल्क स्वीकार नहीं कर सकता था। शिक्षा समाप्त होने पर छात्र का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने गुरु को कुछ दक्षिणा दे। F E Keay के अनुसार धनी विद्यार्थियों के अतिरिक्त कोई भी अन्य छात्र गुरु को इतनी दक्षिणा नहीं दे पाता था जिसे शिक्षण का उचित पारिश्रमिक कहा जा सके। मनु ने लिखा है कि छात्र दक्षिणा के रूप म अपने गुरु को गाय अश्व अन्न इत्यादि कुछ भी दे सकता था।

१३ बाह्य नियन्त्रण से मुक्ति—P N Prabhu ने लिखा है—यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत म शिक्षा पर राज्य या सरकार अथवा किसी राजनैतिक दल का नियन्त्रण नहीं था। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह इस बात को देखे कि विद्वान् पंडित बिना किसी विघ्न-बाधा के अध्यापन के कार्य म रत रहें। इसी प्रकार भारत में शिक्षा पर कोई जातीय प्रभाव नहीं था। (Education in ancient India was free from any external control like that of the State or Government or any party politics It was one of the King s duties to see that the learned pundits persued their

studies and their duty of imparting knowledge without interference from any source whatever So also education did not suffer from any communal interest or prejudices in India ")

१४ पाठ्य-क्रम—वैदिक काल म वेदा की शिक्षा के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। छान्दोग्य उपनिषद् तथा बृहदारण्यक उपनिषद म जिन विषयों की सूची मिलती है वह इस प्रकार है—ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद इतिहास अथवा पौराणिक कथाएं, पुराण विद्या उपनिषद्, श्लोक सूत्र व्याख्यान अथवा आलोचना राशि (The Science of Numbers) दैव (The Science of Portents) निधि (The Science of Time), वाकोवाक्य (Logic), नक्षत्र शास्त्र देव विद्या (Etymology) ब्रह्म विद्या, भूत विद्या शास्त्र विद्या नक्षत्र-विद्या सर्प विद्या व्याकरण, ज्योतिष, कल्प (Ceremonial and Religious Practice)। इन विषयों के अतिरिक्त बीजगणित तथा औषधि विज्ञान के शिक्षण के भी अवसर सुलभ थे।

१५ शिक्षण विधि—शिक्षण विधि मौलिक थी और छात्रों को आचार्य द्वारा बताई गई सभी बातों को कण्ठस्थ करना होता था। प्रत्येक पाठ के प्रारम्भ म छात्र गुरु के चरण स्पर्श करते थे और उनसे पाठ प्रारम्भ करने की प्रार्थना करते थे। गुरु गम्भीर वाणी से मन्त्रों का उच्चारण करते थे और छात्र उसका अनुसरण करते थे। गुरु उच्चारण किये गये मन्त्रों की व्याख्या भी करते थे। शिक्षण समाप्त होने पर छात्र गुरु के चरणों का स्पर्श करके विदा लेते थे।

१६ समावर्तन उपदेश—जब ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त करके घर लौटते थे तब आचार्य उनको समावर्तन उपदेश देते थे। इसी उपदेश को दीक्षान्त भाषण (Convocation Address) कहा जाता है। समावर्तन-उपदेश साहित्य तथा आयुर्वेद के स्नातकों के लिए भिन्न थे।

१७ स्त्री शिक्षा—वैदिक काल म शिक्षा की अन्तिम विशेषता यह थी कि स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। नारी शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी। ब्रह्मचर्य व्रत से सम्पन्न शिक्षित कन्या को ही गृहस्थ म प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त था। समय की गति के साथ समाज में स्त्रियों का महत्त्व तथा इसके फलस्वरूप उनका शिक्षा अधिकार कम होता चला गया। ऐसा ईसा पूर्व २०० के लगभग हुआ। इस प्रकार अति प्राचीन काल से लेकर इस समय तक स्त्रियों की शिक्षा का कार्यक्रम प्राय अबाध गति से चलता रहा। बालकों के समान बालिकाएँ भी उपनयन ग्रहण करती थीं। यह शिक्षा

का प्रचलन था। बालिकाओं को साहित्य, नृत्य संगीत काव्य रचना वाद विवाद, दर्शन आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

उपसंहार

वैदिक कालीन शिक्षा-व्यवस्था के जिन प्रमुख तत्त्वों एवं विशेषताओं का उपर्युक्त पंक्तियों में दिग्दर्शन किया गया है उनसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि दीर्घ अतीत में हमारे देश में शिक्षा की अति सुन्दर व्यवस्था थी। शिक्षा का उद्देश्य था— व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना।" शिक्षा मानव के व्यक्तित्व का निर्माण उसकी मानसिक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास उसके लिए जीवन के अर्थ तथा महत्त्व की व्याख्या और उसे इहलोक तथा परलोक—दोनों मे आत्मिक उत्थान करने में सहायता देती थी।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Give a critical estimate of the conception of teacher pupil relationship as it existed in the ancient Hindu educational system

2. Describe the salient features of the system of education prevailing in ancient India. To what extent are they discoverable in the present system ?

3 It is said that education was a handmaid to religion in ancient India. How far do you agree with this view ? How did religion influence educational theory and practice in ancient India ?

4 'The educational system of a nation at any given period of its history is a faithful reflection of the social, political and economic conditions of the period " Explain this statement critically with reference to the system of education in ancient India.

२

बौद्ध-शिक्षा
(Buddhist Education)

विषय प्रवेश

ईसा की छठी शताब्दी में भारत-भूमि पर महान् शिक्षक और धर्मोपदेशक महात्मा बुद्ध का निवास था। उन्होंने निर्वाण की प्राप्ति के लिये अष्ट मार्ग बताया। उन्होंने बौद्ध धर्म में चारों जातियों के व्यक्तियों को स्थान दिया। उन्होंने वैदिक काल के देवी-देवताओं की उपेक्षा नहीं की, पर आचरण पर अधिक बल दिया। उन्होंने एक नवीन शिक्षा-व्यवस्था को जन्म दिया जो वैदिक कालीन शिक्षा के समान होते हुए भी कुछ बातों में भिन्न थी। डाक्टर आर० के० मुकर्जी (Dr R K Mookerji) के अनुसार उचित रूप से विचार किये जाने पर बौद्ध शिक्षा प्राचीन हिन्दू या ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली का केवल एक रूप है। ('Buddhist education rightly regarded is but a phase of the ancient Hindu or Brahmanical system of education')

शिक्षा की व्यवस्था
(Organization of Education)

बौद्ध धर्म का विकास संघों के रूप में हुआ था। अतः बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र संघ ही थे। केवल संघों में ही बौद्ध शिक्षा दी जाती थी

अन्य किसी स्थान पर नहीं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में केवल संघ ने श्रमणों को ही धार्मिक और सांसारिक शिक्षा दी जाती थी। श्रमणों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति शिक्षा देने का अधिकारी नहीं था। बौद्ध काल में यज्ञ का स्थान संघ ने ले लिया था। अतः बौद्ध संघ की पद्धति ही बौद्ध शिक्षा-पद्धति थी। डाक्टर आर० के० मुकर्जी (Dr R K Mookerji) ने लिखा है बौद्ध शिक्षा-पद्धति प्रायः बौद्ध संघ की पद्धति है। जिस प्रकार वैदिक युग में यज्ञ संस्कृति के केन्द्र थे उसी प्रकार बौद्ध युग में संघ शिक्षा और विद्या के केन्द्र थे। बौद्ध संसार में अपने संघों से पृथक या स्वतन्त्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। सब प्रकार की शिक्षा—धार्मिक तथा लौकिक—श्रमणों के हाथ में थी। ('The Buddhist system is practically that of the Buddhist order or *Sangha* Buddhist education and learning centred round monastries as Vedic culture centred round the sacrifice The Buddhist world did not offer any educational opportunities apart from or independently of its monastries. All education sacred as well as secular was in the hands of the monks)

१ सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा (Popular or Elementary Education)

हम जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि बौद्ध युग में प्राथमिक शिक्षा की कमी व्यवस्था थी। इस शिक्षा के केन्द्र बौद्ध मठ थे। प्रारम्भ में यह शिक्षा केवल धार्मिक थी। पर कुछ समय के बाद सांसारिक शिक्षा भी दी जाने लगी। कारण यह था कि ब्राह्मणों द्वारा चलाई जाने वाली प्रतिद्वन्द्वी शिक्षा-संस्थाओं में दोनों प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था थी। ऐसी दशा में यह आवश्यक था कि बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिये भी दोनों प्रकार की शिक्षा का आयोजन हो। ऐसा करके ही शिक्षा पर से ब्राह्मणों के एक मात्र अधिकार को समाप्त किया जा सकता था। फाहियान के भारत आगमन के समय (३९९ ४१४) बौद्ध मठों में केवल बौद्ध संघ में सम्मिलित होने वालों की शिक्षा के साथ साथ सामान्य शिक्षा की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी।

हम चीनी यात्रियों ह्वेनसांग और आइसिंग के लेखों में जो भारत में सातवीं शताब्दी में आये थे सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा का उल्लेख मिलता है। इन यात्रियों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा छः वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती थी। छात्रों को छः माह तक सिद्धिरस्तु (Siddhirastu) नामक

बालपोथी पढ़नी पड़ती थी जिसमें वर्णमाला के ४९ अक्षर थे। इसको समाप्त करने के बाद छात्रों को पाँच विद्याओं—शब्द विद्या शिल्पस्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या और अध्यात्म विद्या का अध्ययन करना पड़ता था।

प्राथमिक शिक्षा के उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध मठों मे धार्मिक, सांसारिक दार्शनिक और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था। इस शिक्षा को न केवल बौद्ध भिक्षु वरन् गृहस्थ बौद्ध धर्मावलम्बी भी प्राप्त करने के अधिकारी थे। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है कि शिक्षा का माध्यम पाली भाषा थी, जो जन-साधारण के द्वारा बोली जाती थी, न कि संस्कृत जैसा कि ब्राह्मणों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में था।

२ उच्च शिक्षा (*Higher Education*)

पाँच विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके प्राथमिक और सामान्य शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण हो जाता था। उसके बाद उच्च शिक्षा का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ होता था। इस शिक्षा के केन्द्र भी बौद्ध मठ थे। उच्च शिक्षा में अध्ययन के विविध विषयों और विशेषज्ञता (Specialization) का प्रबन्ध था। छात्र व्याकरण, धर्म ज्योतिष दर्शन औषधि विज्ञान आदि का अध्ययन करके इनमें से किसी में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। ह्वेनसांग के अनुसार उच्च शिक्षा में क्रियात्मक और अक्रियात्मक (Theoretical and Practical) शिक्षा के दोनों पहलुओं पर बल दिया जाता था। डा० ए० एस० अल्तेकर (A S Altekar) ने बौद्ध मठों में दी जाने वाली उच्च शिक्षा की प्रशंसा में लिखा है 'मठों ने अपनी उच्च शिक्षा की योग्यता से जहाँ अध्ययन करने के लिए कोरिया चीन तिब्बत और जावा ऐसे सुदूर देशों से छात्र आकर्षित होते थे भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को ऊँचा उठा दिया।" ("The monasteries raised the international status of India by the efficiency of their higher education, which attracted students from distant countries like Korea, China, Tibet and Java")

उच्च शिक्षा के केन्द्रों में नालन्दा तक्षशिला विक्रमशील, जगद्दल, ओदन्तपुरी मिथिला और नादिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सब में सर्वप्रथम स्थान नालन्दा विश्वविद्यालय को प्राप्त था। यह आधुनिक ग्राम बरगा में राजगीर (बिहार में) से लगभग आठ मील दूर था। सन् ४५० ई० से लेकर लगभग ७५० वर्ष तक यह अपनी प्रसिद्धता के शिखर पर था। यूएनच्वांग के भारत आगमन के समय इसमें लगभग ५,००० भिक्षु थे जिनमें से १००० के

ऊपर ४००० विद्यार्थियों की शिक्षा का भार था। विश्वविद्यालय में प्रवेश के समय द्वार-पण्डित कहलाने वाला विद्वान् शिक्षक विश्वविद्यालय के द्वार पर बैठ कर छात्रों की कड़ी मौखिक परीक्षा लेता था। विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म जैन धर्म वैदिक धर्म वेद व्याकरण ज्योतिष, पुराणों दर्शनशास्त्र और औषधि विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। लगभग ८०० वर्ष के बाद ज्ञान और विद्या से सब दिशाओं को आलोकित करने वाला भारतीय दर्शन कलाओं और सभ्यता का यह केन्द्र तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बख्तियार खिलजी के द्वारा धूल में मिला दिया गया।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ

(Basic Principles & Features of Education)

बौद्ध धर्मावलम्बियों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रसार के लिए एक विशिष्ट शिक्षा-पद्धति को अपनाया। हम इसके आधारभूत तत्वों और विशेषताओं का उल्लेख नीचे की पंक्तियों में कर रहे हैं —

१ विद्यार्थित्व (Studentship)—बौद्ध शिक्षा-संस्थाओं में सभी जातियों, धर्मों और वर्गों के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। केवल चाण्डालों का प्रवेश वर्जित था।

२ छात्रों का चुनाव—अधोलिखित छात्रों का विद्याध्ययन के लिये चुनाव नहीं किया जाता था—(१) जिन्होंने अपने माता-पिता की आज्ञा न ली हो (२) जिनको कोढ़ तपेदिक आदि रोग हो, (३) जो राजा की नौकरी करते हों, (४) जो डाकू रह चुके हों, (५) जो जेल से भाग आये हों (६) जिनको राज्य से किसी प्रकार का दंड मिल चुका हो (७) जिनका कोई अंग भंग हो या जिनके शरीर का कोई भाग विकृत हो (८) दास और (९) नपुंसक।

३ विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु—डा० एफ० ई० केई (F E. Keay) के अनुसार विद्याध्ययन आरम्भ करने की आयु ८ वर्ष की थी। प्रवेश के बाद छात्र 'श्रमण' या 'सामनेर' (Samanera) या नव शिष्य कहलाता था। इस दशा में वह १२ वर्ष तक विद्याभ्यास करता था। २० वर्ष की आयु में वह भिक्षु के रूप में प्रवेश कर सकता था।

४ पब्बज्जा संस्कार—प्रवेश के समय पब्बज्जा संस्कार होता था। पब्बज्जा का अर्थ है—'बाहर जाना'। इस संस्कार का अर्थ था कि छात्र अपने परिवार से अलग होकर बौद्ध संघ में प्रवेश करता था। विनय पिटक (Vinaya Pitaka) में पब्बज्जा संस्कार का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है —

)

छात्र अपने सिर के बाल मुंडाता था पीले वस्त्र धारण करता था मठ के भिक्षुओं के चरणों में अपना माथा टेकता था और फिर पालथी मारकर बैठ जाता था। मठ का सबसे बड़ा भिक्षु उससे तीन बार यह कहलवाता था— 'बुद्ध शरणं गच्छामि धम्म शरणं गच्छामि संघ शरणं गच्छामि।" इसके बाद उसे आगे लिखे १० आदेश दिये जाते थे—(१) जीव-हत्या न करना, (२) चोरी न करना (३) अशुद्धता से दूर रहना (४) असत्य न बोलना, (५) मादक पदार्थों का प्रयोग न करना (६) वर्जित समय पर भोजन न करना, (७) नृत्य संगीत और तमाशों के पास न जाना (८) शृङ्गार की वस्तुओं (फूलमालाओं सुगंधियों आभूषणों आदि) का प्रयोग न करना (९) ऊँचे बिस्तर पर न सोना, और (१०) सोने या चाँदी का दान न लेना।

५ उपसम्पदा—नवशिष्य १२ वर्ष तक अध्ययन करने के बाद २० वर्ष की आयु को प्राप्त होता था। उस आयु में वह उपसम्पदा संस्कार सम्पादित करके भिक्षु के रूप में संघ में रह सकता था। पब्बजा के समान उपसम्पदा एक पदीय संस्कार नही था। उपसम्पदा संस्कार संघ के कम से कम १० योग्य भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था। उनम से एक श्रमण का परिचय कराता था। उसके बाद अन्य भिक्षु उससे अनेकों प्रश्न पूछते थे। उनके उत्तर सुनने के बाद उपस्थित भिक्षु यह निर्णय करते थे कि नवशिष्य उपसम्पदा ग्रहण करने का अधिकारी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उपसम्पदा की प्रणाली जनतान्त्रिक थी। उपसम्पदा के बाद श्रमण पक्का भिक्षु और संघ में रहने का अधिकारी हो जाता था। उसे आगे लिखे नियमों का पालन करना पड़ता था— (१) भोजन के लिये भिक्षा माँगना, (२) साधारण वस्त्र पहिनना (३) वृक्ष के नीचे निवास करना (४) गौ-मूत्र को औषधि के रूप में प्रयोग करना (५) स्त्री समागम, चोरी, जीव-हत्या और अलौकिक शक्तियों का दावा करने से दूर रहना।

६ अध्ययन-काल—अध्ययन काल २२ वर्ष का था—१२ वर्ष पब्बजा का और १० वर्ष उपसम्पदा का। अध्ययन काल ८ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर ३० वर्ष की आयु पर समाप्त होता था।

७ छात्र जीवन सम्बन्धी नियम—बौद्ध शिक्षा प्रणाली में छात्रों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना पड़ता था—

(१) भिक्षाटन—छात्रों को प्रातः जल्दी उठना पड़ता था और फिर भिक्षाटन के लिये जाना पड़ता था। वे मौन रूप से भिक्षा माँगते थे बोलकर नहीं। वे भिक्षा में केवल उतना ही भोजन माँग सकते थे, जितने की उनको आवश्यकता होती थी।

(ii) भोजन—विद्यार्थियों का भोजन बहुत सादा और दिन में साधारणतः तीन बार होता था। रात्रि भोजन के लिए वे और उनके शिक्षक प्रायः कहीं न कहीं आमन्त्रित रहते थे।

(iii) वस्त्र—छात्रों को कम से कम वस्त्र पहिनने का आदेश था। उनके वस्त्र तीन होते थे अतः उनको "तिसिवरा" (Ticivara) कहा जाता था।

(iv) स्नान—स्नान करने समय छात्रों को पानी में खेल करने और अपने शरीर को लकड़ी या दूसरे के शरीर से रगड़ने का निषेध था। पर वे हाथ से अपने शरीर को मल सकते थे।

(v) अनुशासन—अनुशासन पर बहुत बल दिया जाता था। छात्र फूल-पत्ता, पौधा और वृक्षों को हानि नहीं पहुँचा सकते थे, सम्पत्ति नहीं रख सकते थे, खेल-तमाशे नहीं देख सकते थे, शरीर को अलंकृत नहीं कर सकते थे और व्यर्थ की बातें नहीं कर सकते थे। इन नियमों का पालन न करने वालों को दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी अनुशासनहीनता के कारण पूरे संघ को दण्ड दिया जाता था। उसके सब सदस्यों को संघ से निकाल दिया जाता था।

८. गुरु के प्रति छात्र के कर्त्तव्य—छात्र को अपने शिक्षक से पहिले उठ कर उसकी दातौन और हाथ-मुँह धोने के लिये पानी का प्रबन्ध करना पड़ता था। वह गुरु के बैठने का स्थान ठीक करता था, झाड़ू लगाता था और उसके बरतनों को साफ करता था। वह गुरु के साथ भिक्षा माँगने जाता था और उसके लौटने से पहले वापिस आकर गुरु के लिये जल और भोजन का प्रबन्ध करता था।

९. छात्र के प्रति गुरु के कर्त्तव्य—जिस प्रकार गुरु के प्रति छात्र के कर्त्तव्य थे उसी प्रकार छात्र के प्रति गुरु के भी कर्त्तव्य थे। गुरु का प्रमुख कर्त्तव्य यह था कि वह अपने शिष्य का मानसिक और आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन करे। उसे अपने छात्र के लिए वस्त्र, भिक्षा पात्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करना पड़ता था। शिष्य के बीमार होने पर गुरु उसकी सेवा सुश्रुषा करता था।

१०. गुरु-शिष्य सम्बन्ध—गुरु और शिष्य का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण था। गुरु अपने शिष्य के समक्ष सादा जीवन, निरन्तर अध्ययन, निष्कलंक चरित्र, और ब्रह्मचर्य के आदर्श प्रस्तुत करता था। अनेक वर्षों तक निरन्तर साथ रहने के कारण गुरु और शिष्य में पारस्परिक श्रद्धा, निर्भरता और प्रेम का विकास हो जाता था। डा० ए० एस० अल्टेकर (A. S. Altekar) के शब्दों में, "अपने गुरु के साथ शिष्य के सम्बन्ध का स्वरूप पुत्रानुरूप था। वे पारस्परिक

सम्मान, विश्वास और प्रेम से आबद्ध थे।" "The relations between the novice and his teacher were filial in character; they were united together by mutual reverence, confidence and affection."

११ पाठ्य-क्रम—बौद्ध मठों में जो उच्च शिक्षा के केन्द्र थे, अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी जैसे—बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म, जैन धर्म, दर्शनशास्त्र (Philosophy), अध्यात्म विद्या (Metaphysics), तर्क शास्त्र (Logic), संस्कृत, पाली, नक्षत्रफल-गणन विद्या (Astrology), खगोल विज्ञान (Astronomy), औषधि विज्ञान (Medicine), न्याय शास्त्र (Law), राज्य-व्यवस्था (Polity) और प्रशासन (Administration)।

१२ शिक्षण विधि—शिक्षण विधि मुख्यतः मौखिक थी। रटने पर बल दिया जाता था, पर रटने के साथ ही उसे याद की हुई बातों पर मनन करना पड़ता था। वाद विवाद, तर्क, विश्लेषण, व्याख्या और स्पष्टीकरण की विधियों का भी प्रयोग किया जाता था। ह्वेनसांग (Hiuen Tsang) ने शिक्षण की अन्य विधियों के बारे में इस प्रकार लिखा है "शिक्षक पाठ्य-वस्तु का सामान्य अर्थ बताते हैं और शब्दों को सविस्तार पढ़ाते हैं। वे उन्हें परिश्रम के लिये प्रोत्साहित करते हैं और कुशलता से उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं। वे क्रियाशून्य छात्रों को निर्देशित करते हैं और मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों को ज्ञान के अर्जन के लिये उत्सुक करते हैं।' ("The teachers explain the general meaning and teach them the minutiae they rouse them to activity and skilfully win them to progress they instruct the inert and sharpen the dull.")

१३ शिक्षा का माध्यम—बौद्ध मठों में रहने वाले भिक्षु भारत के विभिन्न भागों से आते थे और विभिन्न भाषाएँ बोलते थे। छल्लवग्ग (Challa vagga) की एक कहानी के अनुसार बौद्ध धर्म के अनुयायी दो ब्राह्मणों ने महात्मा बुद्ध से उनके उपदेशों को संस्कृत में लिखने की आज्ञा माँगी। बुद्ध ने इसको अस्वीकार करते हुए कहा 'ओ भिक्षुओ! मैं तुममें से प्रत्येक को बुद्ध के उपदेशों को अपनी स्वयं की भाषा में सीखने की आज्ञा देता हूँ।" फलस्वरूप शिक्षा का माध्यम—देश की प्रचलित भाषायें थीं।

१४ स्त्री शिक्षा—बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से निम्न है और भिक्षुओं को स्त्रियों से दूर रहने का आदेश दिया गया है फलस्वरूप मठ

में स्त्रियों को स्थान नहीं दिया गया। कुछ समय के बाद बुद्ध ने अपनी विमाता महाप्रजापति के आग्रह पर स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। जो स्त्रियाँ संघ में प्रवेश करती थीं उनको भिक्षुणी कहा जाता था। इनको भिक्षुओं के समान ही जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इनके मठ भिक्षुओं से अलग होते थे। संघ में प्रवेश करने की आज्ञा मिलने के कारण स्त्री शिक्षा का काफी विकास हुआ। डा० ए० एस० अल्टेकर (A S Altekar) के मतानुसार "स्त्रियों के संघ में प्रवेश करने की आज्ञा ने स्त्री शिक्षा को विशेष रूप से समाज के कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों की शिक्षा को बहुत काफी प्रोत्साहन दिया।" ('The permission given to women to enter the Order gave a fairly good impetus to the cause of female education especially in aristocratic and commercial sections of society') पर हम इससे यह निश्चय नहीं निकाल लेना चाहिये कि स्त्री शिक्षा की बहुत प्रगति हुई। संघ में विशेष रूप से कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों ने ही प्रवेश किया। इन स्त्रियों की संख्या कम थी क्योंकि इनका प्रवेश भिक्षुओं की इच्छा पर आधारित था और वे साधारणतः सभी स्त्रियों को प्रवेश नहीं देते थे। जहाँ तक साधारण स्त्रियों की बात थी उनकी शिक्षा के लिये बौद्ध शिक्षा पद्धति में कोई स्थान नहीं था।

१५ व्यावसायिक शिक्षा—बौद्ध शिक्षा में प्रमुख स्थान धर्म का था। पर उस समय के बौद्ध साहित्य में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई। भिक्षुओं और जनसाधारण को विभिन्न व्यवसायों और उद्योगों की शिक्षा दी जाती थी। महावाग (Mahavagga) में भिक्षुओं के लिये कताई बुनाई और सिलाई के प्रशिक्षण का वर्णन है। उनको यह प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता था, जिससे कि वे अपने वस्त्रों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। बौद्ध कालीन विहार स्तूप और चैत्य उस युग की भवन निर्माण कला के प्रतीक हैं और इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इस कला में उच्च कोटि के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। भिक्षुओं को भी इस कला से अवगत होना पड़ता था जिससे कि वे विहारों के भवनों का निर्माण अपनी आवश्यकताओं के अनुसार करवा सकें। भवन निर्माण कला के अतिरिक्त मूर्तिकला और चित्रकला के प्रशिक्षण की भी सुन्दर व्यवस्था थी जैसा कि नालन्द और विक्रमशील विश्वविद्यालयों के भवनों तथा अन्य तत्कालीन इमारतों से प्रकट होता है।

गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वालों और बौद्ध धर्म के अनुयायियों को जीविका उपार्जन में सहायता देने के लिये विभिन्न उद्योगों की शिक्षा दी जाती

थी जैसे-लेखन गणना (Accountancy) रूपम (Drawing) कृषि वाणिज्य, कुटीर उद्योग और पशुपालन। मिलिन्द पन्हा (Milinda Panha) में सिप्पाओ (Sippas) या शिल्पों का उल्लेख है जो बौद्ध-काल में प्रचलित थे। इनमें से अधोलिखित की शिक्षा तक्षशिला के कुछ उच्च शिक्षा-केन्द्रों में दी जाती थी—हस्ति ज्ञान (Elephant Lore), इन्द्र जाल (Magic Charms) मृत व्यक्तियों को जीवित करने का मन्त्र आखेट (Hunting) सब पशुओं की बोलियाँ समझने का ज्ञान धनुर्विद्या भविष्य कथन इन्द्रिय-सम्बन्धी सब क्रियाओं को वश में करने की कला शारीरिक रचना का अर्थ और औषधि विज्ञान। छात्र इन विषयों में से केवल एक का अध्ययन कर सकते थे। इस प्रकार जैसा कि डा० आर के० मुकर्जी (Dr R K. Mookerji) ने लिखा है यह स्पष्ट हो जाता है कि सिप्पाओं या प्राविधिक तथा वैज्ञानिक शिक्षा के ज्ञान की माँग सामान्य शिक्षा या धार्मिक अध्ययन की माँग से किसी प्रकार कम नहीं थी।" (The demand for the knowledge of the *Sippas* or for technical and scientific education was not less keen than that for general education or religious studies)

ब्राह्मणीय और बौद्ध-शिक्षा
(Brahmanic & Buddhist Education)

समानता (Comparison)

डा० ए० एस० अल्टेकर (Dr A S Altekar) के शब्दों में "जहाँ तक सामान्य शिक्षा सिद्धान्त या कार्यप्रणाली का सम्बन्ध था हिन्दुओं और बौद्धों में कोई आधारभूत अन्तर नहीं था। दोनों पद्धतियों के समान आदर्श थे और दोनों समान विधियों का अनुसरण करती थीं। (There was no fundamental difference between Hindus and Buddhists as far as the general educational theory or practice was concerned Both systems had similar ideals and followed similar methods) वस्तुतः बौद्ध शिक्षा प्रणाली ने प्राचीन हिन्दू संस्थाओं का अनुकरण किया अब हम दोनों पद्धतियों की समानताओं पर विचार करेंगे।

(१) बौद्ध धर्म ने अपने भिक्षुओं के लिए ब्रह्मचर्य के अनेक नियमों को अपनाया। ब्रह्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य भिक्षा माँगना था। बौद्ध शब्द 'भिक्षु' का अर्थ है भिक्षा माँगने वाला"। ब्रह्मचारी के समान भिक्षु को भी भिक्षा माँगनी पड़ती थी।

(२) ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित भिक्षा-पान भिक्षा माँगने की विधि भोजन करने बैठने सोने केश कटवाने वस्त्र पुष्पमालाओं सुगन्धियों तेलों आदि विलास की वस्तुओं के सभी नियमों को बौद्ध धर्म ने अपने भिक्षुओं के लिये अपना लिया था।

(३) बौद्धों का 'अहिंसा' का सिद्धान्त ब्राह्मणीय है। ब्रह्मचारी को जुती हुई भूमि और फसल के ऊपर चलने का निषेध था जिससे कि वह जीव हत्या न करे। यही कारण था कि भिक्षु को वर्षाऋतु में यात्रा करने की आज्ञा नहीं थी।

(४) ब्राह्मणीय पद्धति में 'संयासी' अपना घर छोड़ देता था और वृक्ष के नीचे निवास करता था। भिक्षु को भी वृक्ष के नीचे निवास करने का आदेश था।

(५) बौद्ध धर्म शारीरिक पवित्रता पर उतना ही बल देता है जितना कि वैदिक धर्म। वेदों के अनुसार धर्म व्यवहार में लाई जाने वाली वस्तु है। इसका सम्बन्ध ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार से अधिक है। ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ है ब्रह्म का अभ्यास (The practice of *Brahma*) अथवा धर्म के आदेशों का पालन करने वाला कहा जाता है। शिक्षक को 'आचार्य' ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति पुस्तकों के अध्ययन की अपेक्षा उचित आदतों पर अधिक बल देती है। बौद्ध शिक्षा-पद्धति में भी ऐसा ही है।

(६) ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली में छात्रों द्वारा उपवास रखने की विधि को बौद्ध शिक्षा प्रणाली ने भी अपनाया।

(७) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में उपनयन संस्कार सम्पादित किया जाता था, उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा पद्धति में 'पब्बजा संस्कार' का सम्पादन होता था। दोनों संस्कारों में छात्र को अपने माता पिता को छोड़कर गुरु के पास रहना पड़ता था।

(८) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु निश्चित थी उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा-पद्धति में भी थी।

(९) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में अध्ययन की न्यूनतम अवधि १२ वर्ष की थी। इतनी ही अवधि बौद्ध धर्म में नवशिष्य के लिये थी।

(१०) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में 'उपनयन संस्कार' के बाद विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' की उपाधि दी गई थी उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा पद्धति में 'पब्बजा संस्कार' के बाद छात्र को 'सामनेर' की उपाधि दी गई थी।

(११) ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति के "गुरु शिष्य सम्बन्ध" के प्रमुख विचारों को बौद्ध शिक्षा पद्धति में अपना लिया गया था।

असमानता (Contrast)

बौद्ध धर्म का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि संसार दुःखों और कष्टों से परिपूर्ण है और इसका त्याग करके ही एक व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। अतः बौद्ध शिक्षा-पद्धति का आयोजन ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति से विभिन्न ढंग से किया गया। इन दोनों शिक्षा-पद्धतियों में पाई जाने वाली असमानताओं का वर्णन नीचे किया गया है।

(१) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति को शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली (Domestic System of Education) कहा जा सकता है, क्योंकि इस प्रणाली में शिक्षक का घर या परिवार छात्र का विद्यालय होता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली बौद्ध संघ की प्रणाली थी। इसमें परिवार का स्थान संघ या विहार ने ले लिया था। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा ने गुरु और शिष्य के पारिवारिक बन्धनों को नष्ट कर दिया।

(२) ब्राह्मणीय प्रणाली मे शिक्षा का केन्द्र गुरु-गृह था। इसका विकास अनेक शिक्षकों वाली शिक्षा-संस्था में नहीं हुआ। बौद्ध शिक्षा प्रणाली की यह एक प्रमुख विशेषता थी। बौद्ध विहारों में अनेक शिक्षक अध्यापन का कार्य करते थे।

(३) बौद्ध विहारों में अतुलित सम्पत्ति होती थी और वे धनी होते थे। हमें 'विनय पिटक' (Vinaya Pitaka) से ज्ञात होता है कि विहारों का जीवन उनके बाहर के जीवन से अधिक सुख और सुविधापूर्ण था। भिक्षुओं को भोजन का अभाव नहीं था और रोगग्रस्त होने पर उनका उपचार देश के सब प्रसिद्ध वैद्य जीवक (Jivaka) के द्वारा किया जाता था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं था कि अनेकों अवांछित मनुष्यों ने संघ में प्रवेश ले लिया। फलस्वरूप विनय सद्गुण और सद्ज्ञान के केन्द्र न रह गये। क्योंकि इन दूषणों ने ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में प्रवेश नहीं किया इसलिए भारत में एक बार फिर ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ।

(४) बौद्ध शिक्षा-पद्धति में गुरु शिष्य के सम्बन्ध इतने अच्छे नहीं थे जितने कि ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में थे। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रथम शिक्षा प्रणाली में छात्र के ऊपर गुरु का अधिकार कम हो गया। विनय के सभी भिक्षु पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। संघ के सभी प्रस्ताव भिक्षुओं की सभा के द्वारा पारित किये जाते थे और सब भिक्षुओं को मतदान का समान अधिकार

प्राप्त था । इस प्रकार जब कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त (Democratic Principle) पर आधारित थी ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति का आधार एक स्वामिक सिद्धान्त (Monarchical Principle) था ।

(५) उपसम्पदा संस्कार' दोनों शिक्षा-पद्धतियों के एक प्रमुख अन्तर की ओर संकेत करता है । ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति में ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद घर लौट आता था विवाह करता था और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था । इसके विपरीत उपसम्पदा संस्कार के बाद भिक्षु को संसार से अपने सभी बन्धनों को तोड़ देना पड़ता था और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने और बौद्ध धर्म का उपदेश करने में अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यतीत करने की शपथ लेनी पड़ती थी ।

(६) वैदिक संस्कृति का आधार व्यक्तिगत शिक्षा सस्थाएं और गुरुओं तथा शिष्यों की आदर्श परम्परा थी । इसके विपरीत बौद्ध संस्कृति विशाल विहारों में स्थित शिक्षा-संस्थाओं के संघ पर आधारित थी जिनमें अनेकों शिक्षक और विद्यार्थी रहते थे ।

(७) दोनों पद्धतियों में भिक्षाटन की प्रथा थी । पर भिक्षा मांगने के ढंग में अन्तर था । ब्रह्मचारी बोलकर भिक्षा मांग सकता था पर भिक्षु को मौन रूप से भिक्षा मांगनी पड़ती थी ।

(८) ब्राह्मणीय शिक्षा के समान बौद्ध शिक्षा वेदों पर आधारित नहीं थी और इसके शिक्षक ब्राह्मण नहीं थे । केवल वे ही ब्राह्मण अध्यापन का कार्य कर सकते थे जो बौद्ध धर्म को अङ्गीकार कर लेते थे । ब्राह्मणीय शिक्षा संस्थाओं के विपरीत बौद्ध शिक्षा शालाओं के द्वार प्रत्येक जाति के व्यक्तियों के लिये खुले हुए थे ।

(९) ब्राह्मणीय पद्धति में प्रत्येक विद्यालय या आश्रम का स्वतन्त्र अस्तित्व था । इसका अन्य शिक्षा-संस्थाओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता था । बौद्ध प्रणाली में प्रत्येक विद्यालय आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र होता था पर अन्य विद्यालयों के समान इसका सम्बन्ध संघ से होता था ।

(१०) ब्राह्मणीय शिक्षा-केन्द्रों में शिक्षा का माध्यम संस्कृत थी । बौद्ध विहारों में स्थित विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम पाली और देशी भाषाएं थी ।

(११) व्यावसायिक शिक्षा पर जितना बल ब्राह्मणों ने दिया उतना बौद्धों ने नहीं दिया ।

उपसहार

भारत म वदिक धम के पुनरुत्थान के कारण बौद्ध धर्म का ह्रास होना चला गया और कालान्तर म लुप्त हो गया । पर शिक्षा क क्षेत्र म बौद्ध धम ने क्रान्ति उत्पन्न कर दी । डा० एफ० ई० केई (Dr F E Keay) के अनुसार ब्राह्मणीय विद्यालयो के एक मात्र अधिकार को समाप्त करने और सब जातियो के मनुष्यो को शिक्षा का अवसर सुलभ करने मे बौद्ध धम ने भारत के लोगों म जन सामान्य की शिक्षा की इच्छा का कुछ विस्तार किया और उस मांग को प्रोत्साहित किया जिसके कारण सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयो का विकास हुआ ।

(In breaking down the monopoly of Brahmanic schools and offering the possibility of education to men of all castes Buddhism may have done something to extend amongst the people of India the desire for some popular education and to have stimulated a demand which led to the growth of the popular elementary schools

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Bring out some of the salient features of Brahmanical and Buddhist education Which of them in your opinion has stood the test of time ?

2 Buddhist education shows several radical departures from the Brahmanic. Discuss

3 Bring out the salient features of the Buddhist system of education

4 Give an account of the organization of the Buddhist education

३

मुस्लिम-कालीन शिक्षा
(Islamic Education)

विषय प्रवेश

भारत की आर्थिक उन्नति तथा सम्पन्नता से आकर्षित होकर मुसलमानों ने ईसा की आठवीं शताब्दी म भारत पर अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। मुहम्मद गोरी प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने बारहवी शताब्दी के अन्त में भारत म मुस्लिम राज्य का शिलान्यास किया। मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व यहाँ बौद्ध तथा ब्राह्मणीय शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। परन्तु मुसलमाना की धार्मिक कट्टरता के कारण अनेक हिन्दू शिक्षा-केन्द्र नष्ट कर दिये गए और उनकी पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया गया। इसके बावजूद भी प्राचीन एव सुव्यवस्थित संस्कृति पर आधारित तथा धर्म से प्रेरित भारतीय शिक्षा की धारा मुस्लिम प्रभाव से दूर स्थित स्थाना म अबाध गति स आगे बढ़ती रही। इसी के साथ-साथ जिन नगरा म मुसलमान विशाल संख्या म निवास करते थे अथवा कोई मुसलमान शासक रहता था वहाँ उस शिक्षा की धारा भी जिसका प्रेरणा स्रोत धार्मिक प्रवृत्तियाँ थी—प्रवाहित होने लगी।

मुस्लिम शासकों के समय में शिक्षा
(Education Under Muslim Monarchs)

मुहम्मद साहब का एक उपदेश यह था "दान में सोना देने की अपेक्षा अपने बच्चों को शिक्षा देना श्रेष्ठ है।" ("It is better to educate one's child than to give gold in charity") उनके अनुयायियों ने इस आदेश का अक्षरशः पालन किया और संसार के उन भागों में जहाँ उनका शासन था शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। यूरोप के सर्वप्रथम विश्वविद्यालयों में से कारडोवा (Cordowa) में मुसलमानों द्वारा स्थापित किया जाने वाला विश्वविद्यालय था। भारत के दुर्भाग्य से उन्होंने शिक्षा के प्रति यहाँ वह रुचि नहीं व्यक्त की। इसका कारण बताते हुए टी० एन० सिक्वेरा (T N Siqueira) ने लिखा है "भारत की मुस्लिम विजय इस्लामी शिक्षा के उस अन्धकारपूर्ण युग की समकालीन थी जब कि विद्यालयों ने संस्कृति के अपने विस्तृत आदर्शों को खो दिया था।" ("The Muslim conquest of India coincided with a dark age in Islamic education when the schools had lost their wider ideals of culture") फलतः अकबर के अतिरिक्त और किसी भी मुस्लिम शासक का उसके शिक्षा प्रयासों के लिए यशगान नहीं किया जा सकता है। मुहम्मद गोरी के समय से भारत के अन्तिम मुस्लिम शासक के राज्यकाल तक शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किये गये उनका संक्षिप्त विवरण नीचे की पंक्तियों में दिया जा रहा है।

१ मुहम्मद गोरी—सन् ११९२ ई० में मुहम्मद गोरी ने अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान को पराजित करके भारत में मुस्लिम राज्य की नींव डाली। उसने अजमेर को विजय किया और वहाँ के मन्दिरों को तुड़वा कर मस्जिदें और पाठशालाओं को तुड़वा कर मकतबों तथा मदरसों का निर्माण करवाया।

२ दास वंश के शासक—गोरी की मृत्यु के बाद उसके दास कुतुबुद्दीन ने सन् १२०६ ई० में शासन सूत्र सम्हाला। उसके सेनापति बख्तियार ने नालन्द और विक्रमशील के बौद्ध विश्वविद्यालयों को धराशायी किया जिससे हिन्दू शिक्षा को महान् क्षति पहुँची। पर कुतुबुद्दीन ने मस्जिदें बनवा कर जो धर्म और शिक्षा का केन्द्र थीं मुस्लिम शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। उसके उत्तराधिकारी अल्तमश ने दिल्ली में मदरसा-ए-मुअज्जी की स्थापना की। नासिरुद्दीन के प्रधान मंत्री के रूप में बलबन ने एक मदरसा का निर्माण किया और अपने स्वामी के नाम पर उसका नाम "नासिरया" रखा। मदरसे में,

सभी दास शासकों—कुतुबुद्दीन अल्तमश रजिया नासिरुद्दीन और बलबन ने मकतबों और मदरसों का निर्माण करके मुस्लिम शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

३ खिलजी वंश के शासक—गुलाम सुल्तानों के समान खिलजी सुल्तानों ने शिक्षा के प्रति कोई रुचि व्यक्त नहीं की। अलाउद्दीन ने अपने पूर्ववर्ती जलालुद्दीन द्वारा शिक्षा के काय में लिये दिये 'इनामों और वक्फों' (Gifts & Religious Endowments) को जब्त कर लिया। इतने पर भी उसे 'हौज खास' से सम्बद्ध एक मदरसा बनवाने का यश प्राप्त है। उसके परवर्ती शासक—मुबारक शाह ने शिक्षा के लिये दिये गये 'इनामों और वक्फों' को वापिस कर दिया पर दुर्भाग्य से वह थोड़े ही समय राज्य कर सका।

४ तुगलक वंश के शासक—सन् १३२५ ई० में अपने समय का सबसे बड़ा विद्वान् मुहम्मद तुगलक सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। ऐसे विद्वान् के शासन-काल में शिक्षा का तीव्र विकास होना अनिवार्य था। पर सन् १३२७ ई० में उसने दिल्ली से दौलताबाद को अपनी राजधानी का परिवर्तन करके अति महान् मूर्खता की। इससे दिल्ली में विद्वानों का पूर्ण अभाव हो गया और शिक्षा के केन्द्र के रूप में उसका नाम कुछ समय के लिए मिट गया। सम्भवतः शिक्षा की इस क्षति को पूर्ण करने के ही लिये मुहम्मद तुगलक ने सन् १३४६ ई० में दिल्ली में एक मदरसा बनवाया। उसके परवर्ती फिरोज तुगलक के समय में मुसलमानों की उच्च शिक्षा ने श्लाघनीय उन्नति की। वह स्वयं शिक्षित था और शिक्षित व्यक्तियों को संरक्षण देता था। इतिहासकार फरिश्ता (Ferishta) के अनुसार उसने ३० मदरसों की आधार शिला रखी। इनमें हौज-खास के पास 'मदरसये फिरोजशाही' था। वास्तव में यह साक्षात् विश्वविद्यालय था जिसमें शिक्षक और छात्र वहीं पर रहते थे। अपने समय का विद्वान् मौलाना जलालुद्दीन रूमी इसका प्रधानाचार्य था। फिरोज के समय में केवल दिल्ली में ३०० मकतब और मदरसे थे। डा० यूसुफ हुसैन (Yusuf Husain) के अनुसार फिरोज ने व्यावसायिक शिक्षा की भी व्यवस्था की। एन० एन० लॉ (N N Law) ने लिखा है कि फिरोज तुगलक ने शिक्षा पर ३६ लाख टंके (अर्थात् ३६ लाख रुपये) व्यय किये। फिरोज की मृत्यु के बाद शिक्षा की उपेक्षा की जाने लगी। सन् १३६८ ई० में तैमूर ने अपने आक्रमण के समय अपने मार्ग में स्थित सभी शिक्षा और धार्मिक संस्थाओं को पूर्ण पुनरित कर दिया।

५ सैयद और लोदी वंश के शासक—सैयद और लोदी राजाओं ने सन् १४१४ ई० से सन् १५२६ ई० तक शासन किया। पर सिकन्दर लोदी के

सिवा किसी और ने शिक्षा के लिये कुछ नहीं किया । स्वयं कवि और साहित्यकार होने के कारण सिकन्दर लोदी ने अपने राज्य के सब भागों में मदरसों की स्थापना की और उनमें अध्यापन का कार्य करने के लिये दूर दूर के स्थानों से योग्य शिक्षकों को आमन्त्रित किये । उसके द्वारा मथुरा और नरवर में स्थापित किये गये मदरसों में जाति और धर्म का भेद भाव किये बिना सभी वर्गों के छात्र विद्या का अर्जन कर सकते थे । इस प्रकार हिन्दुओं में फ़ारसी के अध्ययन की रुचि उत्पन्न करने का श्रेय सिकन्दर लोदी को है ।

६ मुग़लों द्वारा भारत की विजय—सन् १५२६ ई० में मुग़लों ने भारत की विजय करके मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली । उस समय देश के विभिन्न भागों में अनेकों मकतब और मदरसे थे । यहीं इस बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि उस समय तक मुसलमान शासकों ने किसी निश्चित शिक्षा-नीति का अनुसरण नहीं किया था । सम्भवतः यही कारण था कि बाबर को यह शिकायत करने का अवसर मिला कि भारत में अच्छी शिक्षा-संस्थाएं नहीं थीं । बात जो कुछ भी हो शिक्षा को मुग़ल सम्राटों से अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । हम विभिन्न मुग़ल सम्राटों की शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं —

७ बाबर—बाबर प्रथम मुग़ल सम्राट था । वह अरबी, फ़ारसी और तुर्की भाषाओं का विद्वान् था और उसे कविता से प्रेम था । उसके एक मन्त्री सय्यद मकसूद अली की तवारीख के अनुसार शोहरत आम विभाग (Public Works Department) का एक कर्तव्य यह था कि वह मकतबों और मदरसों के भवनों का निर्माण करवाये । दुर्भाग्य से ४८ वर्ष की अल्प आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई और उसकी शिक्षा-सम्बन्धी सभी योजनाएं अपूर्ण रह गईं ।

८ हुमायूं—बाबर के पुत्र हुमायूं को अध्ययन में इतनी अधिक रुचि थी कि उसके साथ सदैव कुछ चुनी हुई पुस्तकों का संग्रह रहता था । उसके द्वारा दिल्ली में बनवाये गये मदरसे में गणित, भूगोल और नक्षत्र विद्या के शिक्षण का विशेष प्रबन्ध था । उसने किले में एक पुस्तकालय का निर्माण करवाया था जिसके दरवाजे से गिरने पर उसकी मृत्यु हुई थी । इतिहासकार जाफर (Jaffar) के अनुसार हुमायूं के मकबरे में सम्बद्ध एक मदरसा था । भारत से हुमायूं के निर्वासन के समय शेरशाह ने उसके सिंहासन पर आरूढ़ होकर नारनौल में एक मदरसा स्थापित किया ।

९ अकबर—अकबर के शासन-काल में मकतबों और मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा ने नव युग में प्रवेश किया। उसने आगरा फतेहपुर-सीकरी गुजरात और अन्य स्थानों में मदरसे बनवाये। ये मदरसे सावास थे और इनका व्यय भार राज्य के द्वारा वहन किया जाता था। डा० यूसुफ हुसेन (Yusuf Husain) का कथन है, उसके आदेश के अनुसार पाठ्य-क्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण विषय सम्मिलित किये गये जैसे—तर्कशास्त्र गणित भूमिति रेखागणित नक्षत्र विद्या लेखाशास्त्र सार्वजनिक प्रशासन और कृषि। इस योजना ने देश की समस्त शिक्षा-व्यवस्था को लौकिक पक्ष दे दिया। (At his suggestion certain important subjects such as Logic Arithmetic Mensuration Geometry Astronomy Accountancy Public Administration and Agriculture were included in the course of studies This scheme gave a secular bias to the entire educational system of the country) उच्च शिक्षा के स्तर पर नीति शास्त्र (Ethics) गणित (Arithmetic) लेखाशास्त्र कृषि रेखागणित नक्षत्र विद्या अर्थशास्त्र पदार्थ शास्त्र (Physics) तर्कशास्त्र भौतिक विज्ञान (Natural Philosophy) और इतिहास के शिक्षण की व्यवस्था थी। मुस्लिम विद्यार्थियों को कुरान और हिन्दू छात्रों को व्याकरण वेदांत और योग पर पातंजलि की व्याख्या की शिक्षा दी जाती थी। राज्य द्वारा सचालित शिक्षा-संस्थाओं के अतिरिक्त अनेकों व्यक्तिगत शिक्षालय भी थे जिनमें स्नातकोत्तर स्तर पर संगीत चित्रकारी, दर्शन और गणित की शिक्षा दी जाती थी।

अपनी धार्मिक सहिष्णुता की नीति से प्रेरित होकर अकबर ने अपने शासन के अन्तिम वर्षों में मकतबों और मदरसों में हिन्दू छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था कर दी। हिन्दू बालक मुसलमान लड़कों के साथ अध्ययन करने लगे और दोनों ने समान पाठ्य-क्रम का अनुसरण किया। क्योंकि अकबर की स्वयं यन्त्रों में रुचि थी इसलिये उसने कारखानों की स्थापना की जहाँ प्राविधिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

१० जहाँगीर—अकबर ने जिस निश्चित शिक्षा नीति की स्थापना की थी उसका अनुसरण उसके पुत्र जहाँगीर ने नहीं किया। फिर भी वह अपने राज्य में शिक्षा की प्रगति को बनाये रहा। उसने यह नियम बना दिया था कि यदि किसी धनी मनुष्य या यात्री की मृत्यु हो जाय और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो तो उसकी सम्पत्ति राज्य के अन्तर्गत आ जाय और उसका प्रयोग मदरसों की स्थापना तथा संरक्षण के लिये किया जाय। तारीख जहाँ (Tarikh-i-Jahan) के अनुसार राजसिंहासन पर बैठते ही उसने उन मदरसों

की मरम्मत करवाई जिनमें ३० वर्ष से पक्षियों एवं पशुओं का निवास था और उनको छात्रों तथा शिक्षकों से भर दिया।

११ शाहजहाँ—निस्सन्देह शाहजहाँ को सुन्दर इमारतों से प्रेम था पर उसने शिक्षा की उपेक्षा नहीं की। उसने विद्वानों और कवियों को पुरस्कार तथा वृत्तियाँ देकर शिक्षा को प्रोत्साहित किया। सन् १६५० ई० में उसने दिल्ली की जामा मस्जिद के पास एक मदरसा स्थापित किया। उसने दारुलबका नामक मदरसे को, जो खण्डहर हो गया था मरम्मत करवाई। उसकी पुत्री जहाँनारा बेगम ने आगरा की जामा मस्जिद से सम्बद्ध एक मदरसा बनवाया।

१२ औरंगज़ेब—यद्यपि औरंगज़ेब स्वयं बहुत शिक्षित था पर वह अपने पूर्ववर्तियों के समान हिन्दुओं के प्रति सहिष्णु नहीं था। अतः वह उनकी शिक्षा से वैमनस्य रखने लगा। सर यदुनाथ सरकार (Sir Jadu Nath Sarkar) के अनुसार उसने सन् १६६६ ई० में हिन्दू मन्दिरों और विद्यालयों को नष्ट करने का आज्ञा दे दी। पर इसके साथ-साथ उसने मुस्लिम शिक्षा को प्रत्येक प्रकार की सहायता दी। एच० जी० कीन (H G Keene) ने लिखा है—"उसने मुसलमानों के लिये अनेकों मकतबों और मदरसों की स्थापना की। (He founded numberless colleges and schools for Muslims.") उसने निधन पर योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी। उसने गुजरात की पिछड़ी हुई बोहरा जाति को शिक्षित करने के लिये आर्थिक सहायता दी।

१३ उत्तरकालीन मुगल सम्राट—औरंगज़ेब के बाद आने वाले मुगल सम्राटों के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य प्राय नगण्य थे। इस सम्बन्ध में डा० एफ० ई० के (Dr F E Keay) ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये हैं "औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का वैभव शीघ्रता से समाप्त होने लगा और सम्राटों या गैर-सरकारी व्यक्तियों द्वारा शिक्षा-संस्थाओं को निर्मित करने और उन्हें धन सम्पन्न करने के प्रयास बहुत ही कम हो गये। ("After the death of Aurangzeb the glory of the Mughal Empire began rapidly to wane and the efforts made by Emperors or private individuals to erect and endow educational institutions became much more rare")

१४ नादिरशाह का आक्रमण—सन् १७३० ई० में भारत पर किये जाने वाले नादिरशाह के आक्रमण ने इस देश की शिक्षा पर अति प्रबल कुठाराघात किया। अन्य वस्तुओं के साथ जिन्हें नादिरशाह अपने साथ फारस को ले गया, वह शाही पुस्तकालय भी था जिसे अनेकों मुगल सम्राटों ने अति रुचि और परिश्रम से विभिन्न विषयों की पुस्तकों से सम्पन्न और अलंकृत किया था।

शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

भारत के प्राय सभी मुस्लिम शासको की अपनी आकांक्षाए परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ थी और इन्हीं के अनुरूप उनके शासन काल मे शिक्षा के उद्देश्य रहे। इसके अतिरिक्त मुस्लिम शासको मे कुछ उदार और कुछ अनुदार थे। बख्तियार अलाउद्दीन फिरोज तथा औरंगजेब ऐसे अनुदार शासको का एक मात्र उद्देश्य हिन्दू संस्कृति तथा शिक्षा को नष्ट करके उनके स्थान पर इस्लामी शिक्षा एव सिद्धान्तो का प्रसार करना था। इनके विपरीत अल्तमश मुहम्मद तुगलक अकबर तथा शाहजहाँ ऐसे शिक्षा प्रेमी शासको का उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना और उसे प्रोत्साहन देना था। उद्देश्यो की इस विभिन्नता के बावजूद भी प्राय सभी मुस्लिम शासक इस्लाम का प्रचार करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य एव दायित्व समझते थे।

साराश मे मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्यो को अधोलिखित शब्दो म व्यक्त किया जा सकता है —

१ ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करना—मुस्लिम शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य इस्लाम के बन्दो म ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करना था। हजरत मुहम्मद ने ज्ञान को अमृत बताया और प्रत्येक सच्चे मुसलमान से ज्ञानार्जन की आशा व्यक्त की। उन्होंने धर्म तथा अधर्म और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य म अन्तर जानने के लिए अपने धर्म के अनुयायियो को ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

२ इस्लाम धर्म का प्रचार—मुस्लिम शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करना था। मुसलमान अपने धर्म के प्रचार को सवाब (पुण्य) मानते हैं और उनका विश्वास है कि धर्म का प्रचार करने वाला ही गाजी होता है। भारत म मुस्लिम शासको ने धर्म प्रचार की अनेक विधियो मे शिक्षा को भी स्थान दिया और इसके द्वारा भारत म इस्लाम का पर्याप्त प्रचार किया। मकतबो म अध्ययन-काल के प्रारम्भ से ही कुरान की शिक्षा दी जाती थी और इस प्रकार छात्रो को इस्लाम के आधारभूत सिद्धान्तो से परिचित कराया जाता था। मदरसो म धर्म दर्शन साहित्य तथा इतिहास के रूप म इस्लाम का प्रचुर मात्रा म प्रसार किया गया।

३ एक विशिष्ट नैतिकता का प्रचार—मुस्लिम शिक्षा का तीसरा उद्देश्य इस्लाम के अनुसार व्यक्तियो म एक विशिष्ट नैतिकता का प्रचार करना था। मुसलमानो की नैतिकता हिन्दुओ की नैतिकता से पूर्णत भिन्न थी। वे अपने साथ जिन नैतिक भावनाओ को लाये थे उन्हीं को शिक्षा के द्वारा भारतीय मुस्लिमों म जाग्रत करना चाहते थे।

४ मुस्लिम सिद्धान्तों कानूनों तथा सामाजिक प्रथाओं का प्रसार—मुस्लिम शिक्षा का चौथा उद्देश्य मुस्लिम सिद्धान्तों, कानूनों तथा सामाजिक प्रथाओं का प्रसार करना था जिससे अधिक से अधिक भारतीय इस्लाम से प्रभावित होकर उसके समक्ष आत्म-समर्पण कर दें।

५ मुसलमानों को धर्म-परायण बनाना—मुस्लिम शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य मुसलमानों को धर्म-परायण बनाना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मकतब तथा मदरसे मस्जिदों के एक भाग में होते थे। इन मस्जिदों में सामूहिक रूप से नमाज पढ़ी जाती थी जिससे व्यक्तियों में धर्म परायणता की भावना का समावेश सरलता से किया जा सके।

६ सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति—मुस्लिम शिक्षा का छठा उद्देश्य सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति था। इस्लाम का आधार मानव की दो मूल प्रवृत्तियाँ—अर्थ एवं यौन पर आधारित रहा है। अतः इन दोनों की अथवा भौतिक वैभव की प्राप्ति मुस्लिम शिक्षा का एक प्रधान लक्ष्य रहा। जो व्यक्ति शिक्षित होते थे उन्हें मुसलमान शासक सिपहसालार काजी अथवा वजीर इत्यादि के पद पर नियुक्त कर देते थे। इस लोभ के वशीभूत होकर मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दुओं ने भी मुस्लिम शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया।

७ मुस्लिम शासन को सुदृढ़ बनाना—मुस्लिम शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य हिन्दुओं को मुस्लिम सभ्यता संस्कृति तथा आदर्शों से रंग कर भारत में मुस्लिम शासन को सुदृढ़ बनाना था। मुसलमान शासक इस बात से पूर्णतया परिचित थे कि इस देश की विशाल हिन्दू जनता के दृष्टिकोण को शिक्षा के द्वारा परिवर्तित करके ही मुस्लिम सभ्यता तथा संस्कृति का उपासक बनाया जा सकता है और इस प्रकार उन्हें मुस्लिम शासन के दृढ़ स्तम्भ बनाया जा सकता है। सम्राट अकबर के शैक्षिक प्रयास इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थे।

शिक्षा की व्यवस्था (Organization of Education)

मुस्लिम युग में शिक्षा की व्यवस्था मकतबों और मदरसों में की गई थी। मकतब प्रारम्भिक शिक्षा और मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। ये मकतब तथा मदरसे साधारणतः किसी मस्जिद से सम्बद्ध होते थे। इनकी स्थापना मुस्लिम शासकों एवं धनी वर्ग तथा प्रमुखों—दोनों के द्वारा की गई थी। इनका निर्माण वहीं पर होता था जहाँ किसी अमीर उमराव का निवास होता था और मुसलमानों की संख्या अधिक होती थी। इनमें सबसे अधिक सामान्य होते

थाल उच्च वर्ग के मुसलमानों के ही बालक होते थे। जन-साधारण के बालकों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का कोई सुलभ साधन नहीं था।

प्रारम्भिक शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी। मक्तब शब्द अरबी भाषा के कुतुब' शब्द से बना है जिसका अर्थ है— उसने लिखा। इस प्रकार मक्तब वह स्थान है—जहाँ लिखना सिखाया जाता है। समस्त मुस्लिम बालकों से मक्तबों में शिक्षा प्राप्त करने की आशा की जाती थी जिससे कि वे दैनिक धार्मिक कृत्यों में प्रयोग किए जाने वाले कुरान के विशिष्ट भागों से अवगत हो जायें। मकतब में प्रवेश के समय 'बिस्मिल्लाह' रस्म सम्पादित की जाती थी। यह रस्म उस समय सम्पन्न की जाती थी जब बालक ४ वर्ष ४ माह और ४ दिन का होता था।

मक्तबों में दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्य-क्रम विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार का था। Yusuf Husain ने लिखा है— साधारणतः बालकों को लिखना पढ़ाना तथा प्रारम्भिक गणित का ज्ञान कराया जाता था। सुन्दर लेख पर विशेष रूप से बल दिया जाता था।" बालकों को कुरान की कुछ आयतें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। जब छात्रों को लिपि का ज्ञान हो जाता था तब उनको फ़ारसी भाषा और व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। बालकों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें 'गुलिस्तॉं' और 'बोस्तॉं' पढ़ाये जाते थे। इनके अतिरिक्त पैगम्बरों की कथाएं, मुस्लिम फकीरों की कहानियाँ तथा फारसी कवियों की कतिपय कविताओं का ज्ञान भी कराया जाता था। व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत बातचीत के ढंग, पत्र-लेखन अथवा अर्ज़ीनवीसी पर बल दिया जाता था।

मक्तबों की शिक्षण विधि मौखिक थी। बालकों को 'कलमा' रटना पड़ता था और कुरान की आयतें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। एक कक्षा के समस्त छात्र उच्च स्वर से एक साथ बोलकर पहाड़े याद करते थे। लिखने के लिए तख्तियों का प्रयोग किया जाता था जिन पर बालक मोटे सरकण्डे की कलम से लिखते थे। फिर उन्हें पतली कलम से कागज पर लिखने का अभ्यास कराया जाता था।

उच्च शिक्षा—मक्तब की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्र मदरसे में प्रविष्ट होता था। 'मदरसा' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के 'दरस' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है— भाषण देना।' इस प्रकार 'मदरसा' वह स्थान है जहाँ पर भाषण दिये जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मदरसा की शिक्षण पद्धति व्याख्यानों पर आधारित थी। इन मदरसों में भिन्न भिन्न विषयों के शिक्षक होते थे।

मदरसा के अध्यापक छात्रों म स्वाध्याय की आदतों का प्रोत्साहित करते थे। प्रत्येक छात्र को अपने विषय से सम्बन्धित पाठ दे दिया जाता था और शिक्षकों द्वारा उसकी कठिनाइयों को हल करके उसकी प्रगति म योग दिया जाता था। चिकित्सा हस्त-कला शिल्पकला एव सगीत आदि विषयो की प्रायोगिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। धर्म, दर्शन तर्कशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के अध्ययन के लिए तर्क विधि का अनुसरण किया जाता था। शिक्षा का माध्यम अरबी था।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एव विशेषताएँ
(Basic Principles & Features of Education)

मुसलमानों के आगमन से भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को पर्याप्त क्षति पहुँची। मुसलमानो ने उसका ध्वस करने म कोई कसर न उठा रखी और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षा तथा शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया। उसके आधारभूत तत्त्व तथा विशेषतायें निम्नांकित थी—

१ शिक्षा को प्रोत्साहन—मुस्लिम युग म शिक्षा को राज्य द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। भारत के मुस्लिम शासकों ने साधारणतया शिक्षा म विशेष रुचि व्यक्त की। उनम से अनेकों ने अपने राज्य के विभिन्न भागो मे मकतबो मदरसो तथा पुस्तकालयों की स्थापना की। देश के धना-मानी व्यक्तियों ने शासकों के उदाहरणों का अनुसरण किया। शासको तथा अमीर उमरावो द्वारा विद्वानो कवियो तथा अन्य साहित्यिक पुरुषों को सरक्षण प्रदान किया गया। छात्रों को प्राय छात्रवृत्तियाँ (Scholarships) तथा शिष्य-वृत्तियाँ (Studentships) प्रदान की जाती थी। इन सब सुविधाओं के फलस्वरूप शिक्षा का प्रशसनीय प्रसार हुआ।

२ शिक्षा की व्यापकता का अभाव—मुस्लिम युग में शिक्षा का प्रसार अवश्य हुआ पर उसम व्यापकता का अभाव था। मकतबों तथा मदरसो म प्रदान की जाने वाली शिक्षा पर व्यापक धार्मिक कट्टरता की छाप लगी थी अत हिन्दू जनता उनसे लाभान्वित न हो सकी। शिक्षा की जो भी व्यवस्था थी वह केवल नगरों म उच्च तथा मध्य वर्गों के बालकों के लिए ही थी। फलत जन-साधारण म बालकों के लिए ज्ञानार्जन करने का कोई साधन नहीं था।

३ प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा—मुस्लिम शिक्षा-केन्द्रों म शिक्षा का माध्यम अरबी अथवा फारसी था। फलस्वरूप प्रान्तीय भाषाओं का प्रगति पूर्णत अवरुद्ध हो गई। राजपदों के लिये लालायित हिन्दुओं ने भी अपनी

मातृभाषा की उपेक्षा करके अरबी तथा फ़ारसी का अध्ययन किया। अकबर की उदार नीति के कारण हिन्दी को प्रोत्साहन तो अवश्य प्राप्त हुआ परन्तु उसकी कोई विशेष प्रगति परिलक्षित न हुई। औरंगज़ेब ने उर्दू भाषा को प्रोत्साहित किया। इन दोनों मुगल शासकों के समय में जो परिवर्तन हुए उनका अरबी तथा फ़ारसी पर कोई प्रभाव न पड़ा और इन दोनों भाषाओं का प्राधान्य यथावत् बना रहा।

४ शिक्षा का लौकिक दृष्टिकोण—मुस्लिम शिक्षा में धार्मिकता का विशेष स्थान था, परन्तु इस्लाम धर्म में इस लोक की वास्तविकता पर विशेष बल दिये जाने के फलस्वरूप लौकिक जीवन ने मुसलमानों को अत्यधिक आकृष्ट किया फलतः शिक्षा-क्षेत्र पर लौकिकता का व्यापक प्रभुत्व रहा। प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता का मुस्लिम शिक्षा में सर्वथा अभाव रहा। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य लौकिक यश सुख तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति माना गया। अतः हम कह सकते हैं कि मुस्लिम शिक्षा का एक आधारभूत तत्त्व बौद्धिक विकास की अवहेलना करके काल विशेष की आवश्यक माँगों की पूर्ति करना अभीष्ट था।

५ गुरु शिष्य सम्बन्ध—मुस्लिम युग में शिक्षा के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप गुरु भक्ति के उस महान् आदर्श का ह्रास होने लगा जो प्राचीन भारत में था। औरंगज़ेब ने अपने गुरु मुल्ला शाह सालेह को अज्ञातवास की आज्ञा देकर जो कठोर व्यवहार किया वह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। फिर भी जैसा कि Jaffar ने लिखा है— साधारणतया समाज में गुरुओं का सम्मान होता था। विद्यार्थी उनके प्रति विनम्र तथा भक्तिपूर्ण होते थे। गुरु की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। जिन मदरसों में छात्रावासों की व्यवस्था थी वहाँ शिक्षक तथा विद्यार्थी एक साथ रहते थे। इस प्रकार एक दूसरे में निकट सम्पर्क स्थापित हो जाता था और आत्मीयता की वृद्धि होती थी। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों का अपने गुरुओं से और भी निकट सम्पर्क रहता था क्योंकि अपने शिल्प में दक्षता प्राप्त करने के लिये शिल्प विद्यार्थी का शिल्पकार के साथ निरन्तर रहना आवश्यक था।

६ अनुशासन तथा दण्ड विधान—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है शिक्षकगण छात्रों के पूज्य तथा श्रद्धा के पात्र थे। अतः अध्यापक के समक्ष अनुशासन की समस्या उपस्थित नहीं होती थी। फिर भी कुछ उच्छृङ्खल छात्र होते थे जिनकी विकृत मनोवृत्तियों का दमन करने के लिए दण्ड का प्रयोग किया जाता था। राज्य की ओर से कोई दण्ड विधान निर्धारित न होने प

कारण शिक्षक विद्यार्थियों को कोई भी दण्ड देने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। सामान्यतः दण्ड अति कठोर एवं निर्मम थे। छात्रों का बेंत कोड़े और घूँसे से शारीरिक दण्ड दिया जाता था। यदि कोई छात्र महान् अपराध करता था तो उसे मुर्गा बनाकर उसकी पीठ या गरदन पर ईंट या भारी लकड़ी रख दी जाती थी जिसे वह निश्चित समय तक गिरा नहीं सकता था।

स्त्री शिक्षा (Education of Women)

मुस्लिम संस्कृति में पर्दा प्रथा का विशेष महत्व है। पर इस्लाम स्त्री-शिक्षा का निषेध नहीं करता है। इन दोनों विरोधी तत्वों ने नारी शिक्षा पर दो विभिन्न प्रभाव पड़े। बालकों के समान बालिकाओं को एक निश्चित आयु के बाद विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाने का अधिकार नहीं है। शिक्षा का निषेध न होने के कारण अच्छे परिवारों की बालिकायें घर पर विद्याभ्यास कर सकती हैं। यही बातें मुस्लिम शासन-काल में भी थीं। साधारणतः छोटी आयु की बालिकायें मस्जिदों में पढ़ने के लिये जाती थीं। पर निम्न वर्गों की बालिकाओं की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण करने के बाद या उससे पहिले ही समाप्त हो जाती थी। उनके लिये उच्च शिक्षा के अवसर कम थे। जहाँ तक धन सम्पन्न परिवारों की बालिकाओं का प्रश्न था, वे व्यक्तिगत रूप से अपने घरों पर शिक्षकों से ज्ञान का अर्जन करती थीं। तुर्क अफगान काल में राज परिवार की बालिकायें व्यक्तिगत रूप से शिक्षा ग्रहण करती थीं। हम 'तबक़ाते नसीरी' (Tabqat-i-Nasiri) से ज्ञात होता है कि रजिया सुल्ताना ने न केवल उच्च शिक्षा वरन् युद्ध कौशल की भी उत्तम शिक्षा प्राप्त की था।

मालवा के शासक गयासुद्दीन सुल्तान ने सारंगपुर में बालिकाओं के लिये एक मदरसे का निर्माण किया था। फरिश्ता (Ferishta) के अनुसार इसमें बालिकाओं को नृत्य संगीत सीना बुनना मखमल तैयार करना, जर्दोजी सुनारगीरी सुहागरीरी, तरकश बनाना, सूत बनाना, कुन्दी लहना और रणक्षेत्र की कलायें सिखाई जाती थी। पर इस मदरसे में धन व्यय करने में समर्थ व्यक्तियों की बालिकायें ही अध्ययन कर सकती थी।

मुगल काल में राजकुमारियों को नियमित रूप से शिक्षा देने की व्यवस्था थी। Majumdar Raychaudhari and Datta ने अपने इतिहास में लिखा है कि इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने वाली राजकुमारियों में से अनेकों ने शिक्षा-जगत में अपना नाम अमर कर दिया। उदाहरणार्थ—बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने "हुमायूँ नामा" की रचना की। हुमायूँ की भतीजी सलीमा

सुल्ताना ने फारसी भाषा में अनेकों कविताओं की रचना की। नूरजहाँ, मुमताज् महल, जहाँनारा बेगम और जेबुन्निसा—फारसी और अरबी साहित्य की श्रेष्ठ विदुषियाँ थीं।

राजघराने और कुलीन वर्ग की बालिकाओं के अतिरिक्त मध्य वर्ग की बालिकाओं की शिक्षा भी एक साधारण बात थी। Dr Yusuf Husain ने लिखा है 'निजी घरों में बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देने के लिये मकतबें थी जहाँ अधिक आयु की स्त्रियाँ उनको कुरान गुलिस्ताँ बोस्ताँ और सदाचार की पुस्तकें पढ़ाती थीं'। Dr Husain के मतानुसार निर्धन व्यक्तियों की बालिकाओं के लिये भी शिक्षा के अवसर थे। उन्होंने लिखा है, 'मध्य वर्ग के परिवारों की विधवा स्त्रियाँ अपने घरों में अपने पास-पड़ौस के निर्धन व्यक्तियों की पुत्रियों को सामार्थ व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देती थी।' पर इस प्रकार की शिक्षा के अवसर बहुत कम थे।

व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education)

व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दिल्ली के सुल्तानों और मुग़ल सम्राटों—दोनों ने पर्याप्त ध्यान दिया। फलस्वरूप मध्यकालीन भारत में विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने की सरलता था। यथा—

१ जीविका-सम्बन्धी शिक्षा (Vocational Education —Jaffar के अनुसार जीविका-सम्बन्धी शिक्षा कारखानों में दी जाती थी। यहाँ लड़के किसी शिल्पकार के शिष्य बनकर विभिन्न कला-कौशलों में प्रवीणता प्राप्त करते थे। मुहम्मद तुग़लक ने अनेकों कारखानों की स्थापना की थी। ये कारखाने राज परिवार और सरकारी विभागों की माँगों की पूर्ति करते थे। फिरोज़ तुग़लक के समय में इन कारखानों में विभिन्न प्रकार की हस्तकलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था।

अकबर के समय में जीविका-सम्बन्धी शिक्षा को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। उसके शासन-काल में सब कारखाने 'दीवान बुयुतात' कहे जाने वाले सरकारी विभाग के अधीन थे। इन कारखानों में कई भाग होते थे और प्रत्येक में एक कला की शिक्षा दी जाती थी। Father Monserrate के अनुसार कुछ कलायें ये थीं—चित्रकला सुनार का काम कपड़ा बनाना दरी और पर्दे बनाना तथा अस्त्र-शस्त्र तयार करना। Bernier ने कुछ और कलाओं का उल्लेख किया है जैसे—कसीदाकारी दर्जी का काम जूते बनाना और मखमल तयार करना। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में कारखाने प्रशिक्षण

देने के काम को यथावत् करते रहे। औरंगजेब ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

कारखाना के सम्बन्ध में अपने मत को व्यक्त करते हुए Dr Yusuf Husain ने लिखा है 'कारखाने केवल उत्पादन के साधन ही नहीं थे वरन् शिल्प दासत्व की प्रणाली के अनुसार युवकों को प्राविधिक और जीविका सम्बन्धी प्रशिक्षण देने के केन्द्र के रूप में भी कार्य करते थे। वे व्यवसाय को सीखने के लिये किसी उस्ताद के शिष्य बना दिये जाते थे और कुछ समय के बाद स्वयं दक्ष हो जाते थे।' (The *Karkhanahs* were not only manufacturing agencies but also served as centres for technical and vocational training to young men by the system of apprenticeship They were placed under a master-craftsman (*Ustad*) to learn the trade and in course of time became experts themselves ')

सैनिक शिक्षा (Military Education)—हिन्दू राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये मुस्लिम शासकों को निरन्तर युद्ध करने पड़े। ऐसी स्थिति में सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य समझा गया। राजकुमारों को युद्ध-कला में दक्ष करने का प्रयास किया जाता था। मुस्लिम सैनिकों को भी सैनिक शिक्षा दी जाती थी। मुगल काल में सैनिक पाठ्यक्रम का विस्तार करके उसमें गोली चलाना और हाथियों पर युद्ध करना सम्मिलित कर दिया गया। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सैनिक शिक्षा के लिये सैनिक विद्यालय नहीं थे। यह शिक्षा राज्य-सेना के सैनिकों द्वारा दी जाती थी।

३ औषधि विज्ञान की शिक्षा (Medical Education)—औषधि विज्ञान की शिक्षा उचित रूप से देने के लिये संस्कृत पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया गया। सिकन्दर लोदी के समय में मुवहू बिन ख्वास खाँ ने "मदानुल शिफा ए सिकन्दरी" नामक पुस्तक की रचना की। संस्कृत पुस्तकों पर आधारित औषधि विज्ञान की अन्य पुस्तकें थीं— "दस्तूर उल अतिब्बा" "इलाज-ए-शरीफ़ और तुहफ्त-अल-मोमिन"।

औषधि विज्ञान की शिक्षा अनेक मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में दी जाती थी। रामपुर औषधियों के प्रयोग की शिक्षा देने के लिये प्रसिद्ध था। अकबर द्वारा आगरा में स्थापित किये गये कुछ मदरसों में औषधि विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।

४ भवन निर्माण कला चित्रकला नृत्य-कला और संगीत का प्रशिक्षण (Training in Architecture Painting, Dancing and Music)—इस

बात के अनेकों प्रमाण मिलते हैं कि मुस्लिम शासनकाल में भवन निर्माण कला चित्रकला नृत्य-कला और संगीत के प्रशिक्षण के लिये सुविधायें थी। इन कलाओं में प्रशिक्षण की विधि वंशागत और परम्परागत थी। शिष्यों को घर पर या कारखानों में प्रशिक्षण दिया जाता था। ये सभी कलाएं जनप्रिय थी और इनको राजाओं तथा अमीरों का संरक्षण प्राप्त था। तुर्क-अफ़गान युग में प्रारम्भ की गई भवन निर्माण कला को मुगलों ने चरम सीमा पर पहुँचाने का प्रयास किया। शाहजहाँ की भवन निर्माण कला बड़े पैमाने पर रत्नराशि थी। जहाँगीर चित्र का अत्युत्तम पारखी था। हुसैन ने 'ख्याल' संगीत को स्थायी रूप दिया और कुछ राग रागिनियों का आविष्कार किया। अकबर कुशल संगीतज्ञ था और अति सुन्दर ढंग से नक्कारा बजा सकता था।

उपसंहार

Yusuf Husain का कथन है— मध्यकालीन भारत की शिक्षा पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने से यह बात निर्विवाद रूप से सत्य प्रतीत होती है कि उस युग की शिक्षा प्रणाली में सचीलेपन का अभाव था फलतः यह अत्यधिक अनम्य तथा अनिर्माणकारी हो गई थी। ('Critically speaking the system of education in vogue in medieval India lacked resilience and had become much too rigid and non-creative.) समय समय पर उसमें परिवर्तन अवश्य किये गये पर वह अपने को समय की मांगों के अनुकूल बनाने में समर्थ न हुई। शिक्षा का एक प्रमुख मन्तव्य है— व्यक्ति का बौद्धिक विकास करना जिससे कि वह सामाजिक तथा प्राकृतिक घटनाओं के सम्बन्ध को समझ सके और तदनुसार अपने को समय तथा स्थान के अनुकूल बना सके। यह मानसिक प्रगति का लक्षण है और इसके अभाव में कोई भी मानव समुदाय उन्नति नहीं कर सकता है।

Yusuf Husain के मतानुसार— मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली का मुख्य दोष यह था कि उसमें छात्रों को परिशुद्ध निरीक्षण तथा व्यावहारिक निर्णय प्रदान करने की क्षमता नहीं थी। यह अत्यधिक अनम्य निष्प्राण तथा पुस्तकीय थी। (The chief failing of the medieval system of education was that it was not found adequate to enable its adherents to form habits of accurate observation and practical judgment It was much too rigid sterile and bookish)

किसी भी शिक्षा प्रणाली की सर्वोत्तम कसौटी यह है कि क्या वह व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए उनकी शक्तियों का पूर्ण विकास

करती है अथवा नहीं ? इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए Yusuf Husain ने लिखा है— यह कथन एक एतिहासिक सत्य है कि मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली व्यक्ति में नतृत्व के गुणो का विकास करन म असफल रही और इस प्रकार वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रो म असाधारण व्यक्तित्व की पूर्ति न कर सकी। ('It would be historically true to assert that the medieval system of education failed to impart the qualities of leadership and thus ensure the supply of outstanding personalities in the different walks of life)

साराश में, यह कह सकते हैं कि यदि मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली म प्रखर व्यक्तित्व का निर्माण करने की क्षमता होती तो सम्भवत भारत का मानचित्र लाल रग से न रगा गया होता।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Give a brief account of the system of education that existed in India during the Muslim period of Indian history

2 Discuss briefly the progress of education under the Muslim rulers of India

3 Write a note on the organization of Muslim education

4 Write short notes on the following —
(a) Value of *Maktabs* as educational institutions,
(b) *Karkhanahs* as centres of vocational education,
(c) Aims of Muslim education
(d) Position of teacher and teacher pupil relationship

८

आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ
(Beginning of Modern Education)
मिशनरी प्रयास
(Missionary Efforts)

विषय प्रवेश

औरंगजेब की मृत्यु (१७०७ ई.) के उपरान्त देश में अशान्ति और अराजकता फैल गई। इससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर तीव्र कुठाराघात हुआ और उसकी काया दिन प्रतिदिन जीर्ण और जर्जर होती चली गई। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में पोषित आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पनपने लगी। इसका प्रमुख कारण भारत में यूरोप निवासियों का आगमन था। १७वीं शताब्दी में पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, डेन और अंग्रेज अपनी अपनी व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण करके भारत में व्यापार करने लगे थे। योरोप के इन व्यापारियों के कुछ समय पश्चात् यहाँ के ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया। इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य यहाँ के निवासियों में अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करना था। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने शिक्षा को अपना साधन बनाया। अतः उन्होंने शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं और उनमें आधुनिक शिक्षा की व्यवस्था की। यहीं से भारत में आधुनिक शिक्षा के इतिहास का श्रीगणेश होता है।

मिशनरियों के शिक्षा कार्य (Educational Activities of the Missionaries)

१ पुर्तगाली—पुर्तगाली मिशनरियों ने गोआ डामन द्यू कोचीन सका हुगली और चटगाँव में प्रारम्भिक विद्यालय खोले। इनमें पुर्तगाली भाषा कुछ स्थानीय भाषाओं थोड़ी-सी कारीगरी और कृषि गणित तथा रोमन कैथोलिक धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इन मिशनरियों ने उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १५७५ ई० में बाँद्रा में प्रथम जेसुइट (Jesuit) कॉलेज खोला गया। सेन्ट ऐन (St Anne) नामक एक दूसरा कॉलेज बान्दोरा में स्थापित किया गया। गोआ बेसीन और कुछ अन्य स्थानों में भी कॉलेज खोले गये। इन कॉलेजों में लैटिन ईसाई धर्म तर्कशास्त्र व्याकरण और संगीत की शिक्षा दी जाती थी।

२ फ्रांसीसी—फ्रांसीसियों ने अपनी बस्तियों—पाँडिचेरी माहीं यनाम कारीकल और चन्द्रनगर—में प्रारम्भिक विद्यालय खोले। इनके द्वार सब भारतीय बच्चों के लिये खुले हुए थे। इनमें भारतीय शिक्षकों द्वारा स्थानीय भाषाओं में शिक्षा दी जाती थी। ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। इन मिशनरियों ने पाँडिचेरी में एक माध्यमिक विद्यालय भी खोला जिसमें फ्रांसीसियों और कम्पनी के भारतीय कर्मचारियों के बच्चों को फ्रांसीसी भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

३ डच—डच मिशनरियों ने नागापट्टम और चिनसुरा में कुछ विद्यालय स्थापित किये। इनमें कम्पनी के कर्मचारियों एवं अन्य भारतीयों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध था। पुर्तगालियों के समान डचों के सिर पर धर्म प्रचार का भूत सवार नहीं था। अतः उन्होंने अपने विद्यालयों को धर्म प्रचार का केन्द्र एवं साधन नहीं बनाया। डा० प्रिडे (Prideaux) के अनुसार डचों ने उच्च शिक्षा के लिये लंका में एक कॉलेज खोला था।

४ डेन—डेन मिशनरियों ने फोर्ट सेन्ट डविड, त्रिचनापल्ली और तन्जौर में प्रारम्भिक विद्यालय तथा ट्रानक्यूबर में अध्यापकों को दीक्षा के लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित किया। यहाँ के प्रशिक्षित अध्यापकों को प्रारम्भिक स्कूलों में नियुक्त किया जाता था। इन मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का पथ प्रदर्शक माना जाता है। उन्होंने स्थानीय भाषा को शिक्षा का माध्यम रखा। मुसलमानों में अपने धर्म प्रचार-कार्य में सहयोग पाने के लिये उन्होंने उनके बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दी और उनके लिये प्रारम्भिक विद्यालय खोले।

५ अग्रज—अग्रज मिशनरियां का प्रमुख कार्य क्षेत्र बगाल था। उन्होंने कलकत्ता और सीरामपुर में दान आश्रित शिक्षा-संस्थायें स्थापित की। सीरामपुर के मिशनरियों के तीन नेता थे—केरे (Carey) वार्ड (Ward) और मार्शमैन (Marshman)। उन्हें सीरामपुर त्रिमूर्ति (Serampore Trio) कहा जाता था। उन्होंने शिक्षा की अपेक्षा ईसाई धर्म के प्रसार पर अधिक बल दिया। १८०८ ई० में उन्होंने हिन्दुओं व मुसलमानों के नाम सदेश (Addresses to Hindus and Muslims) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर बताया गया और हिन्दू धर्म की निन्दा की गई। इससे हिन्दुओं और मुसलमानों में इतनी उत्तेजना फैली कि उसे शान्त करने के लिए लार्ड मिन्टो (Minto) ने मिशनरियों का प्रेस जब्त कर लिया और उनको बन्दी करवा के कलकत्ता बुला लिया।

मिशनरियों को कम्पनी की इस दमन-नीति से बहुत असन्तोष हुआ। भारत में इसका विरोध करने में अपने को असमर्थ पाकर उन्होंने अपने समर्थकों के द्वारा इंगलैण्ड में आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन का नेता चार्ल्स ग्रांट था।

चार्ल्स ग्रांट (Charles Grant)

चार्ल्स ग्रान्ट कम्पनी के कर्मचारी और व्यवसायी के रूप में भारत में रह चुका था। इंगलैण्ड लौटने पर उसने ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा का निरीक्षण (Observations on the State of Society among the Asiatic Subjects of Great Britain) नामक पुस्तिका लिखकर भारतवासियों की स्थिति पर प्रकाश डाला। उसने लिखा— अज्ञानता को दूर करने का वास्तविक उपचार ज्ञान का प्रसार है। हिन्दू इसीलिए गलती करते हैं क्योंकि वे अज्ञान हैं और उनकी गलतियों को उचित प्रकार से कभी भी उनके समक्ष नहीं रखा गया है। उनको हमारे प्रकाश और ज्ञान का दिया जाना ही उनके लिए सर्वोत्तम उपचार सिद्ध होगे। (The true cure of darkness is the introduction of light The Hindoos err because they are ignorant and their errors have never been fairly laid before them The communication of our light and knowledge to them would prove the best remedy for their disorders.)

भारतवासियों में ज्ञान का प्रसार करने के लिए ग्रांट ने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का उपयुक्त माध्यम बताया। उसका कहना था कि योग्य शिक्षक से

अंग्रेजी साहित्य विज्ञान दर्शन और धर्म की शिक्षा पाकर भारतवासियों की विचारधारा परिवर्तित हो जायगी। ग्रान्ट की प्राय सभी बातों को भविष्य में मान लिया गया। वस्तुत भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की अग्रिम रूप रेखा का निर्माण उसी ने किया। इसलिए उसको भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता (Father of Modern Education in India) कहा जाता है।

१७९३ और १८१३ के आज्ञा पत्र (Charters of 1793 & 1813)

ग्रान्ट के विचारों से ब्रिटिश लोकसभा का सदस्य विल्बरफोर्स (Wilberforce) अत्यधिक प्रभावित हुआ। जब सन् १७९३ में कम्पनी का आज्ञा पत्र (Charter) पुनर्शोधन के लिये संसद में आया तब विल्बरफोर्स ने उसमें धर्म प्रचार पर आधारित शिक्षा सम्बन्धी एक धारा जोड़ने का प्रस्ताव किया। पर कम्पनी के सभासदों ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा— हिन्दुओं की अपने धर्म और नैतिकता की उतनी ही उत्तम प्रणाली जितनी कि अधिकांश व्यक्तियों की है और उनके धर्म-परिवर्तन का प्रयास करना या उनको अधिक ज्ञान देना पागलपन होगा। लोकसभा के सदस्य रैन्डल जैक्सन (Randle Jackson) का मत था— 'हमने अमेरिका के उपनिवेशों को अपनी भाषा का प्रसार करने के कारण खो दिया है अतः हमें भारत में ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए।' (We have lost our colonies in America by importing our education there we need not do so in India too)

सन् १८१३ में कम्पनी का आज्ञा-पत्र पुनर्शोधन के लिये पार्लियामेंट में आया। गम्भीर विचार विमर्श के पश्चात् उसमें एक नवीन धारा जोड़कर मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी गयी।

१८१३ के बाद मिशनरी प्रयास (Missionary Efforts After 1813)

१८१३ के आज्ञा-पत्र ने मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी थी। फलतः थोड़े ही समय में प्राय समस्त देश में मिशनरियों का जाल बिछ गया। उनका प्रमुख उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना एवं भारतवासियों को अपने धर्म में दीक्षित करना था। शिक्षा के साधन द्वारा वे भारतीयों से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। उन्हें अपने धर्म प्रचार कार्य के लिए शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता भी थी। अतः मिशनरियों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया। प्रारम्भ में उन्होंने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया और इन भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों, शब्द-कोषों, व्याकरणों आदि की रचना की। उनके इस कार्य ने भारत में शिक्षा प्रसार में महान् योग दिया।

मिशन स्कूलों की विशेषताए (Features of Mission Schools)

मिशनरियों ने जो शिक्षा संस्थाए स्थापित की उनम से अधिकांश प्रारम्भिक स्कूल थे। इन स्कूलो की विशेषताएँ निम्नलिखित थी—

१ शिक्षा का आधार धर्म था। अत ईसाई धम के सिद्धान्तो और बाइबिल की शिक्षा अनिवाय थी।
२ पाठ्यक्रम विस्तृत था और उसम अग्रजो स्थानीय भाषाए व्याकरण इतिहास तथा भूगोल सम्मिलित थे।
३ शिक्षा मौखिक रूप से नहीं दी जाती थी क्योकि छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकें मुद्रित करवा दी गई थीं।
४ अंग्रेजी का अध्ययन प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य था।
५ शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषाए थी।
६ स्कूल नियमित रूप से चलते थे शिक्षा के घण्टे नियत थे और रविवार को अवकाश रहता था।
७ स्कूलों में कक्षा प्रणाली का प्रचलन था।
८ एक शिक्षक-प्रणाली (Single Teacher System) का स्थान बहु शिक्षक प्रणाली ने ले लिया था।
९ विभिन्न कक्षाओं के छात्रो को आधुनिक ढंग पर विभिन्न शिक्षको द्वारा शिक्षा दी जाती थी।
१ वर्ष क अन्त में लिखित परीक्षा द्वारा छात्रों की योग्यता की जाँच करक उन्हे एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे भेज दिया जाता था।

उपसहार

ऊपर जिन पाश्चात्य मिशनरियो का वणन किया गया है, उनम से अधिकांश का स्थान भारतीय शिक्षा क इतिहास में अति गौरवपूर्ण है। यह क्वल इसलिये नहीं कि उन्होने शिक्षा के क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया अपितु इसलिये भी कि उन्होने आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का सूत्रपात किया और भारत क भावी भाग्य-विधाताओ के समक्ष शिक्षा का भार वहन करने का आदर्श उपस्थित किया। इन कार्यों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण काय था—जन-साधारण में ज्ञान का प्रसार करना। यवनो के आतङ्क से हिन्दू शिक्षा-व्यवस्था की नींव डगमगा चुकी थी। अनुकूल एव प्रतिकूल परिस्थितियो क बीच पला मुस्लिम शिक्षा-पद्धति सामान्य जनता क ज्ञान-मार्ग को प्रशस्त नहीं कर सकी थी। इस दिशा में इन विदेशी मिशनरियो ने निःशुल्क शिक्षा की योजना बनाकर और

भारी संख्या मे व्यक्तियों को ज्ञान का रसास्वादन कराकर पथ प्रदर्शक का कार्य किया ।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 "The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian Missionaries Discuss.

2 Write a short essay on the educational activities of the early European settlers

3 The missionaries used education not as an end in itself but as a means to evangelization ' Elucidate

५

ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य

(Early Educational Activities of the E. I Company)

[1600-1833]

विषय प्रवेश

इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को ३१ दिसम्बर १६६० को इंगलैण्ड की रानी ऐलिजाबेथ (Elizabeth) से पूर्वी देशों में साथ व्यापार करने का आज्ञा पत्र (Charter) प्राप्त हुआ। कम्पनी के व्यापारियों ने १६११ में भारत भूमि पर मसुलीपट्टम नामक स्थान पर पहिला कारखाना स्थापित किया। प्रारम्भ में कम्पनी का ध्यान व्यापार और धर्म-प्रचार पर केन्द्रित था। अतः उसने जन-साधारण की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। केवल अपने कर्मचारियों और प्रोटेस्टेन्टों की शिक्षा के लिये बम्बई और मद्रास में कुछ विद्यालय खोले। धीरे धीरे कम्पनी अपनी राजनैतिक सत्ता स्थापित करने लगी। १७२७ में प्लासी के युद्ध की विजय के बाद या अधिक निश्चित रूप से १७६५ में सम्राट शाह आलम से बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने के बाद भारत में कम्पनी का राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसके फलस्वरूप कम्पनी यह अनुभव करने लगी कि उसे भारत में हिन्दू और

मुसलमान शासकों के समान इस देश के निवासियों की शिक्षा के लिये कुछ करना है। अपनी शिक्षा-नीति को निर्धारित करने में कम्पनी का दो तत्वों से विशेष योग मिला। प्रथम रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के अनुसार कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना, जिसके न्यायाधीशों को भारतवासियों के धर्म रीति रिवाजों आदि से परिचित कराने के लिये शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता थी। द्वितीय प्रभावशाली भारतवासियों के पुत्रों को राज-पदों पर आसीन करना जिससे कम्पनी को अपने नव-स्थापित राज्य को सुदृढ़ बनाने में उच्च वर्गों का विश्वास और सहयोग प्राप्त हो सके। इन सब बातों को ध्यान में रख कर कम्पनी ने 'कलकत्ता मदरसा' और "बनारस संस्कृत कॉलिज" का शिलान्यास किया।

कलकत्ता मदरसा

१७८० में कलकत्ता नगर के कुछ सुप्रतिष्ठ मुसलमानों ने बंगाल के गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) से प्रार्थना की कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये एक मदरसा स्थापित किया जाय। कूटनीतिज्ञ हेस्टिंग्ज को मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए इससे अधिक अच्छा अवसर कौन-सा हो सकता था? अतः उसके आज्ञानुसार अक्टूबर १७८० से 'कलकत्ता मदरसा' शिक्षण-कार्य में लग गया।

मदरसे के पाठ्य विषयों में प्रकृति विज्ञान-शास्त्र, कुरान के धर्म सिद्धान्त कानून, ज्योतिष, ज्यामिति, गणित, तर्क-शास्त्र, अलङ्कार-शास्त्र एवं व्याकरण मुख्य थे। शिक्षा-काल ७ वर्ष और शिक्षा का माध्यम अरबी था। शिक्षकों के अतिरिक्त कुरान पढ़ाने के लिए एक आलिम और नमाज पढ़ने के लिये एक मुअज्जिन था। मुस्लिम प्रथा के अनुसार प्रार्थना एवं पूजा-पाठ के लिए शुक्रवार को अवकाश रहता था।

बनारस संस्कृत कॉलिज

कलकत्ता मदरसा के समान बनारस संस्कृत कॉलिज की स्थापना का कारण भी राजनैतिक था। इस कॉलिज का शिलान्यास १७९१ में बनारस राज्य के रेजीडेंट जोनथन डंकन (Jonathan Duncan) ने किया था। जिस प्रकार कलकत्ता मदरसा में मुस्लिम धार्मिक सिद्धान्तों और कानूनों की शिक्षा देकर मुसलमान नवयुवकों को अंग्रेज न्यायाधीशों की सहायता देने के लिये तैयार किया जाता था, उसी प्रकार बनारस संस्कृत कॉलिज में हिन्दू नवयुवकों को हिन्दू धर्म-शास्त्रों एवं कानून की व्याख्या करने के लिए शिक्षित किया जाता था।

कॉलिज के पाठ्य-विषयों में हिन्दू धार्मिक सिद्धांत तर्क शास्त्र, दर्शन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र गणित संगीत इतिहास कविता और क़ानून सम्मिलित थे। कॉलिज का समस्त प्रबन्ध धर्म शास्त्रों के नियमों पर और शिक्षा मानव धर्म (Institutes of Manu) पर आधारित था।

फोर्ट विलियम कॉलिज

इस कॉलिज की स्थापना १८०० में लार्ड वेलेज़ली (Wellesley) ने कलकत्ता में की थी। इसका प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के तरुण कर्मचारियों को हिन्दू और मुस्लिम कानूनों भारतीय इतिहास अरबी फारसी संस्कृत और भारतीय भाषाओं की शिक्षा देना था। इसने बङ्गला साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में अति सराहनीय योग दिया और उनसे सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित कीं।

१८१३ का आज्ञा-पत्र (Charter of 1813)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आज्ञा-पत्र प्रत्येक १० साल के बाद पुनर्शोधित होता था। अतः जब यह आज्ञा पत्र १८१३ में पुनर्शोधन के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट में आया तब उसमें एक नवीन धारा जोड़कर शिक्षा को कम्पनी का कर्त्तव्य बताया गया और कहा गया कि प्रति वर्ष कम से कम १ लाख रुपया भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान एवं विज्ञानों के प्रसार में व्यय किया जाय। परन्तु धन को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण नहीं किया गया। परिणामतः शिक्षा के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ और कम्पनी के कर्मचारियों के दो दल बन गये। ये दल प्राच्यवादी (Orientalists), और पाश्चात्यवादी (Occidentalists) कहलाये।

कम्पनी की शिक्षा-नीति (१८१३-३३) (Educational Policy of the Company 1813-33)

१८१३ के आज्ञा-पत्र के फलस्वरूप विवाद के उठ खड़े होने से इस काल में भारतीयों को शिक्षित करने के लिये किसी निश्चित नीति का अनुसरण नहीं किया गया। एल्फिन्स्टन (Elphinstone) और मुनरो (Munro) भारतीय भाषाओं की उन्नति हेस्टिंग्स और मिन्टो (Minto) के समर्थक तथा प्रयास की 'लोक शिक्षा-समिति' अरबी फारसी और संस्कृत के प्रोत्साहन एवं बाबन अंग्रेजी भाषा द्वारा उच्च वर्गों की शिक्षा के पक्ष में थे। कम्पनी के संचालकों की शिक्षा-नीति में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। १८१४ में उन्होंने प्राच्य शिक्षा-प्रणाली एवं संस्कृत के अध्ययन पर बल दिया। १८२४ में पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान के प्रसार का प्रस्ताव किया, १८२८ में मुनरो की

भारतीय भाषाओं द्वारा जन-शिक्षा की योजना स्वीकार की, और १८३० में इस कार्य पर अंकुश लगा दिया। यदि वे अपनी शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण कर देते, तो कम्पनी के अधिकारियों का मतभेद समाप्त हो जाता और शिक्षा की प्रगति के लिये ठोस कदम उठाना सम्भव हो जाता। परन्तु इसका दोषारोपण सचालकों पर करना उचित न होगा। वस्तुतः अपने कर्मचारियों की प्रत्येक शिक्षा-नीति का समर्थन एवं खण्डन करके वे 'प्रयत्न एवं भूल' (Trial and Error) की साधारण विधि का प्रयोग कर रहे थे जिससे कि वे अन्त में एक उचित शिक्षा-नीति का प्रतिपादन कर सकें।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Discuss briefly the educational policy of the East India Company between 1765 and 1833

2 Write short notes on the following—
   (a) Calcutta Madarassah
   (b) Banaras Sanskrit College and
   (c) Fort William College

3 The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education ' Discuss

६

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद और निस्यन्दन सिद्धान्त

(Oriental Occidental Controversy & Downward Filtration Theory)

विषय प्रवेश

हम पिछले अध्याय में इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि भारतीयों की शिक्षा के सम्बन्ध में कम्पनी के अधिकारियों में मतभेद था। इस प्रश्न को लेकर दो प्रमुख दल उत्पन्न हो गये थे—प्राच्यवादी (Orientalists) एवं पाश्चात्यवादी (Occidentalists or Anglicists)।

प्राच्यवादी (Orientalists)

इस दल में कम्पनी के पुराने अधिकारी थे। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्ज ने 'कलकत्ता मदरसा' स्थापित करके प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त किया था। इसी नीति के अनुसार डंकन ने 'बनारस संस्कृत कॉलेज' का निर्माण किया था। मिन्टो ने भी इसी नीति का समर्थन किया था। बंगाल की 'लोक शिक्षा-समिति' (General Committee of Public Instruction) में प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत था। इनमें बंगाल के शिक्षा-सचिव एवं प्राच्यवादी दल के नेता एच० टी० प्रिंसेप (H T Prinsep) तथा समिति के मन्त्री

एच० एच० विल्सन (H H Wilson) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् १८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार १ लाख रुपये की धन राशि को व्यय करने का अधिकार इसी समिति को प्राप्त था। समिति में प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत होने के कारण प्राच्य शिक्षा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिये कॉलेजों का निर्माण किया गया था। विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी गई थी एवं प्राच्य भाषाओं के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये थे। वस्तुत कूटनीति-परायण प्राच्यवादी संस्कृत अरबी एवं फारसी पर आधारित शिक्षा देकर भारतीयों को जातियों एवं धर्मों में विभक्त रखना चाहते थे जिससे कि नव निर्मित ब्रिटिश राज्य को क्षति न पहुँचे। प्रिन्सेप का मत था कि भारतीय अंग्रेजी भाषा पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते हैं। विल्सन नहीं चाहता था कि भारतीय अंग्रेजी पढ़ कर उनके देशवासियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर एक धरातल पर खड़े हो सकें। कुछ प्राच्यवादियों का मत था कि पाश्चात्य ज्ञान एवं विचारों के सम्पर्क में आने से प्राचीन भारतीय संस्कृति नष्ट हो जायगी। उनका यह भी कहना था कि भारतीय साहित्य में ज्ञान की ऐसी अपार निधि है कि उसका अध्ययन यूरोप निवासियों के लिये भी आवश्यक है। इस प्रकार के तर्क देकर प्राच्यवादियों ने प्राचीन संस्कृति साहित्य एवं शिक्षा को सुरक्षित रखना भारतीयों के लिये हितकर बताया।

पाश्चात्यवादी (Occidentalists)

इस दल में कम्पनी के नवयुवक अधिकारी एवं मिशनरी सम्मिलित थे। उनका कथन था कि प्राच्य शिक्षा-पद्धति मरणासन्न है और उसको पुनर्जीवित करना असम्भव है। उनका मत था कि अरबी फारसी एवं संस्कृत साहित्य में रूढ़िवादी एवं संकुचित विचारों के अतिरिक्त किसी भी सामग्री ज्ञान की खोज करना व्यर्थ है। यूरोप में विज्ञान के अध्ययन के कारण औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी और नवीन आविष्कार किये जा रहे थे। अतः पाश्चात्यवादी भारत की प्रगति के लिये अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारों के प्रसार के पक्ष में थे। इसमें भी एक राजनैतिक चाल थी। अंग्रेजों को अपने व्यापारिक तथा प्रशासकीय कार्यों के लिए बाबू वर्ग की आवश्यकता थी। इस निम्न वर्ग के लिये व्यक्तियों को इंग्लैण्ड से न लाकर भारतीयों को शिक्षित करके तैयार कर लेना ही अधिक विवेकपूर्ण कार्य था।

मैकाले का विवरण-पत्र (Macaulay s Minute)

जिस समय प्राच्य-पाश्चात्य विवाद उग्र रूप धारण कर रहा था उसी समय लार्ड मैकाले (Macaulay) १० जून १८३४ को गवर्नर-जनरल की

कौंसिल के क़ानून-सदस्य के रूप में भारत आया। वह अंग्रेज़ी का प्रकाण्ड विद्वान् था और अपने लेखों तथा व्याख्यानों से लोगों में जीवन का संचार कर देता था। वह उस युग की उपज था जब अंग्रेज़ अपने साहित्य एवं संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ समझ कर विश्व विजय के लिये अपना अभियान प्रारम्भ कर चुके थे। इन्हीं विचारों से ओत प्रोत मकॉले ने भारत में पदार्पण किया। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बटिंक (William Bentinck) ने उसे बंगाल 'लोक शिक्षा-समिति' का प्रधान नियुक्त किया और उससे १८१३ के आज्ञा पत्र की शिक्षा-सम्बन्धी धारा की व्याख्या करने के लिये तथा १ लाख रुपये की धन राशि को व्यय करने के विषय में क़ानूनी सलाह मांगी। २ फरवरी, १८३५ को मकॉले ने अपना विवरण पत्र (Minute) गवर्नर-जनरल की कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया।

इस विवरण-पत्र में मकॉले ने प्राच्य साहित्य एवं शिक्षा का खण्डन तथा अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों की शिक्षा का समर्थन किया। 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए उसने लिखा कि इसका अर्थ 'अंग्रेज़ी साहित्य से है न कि संस्कृत अरबी एवं फारसी के साहित्य से। इसी प्रकार भारतीय विद्वान्' से ऐसे विद्वान् का तात्पर्य है— 'जो लॉक (Locke) के दर्शन एवं मिल्टन (Milton) की कविता से परिचित हो।'

इसके पश्चात् मैकॉले ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को लिया। उसने देशी भाषाओं के विषय में लिखा— भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान कोष का अभाव है तथा वे इतनी अविकसित और गँवारू हैं कि जब तक उन्हें बाह्य भण्डार से सम्पन्न नहीं किया जायगा उनमें सुगमता से किसी भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद नहीं हो सकेगा।'

इस प्रकार मकॉले ने देशी भाषाओं के माध्यम का प्रश्न वाद-विवाद से अलग कर दिया। तत्पश्चात् उसने संस्कृत अरबी आदि भाषाओं की अंग्रेज़ी से तुलना करते हुए निस्संकोच भाव से घोषित किया— एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। (A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia ')

मकॉले का प्रस्ताव था कि संस्कृत अरबी तथा फ़ारसी में लिखे हुए क़ानूनों का अंग्रेज़ी में संहिता (Code) बना दी जाय। उसका कथन था कि केवल क़ानूनों की जानकारी के लिये संस्कृत अरबी तथा फारसी के शिक्षालयों पर धन व्यय करना मूर्खता है। अतः उसने प्रस्ताव किया कि उनको बिल्कुल बन्द

कर दिया जाय। अंग्रेजी भाषा की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक करते हुए उसने लिखा— यह भाषा पाश्चात्य भाषाओं में भी सर्वोपरि है। जो इस भाषा को जानता है वह सुगमता से उस विशाल ज्ञान भंडार को प्राप्त कर सकता है जिसे विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियों ने रचा है।" (It stands pre eminent even among the languages of the West Whoever knows that language has ready access to all the vast intellectual wealth which all the wiser nations of the earth have created)

सारांश में मैकॉले ने अपने विवरण पत्र में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य और विज्ञानों की शिक्षा पर बल दिया।

बैंटिक की स्वीकृति (Bentinck s Approval)

बैंटिक ने मैकॉले के प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान करके, १८१३ में प्रारम्भ होने वाले शिक्षा विवाद का अन्त कर दिया। ७ मार्च १८३५ के आज्ञा-पत्र में बैंटिक ने शिक्षा-नीति की घोषणा की जिसकी रूप रेखा इस प्रकार थी—

१ ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार करना है। अतः केवल इसी कार्य के लिये शिक्षा-सम्बन्धी समस्त धन राशि व्यय की जायगी।

२ प्राच्य शिक्षालयों का बहिष्कार तथा उन्मूलन नहीं किया जायगा। उनके अध्यापकों तथा छात्रों को पूर्ववत् वेतन एवं छात्रवृत्तियाँ दी जाएँगी।

३ भविष्य में प्राच्य विद्या-सम्बन्धी पुस्तकों का मुद्रण तथा प्रकाशन नहीं होगा क्योंकि इनमें अत्यधिक धन व्यय किया जा चुका है।

४ इन सुधारों से बचा हुआ समस्त धन भारतीयों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अंग्रेजी साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार करने में व्यय किया जायगा।

भारत सरकार की यह प्रथम घोषणा थी जिसमें अंग्रेजों की शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण और भारतीय शिक्षा के उद्देश्य साधन तथा माध्यम को स्थायी रूप प्रदान किया गया था।

भारतीय शिक्षा को मैकॉले की देन (Macaulay s Contribution to Indian Education)

मैकॉले के विवरण पत्र के फलस्वरूप शिक्षा क्षेत्र में विवादग्रस्त विषयों का निर्णय हो गया और कम्पनी की शिक्षा-नीति में स्थिरता आ

गई। फिर भी मैकॉले की अति कटु आलोचना की गई है। उसके सम्बन्ध में प्रमुख धारणाएं निम्नलिखित हैं —

१—कुछ व्यक्तियों द्वारा मकॉले भारतीय शिक्षा का पथ प्रदर्शक' (Torch bearer in the path of progress) माना जाता है। यह कथन एक प्रकार से असत्य ही है क्योंकि वह प्रथम व्यक्ति नहीं था जिसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की ओर पहला कदम उठाया था। हम उस शिक्षा की आधुनिक संरचना का संस्थापक तो मान सकते हैं, पर भारतीय शिक्षा का पथ प्रदर्शक नहीं।

२—कुछ लोग मकॉले पर भारतीय भाषाओं के अपमान एवं अवहेलना का दोषारोपण करते हैं। पर उस पर यह आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है। लोक शिक्षा-समिति के प्रधान के रूप में उसने १८३६ की अपनी रिपोर्ट के अन्तर्गत कहा— हमें देशी भाषाओं के प्रोत्साहन एवं विकास में अत्यधिक रुचि है। हम समझते हैं कि देशी भाषाओं में साहित्य का विकास हमारा अन्तिम उद्देश्य है और हमारे सब प्रयास इस दिशा में लग जाने चाहिए।

३—कुछ व्यक्ति मकॉले को राजनैतिक अशान्ति का कारण मानते हैं। यह ऐसा आरोप है जिस पर सम्पूर्ण इङ्गलैण्ड गर्व कर सकता है। परन्तु इसका समस्त उत्तरदायित्व मकाले द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा की नीति पर नहीं रखा जा सकता है। इस नीति की अनुपस्थिति में भी राजनैतिक अशांति हो सकती थी।

४—मकॉले पर अन्तिम दोषारोपण यह है कि वह अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना चाहता था जो 'रक्त और वर्ण में भारतीय हो पर पसन्द विचार आचरण और बुद्धि में अंग्रेज हो'। ('A class of persons Indian in blood and colour but English in tastes in opinions in morals and in intellect) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के उपासक वर्ग का निर्माण करके वह भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को चिरस्थायी बनाना चाहता था। पर उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई।

उपर्युक्त धारणाओं की विवेचना के आधार पर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि मकॉले के सर पर सारा दोष मढ़ना उचित न होगा। वस्तुतः भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। उसने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार का समर्थन करके भारतीयों में राजनैतिक जागरण वैधानिक चेतना और आर्थिक विचारधाराएं प्रस्फुटित की। इसके फलस्वरूप भारत ने स्वतन्त्रता के युग में प्रवेश किया। अतः यदि हम यह कहें कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में मकॉले का स्थान अति महत्वपूर्ण है तो अनुचित न होगा।

विवाद का अन्त (End of the Controversy)

जैसे ही लार्ड विलियम बैंटिक ने १८३५ में त्याग-पत्र देकर स्वदेश के लिये प्रस्थान किया प्राच्यवादियों ने सरकार के निर्णय के विरुद्ध आवाज उठाई। वे मैकॉले के विवरण पत्र और बैंटिक के आज्ञा पत्र से असंतुष्ट थे और उन्होंने देशी भाषा के माध्यम तथा कुछ अन्य बातों पर विवाद आरम्भ कर दिया। जब लॉर्ड ऑकलैण्ड (Auckland) गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर भारत पहुँचा, तब उसने स्थिति को पर्याप्त गम्भीर पाया। लगभग ४ वर्ष तक विभिन्न मतों का सतर्कता से अध्ययन करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वाद विवाद का आधारभूत कारण आर्थिक सहायता है। उसने विचार किया कि यदि प्राच्यवादियों को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिये कुछ अधिक धन दे दिया जाय तो वे शोरगुल मचाना बन्द कर देंगे। इस बात को दृष्टिकोण में रखकर उसने २४ नवम्बर १८३९ को अपना विवरण-पत्र प्रकाशित किया, दोनों दलों की धन-सम्बन्धी माँगों को पूरा कर दिया और इस प्रकार १८१३ से प्रारम्भ होने वाले प्राच्य-पाश्चात्य विवाद को समाप्त कर दिया।

निस्यन्दन सिद्धान्त (Downward Filtration Theory)

अर्थ—निस्यन्दन सिद्धान्त का अभिप्राय यह था कि शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाय और इस वर्ग से छन छनकर शिक्षा का प्रभाव जनसाधारण तक पहुँचे। आर्थर मेह्यू (Arthur Mayhew) के अनुसार 'जन-समूह में शिक्षा ऊपर से छन-छनकर पहुँचनी थी। बूँद-बूँद करके भारतीय जीवन के हिमालय से लाभदायक शिक्षा नीचे को बहे, जिससे कि वह कुछ समय में एक चौड़ी एवं विशाल धारा में परिवर्तित होकर शुष्क मैदानों का सिंचन करे।' (Education was to permeate the masses from above. Drop by drop from the Himalayas of the Indian life useful information was to trickle downwards forming in time a broad and stately stream to irrigate the thirsty plains.)

समर्थक—भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों का इस सिद्धान्त में विश्वास था। वे समझते थे कि यदि इस देश के उच्च वर्गीय हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिया जायगा, तो निम्न वर्गों को इस धर्म को स्वीकार करने में संकोच नहीं होगा, क्योंकि इन वर्गों के व्यक्ति उच्च वर्ग के आदर्शों का अनुकरण करते थे। कम्पनी के कर्मचारियों में बम्बई के गवर्नर की कौंसिल के सदस्य, वार्डेन (Warden) ने २३ दिसम्बर १८२३ को अपने विवरण-पत्र में यह लिखकर इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया था— जन-साधारण को थोड़ी-सी

शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियों को अधिक शिक्षा देना उपयुक्त होगा।" कम्पनी के सचालकों ने २६ सितम्बर १८३० के अपने आदेश-पत्र में मद्रास की सरकार को लिखा था— शिक्षा की प्रगति उसी समय हो सकती है, जब उच्च वर्गों के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाय, जिनके पास अवकाश है और जिनका अपने देशवासियों पर प्रभाव है।' मकॉले ने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए अपने विवरण-पत्र में लिखा था— हमारी इस शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग की सृष्टि होगी जो रक्त एवं वर्ण में भारतीय होगा परन्तु पसन्द, विचार आचरण एवं विद्वत्ता में अंग्रेज होगा। इन्हीं लोगों का यह कार्य होगा कि वे भारतीय भाषाओं को परिष्कृत तथा सम्पन्न करके उन्हें जनता तक ज्ञान पहुँचाने के योग्य बनायें। लॉर्ड ऑक्लैण्ड ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया और इसे सरकारी नीति के रूप में घोषित किया।

आधारभूत कारण—इस सिद्धान्त को सरकारी नीति का रूप प्रदान करने के चार कारण थे। प्रथम, ब्रिटिश सरकार को प्रारम्भ में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जिनको शिक्षित करके एवं उच्च पद प्रदान करके राज्य को सुदृढ़ बनाया जाय। इसके लिये उच्च वर्ग की शिक्षा ही उपयोगी हो सकती थी लोक-शिक्षा नहीं। द्वितीय, सरकार के पास इतना धन नहीं था कि वह लोक-शिक्षा का भार अपने ऊपर ले सकती। तृतीय, अंग्रेजी माध्यम द्वारा उच्च वर्ग को शिक्षित करके और रहन-सहन तथा आचार विचार को परिवर्तित करके निम्न वर्गों को सरलता पूर्वक प्रभावित किया जा सकता था। चतुर्थ, कुछ व्यक्तियों को शिक्षित करके जन-साधारण की शिक्षा का भार उनके ऊपर छोड़ा जा सकता था।

परिणाम—इस सिद्धान्त ने भारतीय शिक्षा का रूप निश्चित कर दिया। सरकारी नीति के रूप में इसे अधिकारियों का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ और उच्च शिक्षा की तीव्र प्रगति होने लगी। सन् १८४४ में लार्ड हार्डिंज (Hardinge) की घोषणानुसार अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जाने लगी। फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सरकारी नौकरी प्राप्त करना हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च शिक्षा की प्रगति और भी अधिक तेज हो गई। परन्तु सरकार ने जिस विचार से इस सिद्धान्त को अपनाया था उसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई। उच्च वर्ग को शिक्षित करके जन-साधारण तक ज्ञान को नहीं पहुँचाया जा सका, क्योंकि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर आसीन हो जाते थे उनका जनता से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त

भारत एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो गया था अशिक्षित निर्धन व्यक्तियों से अपने को श्रेष्ठ समझता था। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इस वर्ग के अनेकों व्यक्ति ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ के रूप में अपने देशवासियों के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रबल विरोध करते रहे।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Write what you know about the Oriental-Occidental Controversy

2. Give a critical appraisal of Lord Macaulay s contribution to Indian education.

3 "Macaulay is a torch bearer in the path of progress Do you agree ? Give your arguments in favour of the view you hold

4 Write a short essay on the "Downward Filtration Theory

७

शिक्षा की प्रगति
(Progress of Education)
[1833-1853]

विषय-प्रवेश

सन् १८३३ तक कम्पनी की शिक्षा-नीति बिल्कुल अनिश्चित रही और भारतीय शिक्षा ने अनेकों महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखे। शिक्षा के क्षेत्र में जो प्राच्य और पाश्चात्य विवाद उठ खड़ा हुआ था उसका अन्त करने में लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अपनी नीति-पटुता का परिचय दिया। उसके बाद से शिक्षा का मार्ग निश्चित हो गया और वह अबाध गति से अग्रसर होने लगी। भारत के विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा-प्रसार के लिए अनेकों कार्य किये गये। हम इन पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं।

बंगाल

बैंटिक एवं ऑकलैण्ड के शिक्षा-कार्य—बैंटिक ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित करके बंगाल में अंग्रेजी का पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर दिया। फलतः अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए विद्यालयों का तीव्रगति से निर्माण हुआ। ऑकलैण्ड ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने बंगाल प्रान्त को ६

भागों में विभक्त किया और प्राय प्रत्येक जिले में एक जिला विद्यालय स्थापित किया।

हार्डिंज के शिक्षा-कार्य—सन् १८४४ में लार्ड हार्डिंज (Hardinge) ने घोषणा की कि अँग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जायगी। फलत अंग्रेजी के प्रचार एवं प्रसार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। उस समय प्राथमिक शिक्षा का पतन प्रारम्भ हो गया था। अत हार्डिंज ने उसे प्रोत्साहित करने के लिये प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण करवाया। परन्तु अँग्रेजी शिक्षा के अभाव में ये विद्यालय लोकप्रिय न बन सके।

डलहौजी के शिक्षा-कार्य—लार्ड डलहौजी (Dalhousie) विद्या प्रेमी था। उसने प्राथमिक उच्च व्यावसायिक तथा नारी शिक्षा में अपनी रुचि प्रदर्शित की। उसने अनुदान प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक विद्यालयों को प्रोत्साहित किया।

शिक्षा-परिषद् (Council of Education)—सन् १८४२ में लोक शिक्षा समिति' को भंग करके उसके स्थान पर शिक्षा-परिषद् की स्थापना की गई। इस परिषद् ने शिक्षा प्रसार की दिशा में सराहनीय कार्य किया। परिषद् ने सन् १८४३ में शिक्षा का पाठ्य-क्रम निश्चित करके पाठ्य-पुस्तकों में सुधार किया। सन् १८ ४ में विद्यालय निरीक्षकों की नियुक्ति करके विद्यालयों की शिक्षा का भार उन्हें सौंप दिया। परिषद् ने प्राथमिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया।

शिक्षा का माध्यम—इस काल में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न अति विवादास्पद रहा। भारत सरकार अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित कर चुकी थी। के० एम० बनर्जी (K M Banerji) एवं डा० बलन्टाइन (Ballantyne) ऐसे विद्वानों ने देशी भाषाओं का पक्ष लिया परन्तु सरकारी नीति के सामने उनकी कुछ न चला और अँग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखा गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १८३३ से १८५३ तक बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का बोलबाला रहा। भारतीयों की अंग्रेजी की ज्ञान पिपासा इतनी अधिक हो गई थी कि अंग्रेजी विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों को मा प्रवेश पाना कठिन था।

बम्बई

बम्बई भारतीय शिक्षा-समिति (Bombay Native Education Society)—इस समिति का निर्माण सन् १८२, में हुआ। उसी समय से यह समिति शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही थी। सन् १८४० तक इसने

सम्पूर्ण प्रान्त में ११५ जिला प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की साथ ही ४ अंग्रेजी स्कूलों का भी निर्माण किया।

राजकीय प्रयास—बम्बई सरकार ने सन् १८३७ में एल्फिन्स्टन इन्स्टीट्यूशन की स्थापना की। उसी वर्ष पूना संस्कृत कालेज में सभी जातियों के विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई और मराठी की कक्षायें भी प्रारम्भ कर दी गई।

शिक्षा-बोर्ड (Boad of Education)—१८४० में 'बम्बई भारतीय शिक्षा समिति' को भंग करके उसके स्थान पर शिक्षा-बोर्ड की स्थापना की गई। इस बोर्ड ने शिक्षा-कार्य में अत्यन्त दक्षता का परिचय दिया। इसने सन् १८४२ में प्रान्त के समस्त विद्यालयों की गणना करवाई तथा एडम (Adam) की योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास किया। प्रान्तीय शिक्षा को सुचारु रूप से चलाने के लिये बोर्ड ने १८४२ में बम्बई को तीन भागों में विभक्त किया और शिक्षा की देख रेख के लिये प्रत्येक भाग में एक यूरोपियन निरीक्षक एवं एक भारतीय उप निरीक्षक की नियुक्ति की।

शिक्षा का माध्यम—जिस समय बंगाल में प्राच्य तथा पाश्चात्य भाषाओं का विवाद चल रहा था उस समय बम्बई ने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम रख कर अपने साहस का परिचय दिया। पर दुर्भाग्यवश सन् १८४३ में सर ऐर्स्किन परी (Sir Erskine Perry) शिक्षा-बोर्ड का सभापति नियुक्त हुआ। उसने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही होना चाहिये। इस पर बोर्ड में दो दल बन गये और दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। सन् १८४८ तक संघर्ष का रूप इतना उग्र हो गया कि सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। सरकार ने यह निर्णय किया कि माध्यमिक शिक्षा के लिये देशी भाषाओं का तथा उच्च शिक्षा के लिये अंग्रेजी का माध्यम होगा। इस निर्णय से कोई भी दल सन्तुष्ट नहीं हुआ पर कुछ समय उपरान्त ही बंगाल की केन्द्रीय सरकार ने बम्बई सरकार को परामर्श दिया कि वह अपना ध्यान अंग्रेजी की शिक्षा पर केन्द्रित करे। परिणामतः अंग्रेजी के प्रभाव में वृद्धि होने लगा।

शिक्षा की प्रगति—ऐसी स्थिति में अंग्रेजी स्कूलों का नव निर्माण स्वाभाविक था। अनेक स्थानों पर अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना हुई। अहमदाबाद में एक महिला विद्यालय के लिये आर्थिक सहायता का प्रबन्ध किया गया। १८५१ में पूना संस्कृत कॉलेज एवं पूना अंग्रेजी स्कूल को एक में मिला दिया गया। इस नवीन शिक्षा संस्था का नाम 'पूना कालिज' रखा गया। इस

प्रकार १८३३ से १८५३ तक बम्बई में शिक्षा प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया।

मद्रास

राजकीय प्रयास—सन् १८३० में कम्पनी के संचालकों ने मद्रास के गवर्नर मुनरो की जन शिक्षा-योजना पर रोक लगा दी थी और लिखा था कि प्रारम्भिक शिक्षा के स्थान में उच्च शिक्षा के लिये प्रयत्न किया जाय। ऐसी दशा में देशी विद्यालयों का जीवित रहना असम्भव था। उनका स्थान अंग्रेजी विद्यालय लेने लगे। सन् १८४१ में मद्रास नगर में एक हाई-स्कूल स्थापित किया गया। जनता निरन्तर अँग्रेजी की उच्च शिक्षा की माँग कर रही थी। अतः जनता को सान्त्वना देने के लिये सन् १८५२ में कॉलेज विभाग खोला गया। एल्फिन्स्टन ने जिस विश्वविद्यालय बोर्ड' (University Board) का निर्माण किया था उसका नाम सन् १८४७ में बदल कर शिक्षा-बोर्ड' कर दिया गया। इस बोर्ड को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिए १ लाख रुपये की धन राशि प्रदान की गई, जिससे दो अँग्रेजी स्कूल स्थापित किये गये।

पश्चिमोत्तर प्रान्त

टामसन का निश्चय—सन् १८४५ में प्रान्त के गवर्नर जेम्स टामसन (James Thomason) ने अपने प्रान्त के समस्त जिलाधीशों को आदेश दिया कि वे अपने ज़िलों में प्रचलित शिक्षा प्रणाली की जाँच करके अपनी रिपोर्ट भेजें। इस जाँच से उसे ज्ञात हुआ कि प्रान्त में केवल ३.७ प्रतिशत लड़के शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। टामसन को शिक्षा में अभिरुचि थी। अतः उसने जनसाधारण की शिक्षा को प्रोत्साहित एवं देशी विद्यालयों का जीर्णोद्धार करने का निश्चय किया। उसी के प्रयासों के फलस्वरूप भारत सरकार ने देशी विद्यालयों को सङ्गठित एवं विकसित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। टामसन को आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है और इस रूप में भारतीय शिक्षा के इतिहास में उसका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

टामसन की योजनाएँ—सन् १८४६ में टामसन ने वर्नाक्यूलर शिक्षा को संगठित करने के लिये राष्ट्रीय सरकार के समक्ष एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की। इस योजना में उसने प्रस्ताव किया कि २०० एकड़ वाले प्रत्येक ग्राम में एक स्कूल स्थापित किया जाय एवं शिक्षकों के वेतन के लिए जागीरें दी जायें। कम्पनी के संचालकों ने इस योजना से असन्तुष्ट होकर टामसन से दूसरी योजना प्रस्तुत करने के लिये कहा। सन् १८४८ में टामसन ने अपनी द्वितीय योजना तैयार की, जिसे संचालकों ने स्वीकार कर लिया। इस योजना के अनुसार देशी

विद्यालयों का जीर्णोद्धार तथा प्रत्येक तहसील में आदर्श स्कूल का निर्माण हुआ।

तहसीली स्कूल—प्रत्येक तहसीली स्कूल में एक प्रधान अध्यापक होता था। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लिखना पढ़ना गणित ज्यामिति इतिहास एवं भूगोल थे। प्रत्येक ज़िले के स्कूलों के निरीक्षण के लिये एक विज़िटर (Visitor) होता था। उसकी सहायता के लिए परगना विज़िटर होते थे। इन विज़िटरों के कार्यों की देख भाल के लिए एक विज़िटर जनरल (Visitor General) होता था। तहसीली स्कूलों की इस योजना का प्रारम्भ ८ जिलों में हुआ—बरेली शाहजहाँपुर मनपुरी फर्रुखाबाद आगरा मथुरा अलीगढ़ तथा इटावा।

हल्काबन्दी स्कूल—देशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए टामसन ने यह आवश्यक समझा कि प्राथमिक शिक्षा जनसाधारण के लिए सुलभ कर दी जाय। उसे अपने कार्य में मथुरा के जिलाधीश अलैक्ज़ेण्डर (Alexander) से सहायता मिली जिसने 'हल्काबन्दी स्कूल प्रणाली (Circle School System) के नाम से एक विस्तृत योजना १८५१ में बनाई थी। इस योजना के अनुसार कुछ ग्रामों को मिलाकर एक 'हल्का' या क्षेत्र बना दिया गया और उसमें एक प्रारम्भिक विद्यालय खोल दिया गया। यह विद्यालय ऐसे स्थान पर होता था जहाँ से कोई भी ग्राम २ मील से अधिक दूर नहीं था। शीघ्र ही यह योजना आगरा एटा इटावा बरेली मनपुरी तथा शाहजहाँपुर में फैल गई।

पंजाब

पंजाब प्रान्त का निर्माण सन् १८४९ में हुआ था। उस समय तक वहाँ शिक्षा की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। वहाँ बहुत समय से तीन प्रकार के स्कूल शिक्षा-कार्य में संलग्न थे—हिन्दू सिक्ख एवं मुसलमान। १८४६ में अमृतसर के निवासियों ने अंग्रेज़ी सीखने के लिए उत्कट इच्छा व्यक्त की। परिणामस्वरूप वहाँ के स्कूल में अंग्रेज़ी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया। इसी प्रकार का एक स्कूल लाहौर में भी खोला गया। १८०४ में पश्चिमोत्तर प्रान्त की शिक्षा-योजना को पंजाब में भी चालू करने के लिए केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। डलहौज़ी ने कुछ संशोधन के साथ इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

उच्च शिक्षा

पश्चिमोत्तर प्रान्त—उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त की सरकार ने उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८१२ में आगरा में एक नार्मल स्कूल का निर्माण हुआ और उसी वर्ष सेन्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा की स्थापना हुई। १८५० में

बरेली हाई-स्कूल एव १८५३ म बनारस के 'जयनारायण घोषाल स्कूल' को कॉलिज बना दिया गया।

अन्य प्रान्त—अन्य प्रान्तों में भी कुछ राजकीय कॉलिजों का निर्माण किया गया। उदाहरणत मद्रास में ढाका कॉलिज (१८४१) कृष्णनगर कॉलिज (१८४५) एव बरहामपुर कॉलिज (१८५३)। बम्बई एव मद्रास मे भी कुछ कॉलिज स्थापित किए गए, पर उनकी सख्या अधिक नही थी। १८५७ मे भारत म कॉलिजों की कुल सख्या २३ थी जिनमें मिशन कॉलिज तथा व्याव सायिक शिक्षा देने वाले कॉलिज सम्मिलित थे।

उपसंहार

सन् १८३३ मे १८५३ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यवसाय, विजय एव राज्य सगठन के कार्यों में व्यस्त रही। अत इसम कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसके सचालकों तथा अधिकारियो को शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देन एवं उस पर पर्याप्त धन व्यय करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। शिक्षा प्रसार की दिशा म जो भी राजकीय प्रयत्न किये गये वे इस देश की जनसंख्या का विशालता तथा निवासियो का निरक्षरता का देखते हुए सागर म कुछ बूदो के समान थे। सन् १८५५ म जिन शिक्षा-सस्थाओ का प्रबन्ध कम्पनी कर रही थी, उनकी सख्या केवल १,४७४ थी और उनम ६७ ५६६ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तथा शिक्षा पर किया जाने वाला कुल व्यय सम्पूर्ण आय का १ प्रतिशत भी नही था। इस प्रकार इस काल में शिक्षा की प्रगति सन्तोष जनक नहीं हुई।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Write a brief account of the progress of education from 1833 to 1853

2. Describe briefly Thomason s plan for the development of mass education in the North Western Provinces.

3 'James Thomason is regarded as the father of elementary education in India Discuss

८

वुड का घोषणा-पत्र, १८५४
(Wood's Despatch 1854)

विषय-प्रवेश

१८५३ में कम्पनी के आज्ञा पत्र (Charter) के नवीनीकरण का अवसर आया। उस समय तक ब्रिटिश लोक-सभा यह अनुभव कर चुकी थी कि भारतीय शिक्षा की उपेक्षा करना उपयुक्त न होगा एवं शिक्षा की एक स्थायी नीति ग्रहण करना आवश्यक है। इन विचारों से प्रेरित होकर १६ जुलाई १८५४ को कम्पनी के संचालकों ने अपनी भारतीय शिक्षा-नीति की घोषणा की। उस समय Charles Wood कम्पनी के Board of Control का प्रधान था। अतः उसी के नाम पर कम्पनी का यह नया आदेश-पत्र, वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र (Wood's Education Despatch) कहा गया। घोषणा पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन उत्थान का श्रीगणेश किया।

घोषणा पत्र की सिफारिशें
(Recommendations of the Despatch)

१ शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा के उद्देश्य को भारतवासियों तथा अंग्रेजी राज्य के हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया। घोषणा-पत्र में यह

बात स्पष्ट कर दी गई कि शिक्षा द्वारा भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ ही ऐसे व्यक्तियों को उत्पन्न करना था जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें और विश्वास के साथ राजपदों पर नियुक्त किए जा सकें।

२ पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम के लिए भारतीय भाषाओं के साहित्य का ऐतिहासिक तथा कानूनी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताया गया। इस प्रकार संस्कृत, अरबी एवं फारसी की उपयोगिता स्वीकार करके उन्हें पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया, परन्तु पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों का अध्ययन ही भारतीयों के लिए उपयुक्त समझा गया।

३ शिक्षा का माध्यम—घोषणा-पत्र में बताया गया कि देशी भाषाओं में पुस्तकों का अभाव होने के कारण अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है। परन्तु यह बात स्पष्ट कर दी गई कि अंग्रेजी का माध्यम केवल उन व्यक्तियों के लिए होगा जो इस भाषा का समुचित ज्ञान रखते हों एवं जो इसके द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सकें। अन्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं होंगी।

४ जन शिक्षा-विभाग की स्थापना—घोषणा-पत्र में आदेश दिया गया कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में एक जन शिक्षा विभाग (Department of Public Instruction) स्थापित किया जाय और उसका सर्वोच्च अधिकारी जन शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) हो। उसकी सहायता के लिए उप शिक्षा-संचालक निरीक्षक (Inspector) तथा सहायक निरीक्षक नियुक्त किए जायें।

५ विश्वविद्यालयों की स्थापना—घोषणा पत्र में कहा गया कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता बम्बई और यदि आवश्यक हो तो मद्रास तथा अन्य स्थानों में विश्वविद्यालय स्थापित किए जायें। इन विश्वविद्यालयों का निर्माण लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया जाय।

६ श्रेणीबद्ध विद्यालयों की स्थापना—घोषणा-पत्र में समस्त भारत में श्रेणीबद्ध विद्यालयों (Graded Schools) की योजना पर बल दिया गया। इस योजना का स्पष्टीकरण करते हुए घोषणा-पत्र में अङ्कित किया गया कि शिक्षा का ढाँचा निम्नांकित प्रकार का होना चाहिए—

विश्वविद्यालय
कॉलिज
हाई स्कूल
मिडिल स्कूल
देशी प्रारम्भिक विद्यालय

७ जन शिक्षा प्रसार—घोषणा-पत्र में निस्यन्दन सिद्धान्त के अनुसरण किए जाने पर असन्तोष प्रकट किया गया और यह स्वीकार किया गया कि जन साधारण की शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई थी। अतः घोषणा पत्र में कहा गया कि जन-साधारण को व्यावहारिक एवं लाभदायक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए हाई स्कूलों मिडिल स्कूलों एवं प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाय। देशी विद्यालयों को प्रोत्साहित करने की नीति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया।

८ सहायता अनुदान पद्धति—जन शिक्षा प्रसार की योजना तो उत्तम थी परन्तु उसे कार्यान्वित करने के लिए कम्पनी को अत्यधिक धन व्यय करना पड़ता। अतः घोषणा-पत्र में सहायता अनुदान (Grant in aid) का सुझाव दिया गया। घोषणा-पत्र में उल्लेख किया गया कि प्रान्तीय सरकारें इंगलैण्ड की सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण करें और शिक्षकों के वेतन छात्र वृत्तियों पुस्तकालयों वाचनालयों प्रयोगशालाओं विज्ञान एवं कला कक्षाओं तथा भवन निर्माण आदि के लिए अलग अलग अनुदान देने की व्यवस्था करें। अनुदान सब प्रकार के विद्यालयों को दिया जाय।

९ अध्यापकों का प्रशिक्षण—घोषणा पत्र द्वारा कम्पनी के संचालकों ने इच्छा व्यक्त की कि इंगलैण्ड के ढङ्ग पर भारत के प्रत्येक प्रान्त में अति शीघ्र प्रशिक्षण विद्यालय निर्मित किए जायें। संचालकों ने यह भी आशा प्रकट की कि शिक्षाध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा विभाग को उतना ही आकर्षक बनाया जाय जितने कि अन्य राजकीय विभाग थे।

१० स्त्री-शिक्षा—घोषणा पत्र में स्त्री शिक्षा के लिये दान देने वाले व्यक्तियों की सराहना की गई और आदेश दिया गया कि उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करके उनको इस परम पुनीत कार्य के लिए अधिक प्रेरणा दी जाय। यह भी कहा गया कि स्त्री शिक्षा के विद्यालयों को सहायता अनुदान दिया जाय।

११ व्यावसायिक शिक्षा—घोषणा-पत्र में व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) की ओर संकेत करते हुए लिखा गया कि ऐसे कालिजों और स्कूलों का निर्माण किया जाय जिनमें भारतीय विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त कर सकें।

१२ प्राच्य साहित्य एवं देशी भाषाओं को प्रोत्साहन—घोषणा-पत्र में प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की गई। यह सुझाव दिया गया कि पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराया जाय। इसके अतिरिक्त देशी भाषाओं में पुस्तकें लिखवाई जायें और लेखकों को सुन्दर पुरस्कार दिये जायें।

घोषणा-पत्र का मूल्यांकन
(Critical Estimate of the Despatch)

वुड का घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इसने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के आवरण को चीर कर उसका नग्न रूप चित्रित किया एवं आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या करके शिक्षा के भावी स्वरूप को निर्धारित किया। परन्तु इस घोषणा-पत्र की उपादेयता के सम्बन्ध में गहरा मतभेद है। अतः इसके गुण-दोषों का सूक्ष्म विवेचन आवश्यक हो जाता है।

गुण —

१ आदेश पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। H. R. James ने इसे—'भारत में अँग्रेजी शिक्षा का महाधिकार-पत्र' (Magna Charta of Education in India) कहा है।

२ Lord Dalhousie के मतानुसार— आदेश पत्र में सम्पूर्ण भारत की शिक्षा के लिए एक इतनी व्यापक एवं विस्तृत योजना थी जिसे स्थानीय या केन्द्रीय सरकार द्वारा कदापि प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। ("It was a scheme of education for all India far wider and more comprehensive than the local or the Supreme Government could have even ventured to suggest.")

३ H. R. James के मतानुसार—'१८५४ के घोषणा-पत्र का भारतीय शिक्षा के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट स्थान है। जो कुछ इसके पूर्व हुआ वह इसकी ओर संकेत करता है, और जो कुछ इसके बाद हुआ वह इससे निकला है।' ('The Despatch of 1854 is the climax in the history of Indian education what goes before leads up to it what follows flows from it')

४ A N Basu के अनुसार— यह घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा का शिलाधार है। भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का शिलान्यास इसी ने किया।' ('This Despatch is said to be the corner stone of Indian education It is said to have laid the foundation of our present system of education ")

५ H V Hampton का कथन है—'१८५४ का घोषणा पत्र एक युग का अन्त करता है—शिक्षा के महान् अग्रदूतों के युग का। ('The Despatch of 1854 marks the end of an era—the age of the great educational pioneers')

दोष—

१ आदेश-पत्र द्वारा विद्यालयों मे धर्म निरपेक्ष लौकिक शिक्षा देने पर बल दिया गया। परन्तु आदेश पत्र मिशन स्कूलों म दी जाने वाली ईसाई धर्म की शिक्षा के प्रति निष्पक्ष नही रहा। आदेश-पत्र मे कहा गया कि निरीक्षकों को उन धार्मिक सिद्धान्तो की ओर तनिक भी ध्यान नही देना चाहिये जो किसी स्कूल में पढ़ाये जा रहे हों। यह भी लिखा गया कि यह ठीक है कि मिशन स्कूलों म बाइबिल रखी जाती है और लोगों को उसे पढ़ने की सुविधा है। साथ ही यदि कोई छात्र कक्षा से बाहर शिक्षक से ईसाई धर्म के सम्बन्ध में अपनी शंका का समाधान करना चाहे तो हम कोई आपत्ति नहीं है।

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो जाने से भारतीय विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई का अनुभव होने लगा। अत जैसा कि A N Basu ने लिखा है— विद्यार्थियों ने सरल उपाय खोज निकाले। वे बिना समझे हुए विषय-वस्तु को रटने लगे। साथ ही उन्हें इस कार्य में सहायता देने के लिये बाजार म पुस्तकों की टीकायें तथा कुंजियां भी बाढ़ आ गई।" Short-cuts were devised Unintelligent memory work and cramming became the order of day, and notes' flooded the educational bazar and intellectual market ' इन सब का विद्यार्थियों की स्वतन्त्र विचार शक्ति पर अति दूषित प्रभाव पड़ा।

३ शिक्षा की नवीन प्रणाली में परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि हो गया। विद्यार्थियों का ध्येय ज्ञान प्राप्ति न रहकर परीक्षा को पास करना हो गया।

४ आदेश-पत्र के द्वारा सहायता-अनुदान केवल उन्हीं विद्यालयों को मिल सकता था जो अपना आधा व्यय स्वयं वहन करें। इस व्यय के लिये अंग्रेजी शिक्षा देने वाले विद्यालयों को तो सदा प्राप्त हो जाता था पर देशी शिक्षा-संस्थाओं को नहीं मिलता था। फलतः शिक्षा उसी प्रकार असंतुलित रही जैसी कि यह पहले थी।

५ Sir Philip Hartog के मतानुसार, वुड का घोषणा-पत्र भारत के कल्याण के लिये बुद्धिमत्ता का विकास करने वाली नीति का निर्धारक था। (As a result of Wood's Despatch an educational policy was evolved in the interests of India and to develop her intellectual resources) परन्तु R. P Paranjpe ने इसका खंडन करते हुए लिखा है कि— उनका उद्देश्य यह नहीं था कि शिक्षा नेतृत्व के लिये हो, शिक्षा भारत के औद्योगिक विकास के लिये हो, शिक्षा मातृभूमि की रक्षा करने के लिये हो संक्षेप में ऐसी शिक्षा हो जिसकी आवश्यकता एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को हो। (The authors did not aim at education for leadership, education for the industrial regeneration of India education for the defence of the motherland, in short, education required by the people of a self-governing nation)

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में वुड का घोषणा-पत्र बेजोड़ है। इसने भारतीय शिक्षा की बहुरूपता को नष्ट करके उसे एकरूपता प्रदान की। इस घोषणा-पत्र के परिणामस्वरूप कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी। सहायता-अनुदान प्रणाली प्रारम्भ की गई, प्रत्येक प्रान्त में अलग शिक्षा विभाग स्थापित हुए और सरकार शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने लगी। परन्तु इन सब प्रशंसनीय कार्यों के विपरीत घोषणा-पत्र में रचनात्मक राष्ट्रीयता के आदर्श की कहीं चर्चा भी नहीं की गई। यह घोषणा-पत्र आधुनिक प्रजातन्त्रवाद [illegible] की दृष्टि से कुत्सित प्रतीत होता है, क्योंकि इसने विभिन्न वर्गों की [illegible] में अन्तर करने वाली [illegible] परम्परागत विश्लेषित

आदर्श (Victorian Ideal) का प्रतिपादन किया। अतः वुड के घोषणा-पत्र को 'भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र' कहना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता है। Nurullah and Naik ने उचित ही लिखा है— 'हमें उन अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में जिनमें कुछ इतिहासकारों ने घोषणा-पत्र का वर्णन किया है और इसे भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र कहा है कोई औचित्य नहीं दिखाई देता है।' (We cannot find any justification for the superlative terms in which some historians have described the Despatch, and even called it the Magna Charta of Indian Education.')

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main recommendations of the Education Despatch of 1854 ?
2. "Wood's Despatch is called the Magna Charta of Indian Education." Discuss.
3. "Whatever were the value of Wood's Despatch in 1854 it would be ridiculous to describe it as an Educational Charter in the year 1965." How far do you agree with this statement ? Give reasons in support of your answer.
4. What, in your opinion, was the importance of Wood's Despatch ?

६

शिक्षा की प्रगति

Progress of Education
(1854–1882)

विषय प्रवेश

वुड के घोषणा पत्र के आधार पर कम्पनी सरकार ने भारतीय शिक्षा का कार्य आरम्भ किया ही था और उसकी सभी सिफारिशों को कार्यान्वित भी न कर पाई थी कि १८५७ की क्रान्ति फूट पड़ी। फलतः भारतीय शिक्षा के मार्ग में बड़ी बाधा पड़ी। १ नवम्बर १८५८ को भारत के वाइसराय लार्ड कैनिंग (Canning) ने इलाहाबाद में एक दरबार करके कम्पनी के शासन की समाप्ति और रानी विक्टोरिया (Victoria) को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया। उस समय से भारतीय इतिहास में विक्टोरिया का शासनकाल प्रारम्भ हुआ। शान्ति के अनुकूल वातावरण में भारतीय शिक्षा को फलने फूलने के लिए निर्बाध अवसर मिला और उसकी प्रगति में प्रशंसनीय अभिवृद्धि हुई।

१ प्राथमिक शिक्षा

लार्ड ऑकलैण्ड ने निस्यन्दन सिद्धान्त को स्वीकार करके जन शिक्षा की ओर से मुँह मोड़ लिया था। इस नीति के फलस्वरूप सरकार का ध्यान उच्च

वर्गों की उच्च शिक्षा पर केन्द्रित रहा। अत प्राथमिक शिक्षा के लिये कोई क्रियात्मक पग नहीं उठाया गया। १८५४ के घोषणा पत्र ने निस्यन्दन सिद्धान्त को अनुचित बताकर लोक शिक्षा को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया। परन्तु फिर भी प्राथमिक विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिये कोई प्रयास नहीं किया गया। सरकार प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करती रही और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के प्रसार म धन व्यय करती रही। यद्यपि घोषणा-पत्र म प्राथमिक विद्यालयों को सहायता-अनुदान देने की व्यवस्था की गई थी परन्तु अनुदान सम्बन्धी नियम इस प्रकार के थे जिन्हें जनता निभा नहीं सकती थी। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालय इस प्रणाली से विशेष लाभ न उठा सके। ऐसी स्थिति म विभिन्न प्रान्तों म प्राथमिक शिक्षा के लिये जो प्रयास हुए उनका वर्णन निम्नांकित है —

मद्रास—इस प्रान्त मे सरकारी स्कूलों की स्थापना के साथ-साथ सहायता अनुदान देकर प्राथमिक विद्यालयों को भी प्रोत्साहित किया गया। सहायता अनुदान का आधार विद्यालय का परीक्षा फल रखा गया था।

बम्बई—बम्बई प्रान्त में देशी विद्यालयों की विरोधी नीति का अनुसरण किया गया। फलस्वरूप उनका पनपना असम्भव हो गया। सन् १८७० म वहाँ के शिक्षा-संचालक पिले (Peile) ने देशी पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देने के लिये कुछ नियम बनाये पर व निरर्थक सिद्ध हुए।

बगाल—यहाँ की सरकार ने देशी विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिये प्रशंसनीय कार्य किया। इस सम्बन्ध म प्रान्त के गवनर सर जाज कैम्पबेल (Sir George Campbell) का नाम विशेष रूप स उल्लेखनीय है। उसकी योजना के अनुसार शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के लिये उनका वेतन बढ़ा दिया गया। सहायता प्राप्त विद्यालयों का निरीक्षण सरकारी निरीक्षकों द्वारा किया जाता था। कैम्पबेल को आशा थी कि शिक्षकों के भोजन निवास स्थान आदि की व्यवस्था स्थानीय जनता करती रहेगी। परन्तु शीघ्र ही शिकायतें आने लगीं कि शिक्षकों की वेतन-वृद्धि के फलस्वरूप जनता ने शिक्षकों को दी जाने वाली सहायता में कमी कर दी है। फलस्वरूप शिक्षकों की वेतन वृद्धि की योजना को स्थगित करके परीक्षाफल के आधार पर सरकारी सहायता दी जाने लगी। परिणामस्वरूप देशी विद्यालयों की संख्या म आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। यहाँ यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि बगाल म हल्कावन्दी स्कूल की प्रथा प्रचलित था।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—बगाल के समान पश्चिमोत्तर प्रान्त म भी हल्कावन्दी स्कूल की प्रणाली जारी रखी गई। साथ ही ग़ैर-सरकारी पाठशालाओं को भी सहायता अनुदान दिया गया।

पंजाब—पंजाब ने पश्चिमोत्तर प्रान्त के आदर्शों का अनुकरण किया। इस प्रान्त में एसे गैर-सरकारी विद्यालयों की संख्या सबसे अधिक थी जिन्हें सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी।

मध्य प्रदेश—मध्य प्रदेश ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए बंगाल को अपना आदर्श माना और देशी पाठशालाओं को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। परन्तु प्रान्त में देशी स्कूलों की पर्याप्त संख्या न होने के कारण सरकार को बहुत से प्राथमिक विद्यालयों का शिलारोपण करना पड़ा।

असम—असम १८७४ तक बंगाल का भाग रहा था। अत यहाँ की प्राथमिक शिक्षा की नीति का आधार बंगाल की नीति ही था। इसलिए यहाँ देशी पाठशालाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इस प्रान्त में सरकारी स्कूलों की संख्या सब प्रान्तों से कम थी।

२ माध्यमिक शिक्षा

१८४४ में लॉर्ड हार्डिंज द्वारा सरकारी नौकरियों के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को वरीयता दी जाने की घोषणा के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की गति तीव्र हो गई थी। सन् १८५४ के घोषणा-पत्र के आदेशानुसार प्रान्तों में शिक्षा विभागों की स्थापना हुई जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के संगठन में उत्साह दिखाया। १८५९ के स्टेनले आदेश-पत्र (Lord Stanley's Despatch) ने सहायता-अनुदान को उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए सीमित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा पर व्यय करने के लिए अधिक धन उपलब्ध होने लगा जिससे इस स्तर पर शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय प्रयत्नों के साथ साथ भारतीयों एवं मिशनरियों ने भी सराहनीय कार्य किये। परिणामस्वरूप १८८२ के अन्त तक माध्यमिक विद्यालय अबाध गति से बढ़े।

राजकीय विद्यालय—सन् १८५४ में राजकीय विद्यालयों की संख्या १६६ था जिनमें १८ ३४५ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। १८८२ में इन विद्यालयों की संख्या १ ३६३ और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या ४४ ६०५ हो गई।

मिशन विद्यालय—सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद मिशनरियों के प्रति सरकार का रुख कड़ा हो गया था फिर भी माध्यमिक विद्यालयों के विस्तार में मिशनरियों का योग कम नहीं था। सम्पूर्ण भारत में ६८० मिशन स्कूल थे जिनमें से मद्रास में ४१८ पंजाब में ११८ पश्चिमोत्तर प्रान्त में १०४ तथा बंगाल में ४० विद्यालय थे।

भारतीयों द्वारा संचालित विद्यालय—सन् १८५४ तक भारतीयों ने माध्यमिक शिक्षा की दिशा में बहुत ही कम कार्य किया था। परन्तु १८८२ के अन्त तक राष्ट्रीयता की भावना से ओत प्रोत होकर भारतीयों ने अपने समस्त उपलब्ध साधनों को विद्यालयों के निर्माण में जुटा दिया था। फलस्वरूप १८८२ में भारतीयों द्वारा संचालित १३४१ माध्यमिक विद्यालय थे। इनमें से मद्रास में ६६८ बंगाल में ५८२ और शेष देश के अन्य भागों में थे।

२ उच्च शिक्षा

सन् १८५४ से १८८२ तक माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या में इतनी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई कि उनमें अध्ययन करने वाले ज्ञान के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिये उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया। उच्च शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालयों एवं कॉलिजों का शिलारोपण करके किया गया।

विश्वविद्यालयों की स्थापना—भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना का श्रेय वुड के घोषणा-पत्र को प्राप्त है। इस देश के प्रशासकों ने आदेश-पत्र की आज्ञा शिरोधार्य करके उपयुक्त स्थानों पर विश्वविद्यालयों का निर्माण करने की योजना बनाई। इसमें कुछ समय लगना स्वाभाविक था परन्तु १८५७ में ही सरकार ने 'विश्वविद्यालय अधिनियम' (University Acts) पारित करके कलकत्ता बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया। इन तीन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त १८८१ तक कोई अन्य विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया गया। १८८२ में पंजाब विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी गई।

कॉलिजों की स्थापना—भारतीय विश्वविद्यालयों का कार्य केवल परीक्षा लेना था। उनमें शिक्षण का कार्य नहीं किया जाता था। यह कार्य विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त कॉलिजों में होता था। इनके प्रति सरकार ने उदारता का परिचय दिया। फलतः कॉलिजों की संख्या में आशातीत अभिवृद्धि हुई। १८५४ में सम्पूर्ण भारत में २३ कॉलिज थे। इनमें से १४ कॉलिज सरकारी और ६ मिशनरियों के थे। १८८२ में कॉलिजों की संख्या बढ़कर ६२ हो गई।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Trace the development of education in India from 1854 to 1882

2 Give a brief history of (a) Primary Education (b) Secondary Education and (c) Higher Education in India from 1854 to 1882

१०

भारतीय शिक्षा-आयोग (हन्टर कमीशन)

Indian Education Commission

(Hunter Commission)

[1882-1883]

विषय प्रवेश

भारत-सरकार ने सिद्धान्त रूप में तो वुड के घोषणा-पत्र में प्रतिपादित शिक्षा-नीति का अनुसरण किया परन्तु क्रियात्मक पग बहुत-कुछ भिन्न ही उठाये। उदाहरणार्थ—घोषणा पत्र की अवहेलना करके भारत-सरकार निस्यन्दन सिद्धान्त पर चलती रही और जनसाधारण की शिक्षा की ओर कोई ठोस कदम नहीं उठाया। इस अवहेलना की जाँच की जानी थी। पर जाँच करता कौन ? भारत के सौभाग्य से इस देश की शिक्षा में रुचि रखने वाले इंगलैण्ड के कुछ उत्साही निवासियों ने भारत में शिक्षा की सामान्य समिति (General Council of Education in India) नामक एक संस्था स्थापित की थी। जब १८८२ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारत के नये गवर्नर जनरल लार्ड रिपन (Lord Ripon) की नियुक्ति की, तब इस संस्था के कुछ सदस्यों के एक शिष्ट-मण्डल ने उनसे भेंट की और भारतीय शिक्षा-नीति की जाँच करने की

प्रार्थना की। लार्ड रिपन ने उन्हें ऐसा करने का आश्वासन दिया। भारत पहुँचकर लार्ड रिपन ने ३ फरवरी १८८ को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य (Sir William Hunter) की अध्यक्षता में प्रथम भारतीय शिक्षा-आयोग (Indian Education Commission) की नियुक्ति की। इसी आयोग को हन्टर कमीशन (Hunter Commission) भी कहा जाता है। इस आयोग में सर हन्टर के अतिरिक्त २० सदस्य थे। इनमें से ७ भारतीयों के प्रतिनिधि थे।

आयोग का कार्य-क्षेत्र एवं उद्देश्य
(Terms of Reference & Objectives of Commission)

जिस प्रस्ताव द्वारा आयोग की नियुक्ति की गई थी उसमें आयोग के उद्देश्यों को इन शब्दों में वर्णित किया गया था— कमीशन का कर्त्तव्य होगा विशेष रूप से इस बात की जाँच करना कि १८५४ के घोषणा-पत्र के सिद्धान्तों को किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है और ऐसे उपायों का सुझाव देना जो उस घोषणा-पत्र में निर्धारित नीति को उत्तरोत्तर कार्यान्वित करने के हेतु कमीशन के मतानुसार वाछनीय प्रतीत होते हों।

संक्षेप में कमीशन को अधोलिखित बातों की जाँच करने के लिये कहा गया था :—

१ क्या सरकार ने उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देकर प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की है ?

२ प्रारम्भिक शिक्षा की क्या स्थिति है और उसके विकास के लिये क्या उपाय किये जाने चाहिये ?

३ राजकीय विद्यालयों की क्या स्थिति है और भारतीय शिक्षा के लिए उनकी आवश्यकता है या नहीं ?

४ देश की शिक्षा-व्यवस्था में मिशन स्कूलों का क्या स्थान है ?

५ शिक्षा-क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिए ?

दस माह के पश्चात् मार्च १८८२ में आयोग ने ६०० से अधिक पृष्ठों की एक वृहदाकार रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की।

आयोग की सिफारिशें और सुझाव

(Recommendations & Suggestions of the Commission)

अपनी रिपोर्ट में आयोग ने भारतीय शिक्षा पर विहंगम दृष्टिपात करने के उपरान्त भावी शिक्षा प्रसार के लिये अति महत्वपूर्ण सुझाव दिये और शिक्षा के प्रत्येक अङ्ग के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशों को लेखबद्ध किया।

१ प्राथमिक शिक्षा

आयोग का मुख्य कार्य क्षेत्र प्राथमिक शिक्षा की जाँच करना था। अतः आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के प्रत्येक अंग के सम्बन्ध में अपने सुझाव और सिफारिशें प्रस्तुत कीं जिनका विवरण निम्नांकित है —

प्राथमिक शिक्षा की नीति—प्राथमिक शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार करना होना चाहिये न कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक साधन मात्र।

२ प्राथमिक शिक्षा में ऐसे विषयों को स्थान देना चाहिये जो जन सामान्य के व्यावहारिक जीवन में लाभप्रद सिद्ध हों।

३ प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं होनी चाहिए।

४ प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिये।

५ प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार को निम्न पदों पर नियुक्तियाँ करते समय उन व्यक्तियों को प्राथमिकता देनी चाहिये जिन्हें लिखने-पढ़ने का सामान्य ज्ञान हो।

संगठन—आयोग ने भारत में प्राथमिक शिक्षा के संगठन का कार्य नगरपालिकाओं (Municipal Boards) और जिला-परिषदों (District Boards) के हाथ में दे दिया। यह व्यवस्था करके सरकार को जन-साधारण को शिक्षित करने के भार से मुक्त कर दिया।

पाठ्य क्रम—आयोग ने पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में सभी प्रान्तों को स्वतन्त्रता दे दी। वे अपनी परम्परा के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित कर सकते थे। परन्तु आयोग ने कुछ जीवनोपयोगी विषयों को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने की सिफारिश की जैसे— भौतिक विज्ञान, क्षेत्रमिति, चिकित्सा, बही खाता और कृषि।

अध्यापकों का प्रशिक्षण—हण्टर कमीशन ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सिफारिश की कि अध्यापकों को दीक्षित किया जाय और इस कार्य के लिये नार्मल स्कूल खोले जायें। प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों को दीक्षित करने के लिये कमीशन ने निम्नांकित सिफारिशें कीं—

१ प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाय जहाँ से वे समस्त प्राथमिक पाठशालाओं की स्थानीय माँगों की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक विद्यालय निरीक्षक के क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल की स्थापना की जाय।
२ नार्मल स्कूलों को सफल बनाने के लिये यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक निरीक्षक अपने अधीनस्थ प्रशिक्षण विद्यालय में रुचि ले और उसके सुचारु संचालन की व्यवस्था करे।
३ प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिये स्वीकृत धन राशि में से प्रारम्भिक विद्यालयों के निरीक्षण तथा नार्मल स्कूलों की स्थापना की उचित व्यवस्था की जाय।

एक समीक्षा— भारतीय शिक्षा-आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के प्राय: सभी अङ्गों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग की हार्दिक अभिलाषा थी कि भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन देकर जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार करे। प्राथमिक विद्यालयों को नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों को सौंपने से शिक्षालयों का बड़ा उपकार हुआ। कारण यह है कि जिस कार्य को करने के लिये सरकार के पास समय नहीं था उसको स्थानीय संस्थाएँ सम्पादित कर सकती थीं। इस प्रकार जन शिक्षा की समस्या के समाधान की आशा दृष्टिगोचर होने लगी।

२ माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने केवल दो बातों के विषय में अपने सुझाव दिये—(१) माध्यमिक शिक्षा में विस्तार करने के उपाय और (२) माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि।

शिक्षा प्रसार के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव था कि सरकार माध्यमिक शिक्षा को सुयोग्य एवं बुद्धिमान भारतीयों के हाथों में सौंपकर स्वयं उसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण करे। यदि किसी क्षेत्र में अंग्रेजी की शिक्षा के लिए माध्यमिक स्कूलों की स्थापना आवश्यक प्रतीत हो, तो उनको सहायता-अनुदान की प्रणाली पर स्थापित किया जाय। आयोग को विश्वास था

कि कुशल भारतीयों पर माध्यमिक शिक्षा का भार होने से उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी और शीघ्र ही वह जन साधारण की माँग की पूर्ति कर सकेगी।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यदि एक क्षेत्र की जनता इतनी धनी नहीं है कि वह सहायता-अनुदान से माध्यमिक विद्यालय को चला सके तो क्या किया जाय? इसके उत्तर में आयोग ने कहा कि ऐसे स्थान पर सरकार स्कूल का निर्माण कर सकती है। परन्तु आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ऐसा स्कूल एक जिले में एक ही होना चाहिए। इस स्कूल की स्थापना के पश्चात् सरकार को माध्यमिक शिक्षा के प्रसार का कार्य जिले के निवासियों पर छोड़ देना चाहिए। यदि वे चाहें तो अपने विद्यालयों को लोकप्रिय बनाने के लिए राजकीय विद्यालयों से कम शुल्क ले सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कमीशन ने लिखा है कि हाई स्कूल की शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय—(i) A Course एवं (ii) B Course। प्रथम कोर्स उन विद्यार्थियों के लिए हो जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश करना चाहते हों। द्वितीय कोर्स अधिक व्यावहारिक हो और उसका उद्देश्य नवयुवकों को व्यावसायिक तथा असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो।

एक समीक्षा—आयोग ने शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में भी अपने सुझाव दिए परन्तु वे अत्यधिक निराशाजनक थे। आयोग ने हाई स्कूल के स्तर पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजी का पक्ष लिया और मातृभाषा के विषय में मौन रहा। उसने मिडिल स्कूलों के लिए भी शिक्षा का कोई माध्यम निश्चित नहीं किया। आयोग की इन कुल-मुल सिफारिशों का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक स्तर पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सका।

३ अध्यापकों का प्रशिक्षण

सन् १८८२ तक भारत में केवल दो प्रशिक्षण विद्यालय थे—लाहौर और मद्रास में। आयोग ने अध्यापकों के प्रशिक्षण पर विशेष रूप से बल दिया और निम्नांकित सिफारिशें कीं —

१ स्नातकों (Graduates) का प्रशिक्षण काल उनसे निम्न योग्यताओं के छात्राध्यापकों की अपेक्षा कम होना चाहिए।

२ प्रशिक्षण विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शिक्षा सिद्धान्त एवं प्रायोगिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाय।

४ उच्च शिक्षा

यद्यपि भारतीय शिक्षा आयोग को उच्च शिक्षा की जाँच करने का आदेश नहीं दिया गया था परन्तु फिर भी उसने कॉलेज की शिक्षा के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये।

१ कॉलिजों को सहायता अनुदान देते समय शिक्षकों की संख्या, कॉलिजों के व्यय उनकी आय क्षमता एवं स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाय।

२ आवश्यकता पड़ने पर कॉलिजों को भवन निर्माण, फर्नीचर पुस्तकालय और शिक्षण-सामग्री के लिये विशेष सहायता-अनुदान दिया जाय।

३ कॉलिजों में विभिन्न प्रकार के विस्तृत पाठ्य क्रमों का समावेश किया जाय जिससे कि विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चयन कर सकें।

४ छात्रों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक ऐसी पाठ्य पुस्तक की रचना की जाय जिसमें प्रकृति धर्म तथा मानव धर्म के सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या हो।

५ कॉलिजों के प्रधानाचार्य या अध्यापकों द्वारा एक ऐसी व्याख्यान माला जारी की जाय जिसमें विद्यार्थियों को मानव तथा नागरिक के कर्त्तव्य बताये जायें।

५ सहायता अनुदान-प्रणाली

वुड के घोषणा पत्र में प्रतिपादित सहायता अनुदान प्रणाली को भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित किया गया था परन्तु सभी प्रान्तों में इसका रूप भिन्न था। उदाहरणार्थ – बम्बई में परीक्षा-फल के अनुसार वेतन-प्रणाली' (Payment by Rusults System) मद्रास में वेतन अनुदान-प्रणाली' (Salary Grant System) तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त मध्य प्रान्त और कुछ सीमा तक पंजाब में 'नियत कालीन-प्रणाली (Fixed Period System) का प्रचलन था। शिक्षा-आयोग ने इन समस्त प्रणालियों के गुण-दोषों को दूर करने के लिए सुझाव दिये।

आयोग का मूल्यांकन
(Estimate of the Commisstion)

आयोग ने अपने अमूल्य सुझाव देकर भारतीय शिक्षा की एक निश्चित नीति का सूत्रपात किया। आयोग ने १८५४ के घोषणा-पत्र में शिक्षा के लिये

प्रतिपादित सिद्धान्तों की पुष्टि की और उन्हीं के आधार पर १६०१ ०२ तक भारतीयों की शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया गया। इसी आशय से Howell ने लिखा है—'भारत म ब्रिटिश शासन-काल में प्रथमतः शिक्षा की अवहेलना हुई, फिर उग्रता एव सफलता के साथ उसका विरोध किया गया, तत्पश्चात् एक ऐसी प्रणाली का सूत्रपात किया गया जो कि सवमान्य रूप से हानिकारक थी और अन्त में वह अपने वतमान स्तर पर रख दी गई।'

आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया। निस्सन्देह देशी शिक्षा निष्प्राण हो चुकी थी परन्तु उससे न तो कोई व्यथित हुआ और न किसी ने उसके लिये अश्रुपात किया। इसके विपरीत लोगों ने अंग्रेजी स्कूलों तथा कॉलिजों का आश्चर्यजनक विस्तार देखा। सम्पूर्ण देश में प्रायमिक विद्यालयों का जाल बिछ गया और ये विद्यालय निश्चय रूप से देशी पाठशालाओं से अधिक उत्तम थे। शिक्षा के विभिन्न अवयवों का क्रमिक विकास होने लगा। सरकारी अधिकारी तथा भारतीय, शिक्षा के लिए किए गये अपने प्रयासों से सुख और सन्तोष की साँस लेने लगे।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आयोग के सुझावों के फलस्वरूप शिक्षा का जो विकास प्रारम्भ हुआ उसमें त्रुटियाँ नहीं थीं या उसके प्रति किसी को कोई शिकायत नहीं थी। वस्तुतः शिक्षा में अनेक दोष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे थे। प्रथम इस शिक्षा ने भारत के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में कोई योग नहीं दिया। द्वितीय शिक्षा के ऊपर पर्याप्त धन व्यय नहीं किया गया जिससे जन-साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति नहीं हुई। तृतीय, शिक्षा के द्वारा एक ऐसे नवीन वर्ग का निर्माण हुआ जिसे नियत जनता से किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी। चतुर्थ शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति नगरों में नौकरियाँ करने लगे जिससे ग्रामीण जनता से उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 State and discuss the recommendations of the Hunter Commission of 1882 regarding either Primary Education or Higher Education

2 Summarize the chief recommendations of the Hunter Commission of 1882 on Secondary Education and trace their influence on the subsequent development of Secondary Education in India

११

शिक्षा की प्रगति

(Progress of Education)

[1882 1902]

विषय-प्रवेश

हम अध्याय १० में भारतीय शिक्षा-आयोग द्वारा शिक्षा के विभिन्न अङ्गों के सम्बन्ध में दी गई सिफारिशों का वर्णन कर चुके हैं। इनमें से अधिकांश सिफारिशों को भारत सरकार ने स्वीकृत किया। फलस्वरूप शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। हम इन पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं।

१ प्रायमिक शिक्षा

लार्ड रिपन ने इङ्गलैण्ड की काउण्टी कौंसिल्स का अनुकरण करके भारत में नगर-पालिकाओं एवं जिला-परिषदों का निर्माण किया था। भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध इन स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस नवीन व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा की कुछ प्रगति अवश्य हुई पर उसको सतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि सरकार ने स्थानीय संस्थाओं पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व रखकर उससे अपना पीछा छुड़ाया। सरकार की उपेक्षा का

प्रमाण इस बात से मिलता है कि प्राथमिक शिक्षा पर किया जाने वाला राजकीय व्यय सन् १८८२ से १९०२ तक केवल १५ लाख रुपया बढ़ाया गया। इसके विपरीत, स्थानीय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में यथाशक्ति योग दिया। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले अपने व्यय को सन् १८८२ से १९०२ तक २२ लाख बढ़ा दिया। परन्तु स्थानीय संस्थाओं की अपनी असमर्थताएँ थीं। फलस्वरूप इस अवधि में प्राथमिक विद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि न हो सकी। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन विद्यालयों की स्थापना नहीं की गई।

२ माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के विषय में हण्टर कमीशन का सुझाव था कि सरकार इसकी व्यवस्था को व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ दे और स्वयं इसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाय। सरकार ने इस सुझाव के प्रतिकूल कार्य किया और पूर्व के समान माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में व्यस्त रही। फलतः शिक्षा के इस क्षेत्र में प्रगति होनी स्वाभाविक थी। शिक्षा विभाग ने राजकीय विद्यालयों का सुव्यवस्था में शिथिलता न आने दी और वे उत्तरोत्तर समुन्नत होते चले गये। इसके विपरीत सहायता-अनुदान से चलने वाले विद्यालयों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। उनके पास धन का अभाव था और वे अपने व्यय के लिये मुख्यतः शुल्क तथा चन्दों पर निर्भर रहते थे।

आयोग ने हाई-स्कूल की शिक्षा को अधिक सामान्य बनाने के विचार से उसे 'अ-कोर्स' एवं 'ब-कोर्स' में विभाजित किया था। यद्यपि आयोग के इस सुझाव को स्वीकृत किया गया परन्तु इन विषयों को लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। कारण यह था कि उस समय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—राजपद की प्राप्ति करना था। विद्यार्थियों का झुकाव 'ब-कोर्स' की अपेक्षा 'अ-कोर्स' की ओर ही रहा। फिर भी प्रान्तीय सरकारों ने हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में औद्योगिक व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करके उसको प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया।

३ उच्च शिक्षा

भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों ने अप्रत्यक्ष रूप से उच्च शिक्षा के विद्यालयों के विकास में योग दिया। माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या में तीव्र वृद्धि होने के कारण उच्च शिक्षा के लिए कॉलेजों का निर्माण आवश्यक हो गया। आयोग ने भारतीय शिक्षा में व्यक्तिगत प्रयासों को भी प्रोत्साहित किया था। मिशनरियों का विरोधी होने के कारण आयोग ने भारतीयों

को ही वरीयता दी थी। फलत भारतीयों ने मिशनरियों की अपेक्षाकृत अधिक कॉलिजों की स्थापना करके शिक्षा मे अपनी अभिरुचि का प्रमाण दिया। सन् १९०२ में भारतीय ४२ कॉलिजों का संचालन कर रहे थे जबकि मिशनरियों के संचालन मे केवल ३७ कॉलिज चल रहे थे। सन् १८८२ म इलाहाबाद विश्व विद्यालय का निर्माण हुआ।

इस दौरान मे १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारतीयो म राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत उनको यह पूर्णतया विदित हो चुका था कि भारत के नवयुवकों का चारित्रिक निर्माण भारतीयो द्वारा संचालित राष्ट्रीय विद्यालयो म ही किया जा सकता है। फलस्वरूप इस प्रकार के अनेकों विद्यालयो की स्थापना हुई। उदाहरणार्थ—सन् १८८० म बाल गंगाधर तिलक ने पूना म फर्ग्यूसन कॉलिज (Fergusion College) सन् १८८६ में स्वामी दयानन्द ने लाहौर म दयानन्द वदिक कॉलिज' और सन् १८९८ मे श्रीमती ऐनी बेसेन्ट (Annie Besant) न बनारस म 'सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की।

इस अवधि मे कॉलिजो और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की सख्या में असाधारण वृद्धि हुई। पर अधिकांश कॉलेज भारतीयों द्वारा संचालित थे और उनके पास धन का अभाव था। फलत शिक्षा का स्तर क्रमश गिरता चला गया। इसके बावजूद भी उच्च शिक्षा के विस्तार ने भारतीयों के ज्ञान भंडार म वृद्धि की और वे अपने देश को पराधीनता स मुक्त करने क लिये व्याकुल हो उठे।

UNIVERSITY QUESTION

1 'The most significant achievement of the period from 1882 to 1902 was an unprecedented expansion of primary secondray and collegiate education " Do you agree with this view? If so give reasons and illustrate your answer with facts and figures

१२

लॉर्ड कर्ज़न की शिक्षा-नीति

(Lord Curzon's Educational Policy) [1899—1905]

विषय प्रवेश

जिस समय भारतीयों के अन्तर में अपना मातृभूमि की दासता की बेड़ियों को काट डालने की भावनाएं उमड़ रही थीं उस समय जनवरी १८९९ ई० में Lord Curzon ने गवर्नर-जनरल के रूप में इस देश में पदार्पण किया। A N Basu के मतानुसार— वह स्वभाव से उदार एवं स्वेच्छाचारी शासक था और शिक्षा द्वारा कठोर शासन में विश्वास करने वाला कठोर साम्राज्यवादी था। वह केन्द्रीयकरण एवं कार्य क्षमता का भी पुजारी था। (By temperament he was a benevolent autocrat and by training a diehard imperialist with implicit faith in a strong rule. He was also the archpriest of centralisation and efficiency) वह पूरा पक्का अंग्रेज, कुशल प्रशासक और पाश्चात्य सभ्यता का परम भक्त था। उसका अटल विश्वास था कि [illegible] जातियों का उद्धार केवल पाश्चात्य सभ्यता को अंगीकार करने से ही हो सकता है। अतः प्रत्येक अंग्रेज का यह कर्तव्य है कि

वह प्राच्य जातियों को सभ्य बनाये। इस प्रकार भारत में फैलती हुई राष्ट्रीयता की भावना के विरोधी के रूप में कर्ज़न ने इस देश का शासन-सूत्र अपने हाथ में सम्हाला।

शिमला शिक्षा-सम्मेलन, १९०१ (Simla Educational Conference 1901)

कर्ज़न को शिक्षा में विशेष अभिरुचि थी। अतः भारत आने के कुछ समय उपरान्त ही उसने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। सन् १९०१ में उसने शिमला में एक गुप्त शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया। इसमें १५० प्रस्ताव पास किये गये जो शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव और कर्ज़न की शिक्षा-नीति के आधार बने।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, १९०४

(Government Resolution on Educational Policy, 1904)

११ मार्च, १९०४ को लार्ड कर्ज़न ने अपनी शिक्षा नीति को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित किया। इस प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया। इनमें से अनेक दोष आज भी इस देश की शिक्षा में मसक बिन्दुओं के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रस्ताव में कहा गया— *संख्यात्मक दृष्टि से वर्तमान शिक्षा के दोष सर्वविदित हैं।* ५ में से ४ गाँवों में स्कूल नहीं हैं। ४ बालकों में से ३ बिना शिक्षा प्राप्त किये बड़े होते हैं और ४० में से केवल १ बालिका किसी प्रकार के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करती है।'

यद्यपि कर्ज़न ने अपने प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के गुण-दोषों का निरूपण बिल्कुल ठीक किया था और शिक्षा प्रसार के लिये उसके सुझाव भी प्रशंसनीय थे परन्तु जिस नीति का अनुसरण करके वह कार्य को सम्पादित करना चाहता था वह भारतीयों को पसन्द नहीं थी। A N Basu ने लिखा है— "यद्यपि रोग का निदान ठीक था परन्तु प्रस्तावित औषधि न तो उपयुक्त ही थी और न सामयिक ही। लार्ड कर्ज़न ने जो बातें कहीं उनमें से बहुत सी ठीक थीं पर जिस विधि से वह सुधार करना चाहता था उससे शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क में गम्भीर सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने समझा कि इस सुधार काम में कोई गहरी राजनीतिक चाल छिपी हुई है।"

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, १९०२ (Indian Universities Commission 1902)

कर्जन ने अपने शिक्षा के कार्य-क्रम में विश्वविद्यालयों के सुधार को अग्रिमता प्रदान की। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने २७ जनवरी १९०२ को 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' की नियुक्ति की।

जाँच के विषय—आयोग को जाँच के लिये निम्नलिखित विषय दिये गये—

१. ब्रिटिश भारत में स्थित विश्वविद्यालयों की दशा एवं उनकी भावी उन्नति की जाँच करना।
२. उनके विधान तथा कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
३. ऐसे सुझाव देना जिनसे विश्वविद्यालयों का शिक्षण-स्तर उठ सके और विद्या की उन्नति हो सके।

सिफारिशें एवं सुझाव—आयोग ने सभी विश्वविद्यालयों में भ्रमण किया और उनकी अवस्था की सूक्ष्म छानबीन करके लगभग ६ माह पश्चात् एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए निम्नांकित सुझाव दिए गये और सिफारिशें की गई—

१. विश्वविद्यालयों के विधान में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय जिससे कि वे कुछ सीमा तक शिक्षण-कार्य कर सकें।
२. विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये अध्यापकों की नियुक्ति करें।
३. सीनेट एवं सिंडीकेट का पुनर्संगठन किया जाय।
४. सीनेट में कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा सुयोग्य विद्वानों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाय।
५. कॉलेजों को मान्यता प्रदान करने के नियमों में अधिक कड़ाई रखी जाय।
६. मान्यता प्राप्त कॉलेजों का नियमित निरीक्षण किया जाय।
७. प्रत्येक कॉलेज का प्रबन्ध एक संगठित समिति द्वारा किया जाय।
८. मैट्रीकुलेशन का स्तर उच्च किया जाय, इन्टरमीडिएट परीक्षा समाप्त कर दी जाय और बी० ए० का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का कर दिया जाय।

आयोग का मूल्यांकन—उपर्युक्त सुझावों से स्पष्ट हो जाता है कि आयोग का उद्देश्य—विश्वविद्यालयों के संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन करना नहीं था,

अपितु प्रचलित प्रणाली को पुनर्संङ्गठित करके शक्तिशाली बनाना था। आयोग ने विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाने का सुझाव नहीं दिया। उसके मतानुसार कॉलेज देश के प्रत्येक भाग में दूर-दूर तक फैले हुए थे। अतः उनको एकत्र करके विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाना असम्भव था। शिक्षा शुल्क की निम्नतर दर निश्चित करने एवं द्वितीय श्रेणी के कॉलेजों को तोड़ने का सुझाव देने के कारण आयोग ने भारतीयों की शत्रुता मोल ले ली। कर्जन की सरकार ने आयोग की सिफारिश के आधार पर एक विधेयक तैयार किया जो २१ मार्च १९०४ को भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम के रूप में पारित किया गया।

भारतीय विश्वविद्यालय—अधिनियम, १९०४ (Indian Universities Act 1904)

इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन, कार्य-क्षेत्र, अधिकार और शासन आदि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गए। ये परिवर्तन निम्नलिखित थे—

१. विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया। उन्हें परीक्षाएं लेने के अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था करने का भी अधिकार दे दिया गया।
२. यह निश्चय कर दिया गया कि सीनेट के सदस्यों की निम्नतम संख्या ५० और उच्चतम १०० होगी और ये सदस्य अपने पद पर आजीवन न रहकर केवल ५ वर्ष तक रहेंगे।
३. बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की सीनेटों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या २० और अन्य विश्वविद्यालयों की सीनेटों की संख्या १५ से अधिक नहीं होगी।
४. विश्वविद्यालयों के सिण्डीकेटों को कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी गई।
५. सरकार को सीनेट द्वारा बनाये हुए नियमों में संशोधन करने, उन्हें स्वीकृति देने तथा सीनेट द्वारा समय पर नियम न बनाए जाने पर स्वयं नियम बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया।
६. विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता चाहने वाले कॉलेजों के लिये नियम कड़े कर दिए गए और सिण्डीकेटों को मान्यता प्राप्त कॉलेजों के शिक्षण-स्तर को ऊंचा रखने के लिये उनका निरीक्षण करने का अधिकार दे दिया गया।
७. गवर्नर जनरल को विश्वविद्यालयों के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार की सीमाएं निश्चित करने का अधिकार दे दिया गया।

विश्वविद्यालय अधिनियम का मूल्यांकन
(Critical Estimate of Indian Universities Act)

विश्वविद्यालय अधिनियम के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रवाहित हो रही थी। सरकार का कहना था कि इस अधिनियम से विश्वविद्यालयों के समस्त दोषों का निवारण हो जायगा और उच्च शिक्षा की ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो जायगी कि उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी। इसके विपरीत भारतीयों का मत था कि अधिनियम द्वारा उच्च शिक्षा पर सरकार का पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो जायगा और उसकी प्रगति रुक जायगी। परन्तु अधिनियम द्वारा न तो प्रथम बात सत्य सिद्ध हुई और न दूसरी असत्य। हाँ इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उच्च शिक्षा को लाभ अधिक हुआ और हानि कम। विश्वविद्यालयों का संचालन पहिले से अधिक उत्तम रीति से किया जाने लगा। उनका संगठन बहुत-कुछ निर्दोष हो गया और उनके सीनेटों के सदस्य सरकार के चाटुकार न होकर सुयोग्य और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होने लगे। कुछ विश्वविद्यालयों में शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हो गया। पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की स्थापना हो गई। निरीक्षण की व्यवस्था होने के कारण शिक्षा का स्तर उच्च हो गया। जो कॉलेज इसमें सफलता न प्राप्त कर सके, उनका अन्त हो गया। शिक्षा का स्तर उच्च होने से विद्यार्थियों की योग्यता में वृद्धि हुई और वे विभिन्न विषयों में अपनी विद्वत्ता का परिचय देने लगे।

कर्जन और माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाले अधिकांश विद्यालय भारतीयों द्वारा संचालित थे। इनके पास शिक्षा की उचित व्यवस्था करने के लिये धन का अभाव था। अतः शिक्षा-प्रेमी कर्जन का ध्यान इनके सुधार की ओर जाना आवश्यक था। उसने माध्यमिक शिक्षा की प्रगति और उसके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए एक नवीन नीति निर्धारित की। इसकी प्रमुख बातें निम्नांकित थी —

१ सभी माध्यमिक विद्यालयों पर शिक्षा विभाग का नियन्त्रण रहेगा, चाहे उनको सहायता-अनुदान मिलता हो या नहीं।

२ कुछ निश्चित शर्तों को पूर्ण करने वाले विद्यालयों को ही मान्यता (Recognition) प्राप्त होगी।

३ जो विद्यालय अपने छात्रों को मैट्रीकुलेशन की परीक्षा के लिए भेजना चाहते हैं उन्हें अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

४ मान्यता प्राप्त विद्यालय सहायता-अनुदान और राजकीय छात्रवृत्तियां को प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।

५ किसी अमान्य (Unrecognised) विद्यालय का छात्र मान्यता प्राप्त स्कूल में प्रवेश नहीं पा सकेगा।

६ माध्यमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाय शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं हों निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय और गैर-सरकारी स्कूलों को अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय।

कर्ज़न और प्राथमिक शिक्षा

कर्ज़न की प्राथमिक शिक्षा-नीति कुछ भिन्न थी। उच्च शिक्षा में तो वह केवल गुणात्मक (Qualitative) उन्नति चाहता था पर प्राथमिक शिक्षा में वह गुणात्मक तथा संख्यात्मक (Quantitative)—दोनों प्रकार की वृद्धि चाहता था।

प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि करने के लिए कर्ज़न ने उनको उदारता पूर्वक अनावर्तक अनुदान (Non-recurring Grant) दिया। साथ ही प्राथमिक विद्यालयों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान में वृद्धि कर दी। जिला परिषदों और नगरपालिकाओं के प्राथमिक शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय का ½ भाग मिलने लगा जबकि उन्हें अभी तक केवल ⅓ मिलता था। कर्ज़न की इस नीति के फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई।

प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति करने के लिए प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण करके प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या में वृद्धि की ग्रामीण और नगरीय विद्यालयों के लिए विभिन्न पाठ्य-क्रम निर्धारित किए और सहायता अनुदान प्रणाली में सुधार किया।

भारतीय शिक्षा को कर्ज़न की देन (Curzon's Contribution to Indian Education)

भारत आने वाले वाइसरायों में लार्ड कर्ज़न का नाम प्रथम श्रेणी में रखा जाता है। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता का कट्टर समर्थक और भारतीय संस्कृति को हेय समझने के कारण वह इस देश के निवासियों का स्नेह भाजन न बन सका। पर जहाँ तक भारतीय शिक्षा का सम्बन्ध है इसमें उसके भाग को स्वीकार करना पड़ा। उसने शिक्षा के सभी अंगों का पुनर्गठन करने का भागीरथ प्रयास किया। शिक्षा सुधार के क्षेत्र में आन्दोलन का उसने इन शताब्दी के प्रारम्भ

में सूत्रपात किया उसकी गति में आज तीव्रता दृष्टिगोचर हो रही है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत की शिक्षा में मातृभाषाओं के साथ साथ पाश्चात्य विज्ञानों को समाविष्ट करके शिक्षा की समग्र निष्पत्ति करने की अनेकानेक चेष्टाएँ की जा रही हैं।

आधुनिक भारत कर्ज़न की राष्ट्रीयता विरोधी नीति को विस्मृत करके उसकी शिक्षा-सुधार सम्बन्धी सेवाओं की स्मृति को सावधानी से सँजो रहा है। डा० अमरनाथ झा के इस कथन में पूर्ण सत्य का आभास मिलता है – 'आज जब कि अगणित संघर्षों की स्मृति अतीत के गर्त में विलीन हो चुकी है सभी भारतीय उस महान् वायसराय की विवेकपूर्ण राज्य मर्मज्ञता के प्रति अनुगृहीत हैं, जिसने हमारे प्राचीन स्मारकों के संरक्षण एवं हमारे शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने का इतना प्रयास किया। अपने इन कार्यों के लिए उसे आज भी स्मरण किया जाता है और भारतवासियों की अनेक पीढ़ियाँ इन कार्यों के लिए उसका गुणगान करेंगी।' (Now that the ashes of the numerous strifes are cold all Indians are grateful to the wise statesmanship of the Viceroy who did so much to preserve our ancient monuments and raise our educational standards By these achievements he still lives and generations of Indians will bless him for them)

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Write a short essay on Curzon's Contribution to Indian education

2. What services did Curzon render to the cause of Primary Education in India ?

3 Write short notes on the following —
   (a) Simla Educational Conference 1901
   (b) Indian Universities Commission 1902
   (c) Indian Universities Act 1904 and
   (d) Government Resolution on Educational Policy 1904

१३

राष्ट्रीय आन्दोलन का शिक्षा पर प्रभाव

(Impact of National Movement on Education)
[1905-1921]

विषय-प्रवेश

बीसवीं शताब्दी के उषा-काल में राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक हिला दिया था। कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण परिस्थिति बहुत से अधिक गम्भीर हो गई थी। भारतीयों के प्रति उसके उद्दण्ड एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार ने उनकी क्रोधाग्नि को प्रज्ज्वलित कर दिया था। देश के नेताओं ने अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचारों और उनकी साम्राज्यवादी नीति का भण्डाफोड़ करना प्रारम्भ किया। शिक्षित वर्ग ने अंग्रेजों की उस अर्थनीति की कटु आलोचना की—जिसकी छाया में विदेशी भारत का शोषण कर रहे थे। भारतीय नवयुवक क्रान्तिकारी भावनाओं से ओत प्रोत देश के अतीत वैभव की पुनर्स्थापना का स्वप्न देख रहे थे। कुछ कर्मठ समाज-सेवक जनता को सन्देश दे रहे थे कि जब भारतवासी अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझने लगेंगे तभी देश अपने अतीत गौरव की पुनः प्राप्ति कर सकेगा। इन सब बातों के फलस्वरूप सन् १९०४ में राष्ट्रवाद का आन्दोलन अपने चरम बिन्दु पर था।

ऐसे समय में २० जुलाई १९०५ को लॉर्ड कर्जन की नौकरशाही ने मूर्खता पूर्ण एवं निष्प्रयोजन नीति का पालन करके बंगाल विभाजन की घोषणा की। इसको सुनकर सम्पूर्ण बंगाल एक साथ उठ खड़ा हुआ और कांग्रेस ने ७ अगस्त सन् १९०५ के कलकत्ता-अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन के चार मुख्य अंग थे—(अ) स्वराज्य की प्राप्ति (ब) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार (स) स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और (द) राष्ट्रीय शिक्षा की माँग।

राष्ट्रीय शिक्षा की माँग

बंग भंग के शीघ्र बाद ही राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की गई। ज्यों ज्यों राष्ट्रीय आन्दोलन उग्रता धारण करता गया त्यों-त्यों भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की माँग प्रबल होती गई। ऐनी बेसेंट (Annie Besant) ने भारतीय शिक्षा के ओपनिवेशीकरण की अत्यधिक निन्दा करते हुए कहा कि भारत के राष्ट्रीय जीवन एवं राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल बनाने के लिए भारतीय शिक्षा पर विदेशी प्रभुत्व से अधिक उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता है। महात्मा गांधी (Mahatma Gandhi) ने भी जोरदार शब्दों में भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की।

राष्ट्रीय शिक्षा की रूप रेखा (Outline of National Education)

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अन्तर्गत जिस राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की गई उसकी रूप रेखा निम्नांकित आधारभूत सिद्धान्तों पर निर्धारित की गई—

१ भारतीय नियन्त्रण—राष्ट्रीय नेताओं ने माँग की कि शिक्षा को पूर्णत भारतीयों के हाथ में सौंप दिया जाय। ऐनी बेसेंट (Annie Besant) ने बल पूर्वक कहा—'भारतीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो भारतीय धार्मिक भावना से सराबोर होते हुए भी साम्प्रदायिकता से पृथक रहे और छात्रों के समक्ष भक्ति ज्ञान एवं नैतिकता के भारतीय आदर्शों को उपस्थित करे।'

२ स्वदेश प्रेम की शिक्षा—प्रचलित शिक्षा प्रणाली में राजभक्ति की शिक्षा दी जाती थी। इसी शिक्षा प्रणाली को सर्वथा अनुपयुक्त ठहराया गया। ऐनी बेसेंट (Annie Besant) ने कहा कि छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उनमें स्वदेश प्रेम की भावना प्रस्फुटित हो।

३ बाह्य अनुकरण का अन्त—प्रचलित शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो भारतीय होते हुए भी पाश्चात्य विचारों का हो। ऐसी शिक्षा प्रणाली को दोष-युक्त बताया गया। अत राष्ट्रीय नेताओं ने कहा

कि राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो छात्रो के समक्ष भारतीय राष्ट्रीयता की विशेषताओ को रखे।

४ पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानों का अध्ययन—राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थकों ने अनुभव किया कि भारत का बाह्य देशो से सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है। यह तभी दशा म सम्भव होगा जब पाठ्य-क्रम म पाश्चात्य ज्ञान एव विज्ञानो को उचित स्थान दिया जायगा।

५ अग्रेजी के प्रभुत्व का अन्त—राष्ट्रीय शिक्षा में अग्रेजी का प्रभुत्व अवाछनीय है। अंग्रेजी को न तो पाठ्य-क्रम मे प्रधानता दी जाय और न इसे शिक्षा का माध्यम ही रखा जाय। इसके विपरीत भारतीय भाषाओ को प्रमुखता दी जाय।

६ व्यावसायिक शिक्षा पर बल—भारतीय जनमत इस पक्ष म था कि राष्ट्रीय शिक्षा म व्यावसायिक शिक्षा को उचित स्थान दिया जाय। ऐसा करने मे ही देश की आर्थिक समस्या का समाधान होगा और जनता को निर्धनता से मुक्ति मिलेगी।

राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण (Construction of National Institutions)

सन् १९ ५ म बगाल विभाजन की घोषणा के फलस्वरूप सम्पूर्ण देश म विरोध की लहर दौड गई। भारतीयो और विद्यार्थियो ने अपना विरोध व्यक्त करने क लिए सभाए की और जलूस निकाले। इस पर सरकार का दमन-चक्र प्रारम्भ हुआ। छात्रो को राजनीति से पृथक रहने के लिये आदेश दिया गया और इस आज्ञा का पालन न करने पर उनको विद्यालयो स निकाल दिये जाने की धमकी दी गई। छात्रा न इसका उत्तर स्वय ही विद्यालयो का बहिष्कार करके दिया। इन नवयुवको की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय कर्तव्य समझा गया। अत बगाल म गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता मे राष्ट्रीय शिक्षा-समिति (Society for the Promotion of National Education) का सगठन किया गया। इस समिति ने बगाल म राष्ट्रीय हाई स्कूलो का निर्माण किया। रासबिहारी घोष तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर के सयुक्त प्रयास से कलकत्ता में एक 'नेशनल कौंसिल' स्थापित किया गया। कलकत्ता म एक 'टेकनिकल इंस्टीट्यूशन' का भी निर्माण किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन एक अन्य रूप म भी दृष्टिगोचर हुआ। सन् १९ १ म रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्तिनिकेतन में एक ब्रह्मचर्य आश्रम खोला जो आज विश्व भारती के रूप म विकसित दिखाई देता है। इसी समय म लगभग आर्य प्रतिनिधि सभा ने वृन्दावन और हरिद्वार म गुरुकुल स्थापित किये।

इस काल में भारत का बच्चा-बच्चा राष्ट्रीय शिक्षा की भावनाओं से सराबोर हो गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो नवनिर्मित राष्ट्रीय विद्यालयों में प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का पुनरुत्थान अनिवार्य रूप से होगा। परन्तु दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन धीरे-धीरे शिथिल पड़ता गया और १९११ में बंगाल विभाजन के अन्त के साथ वह भी समाप्त हो गया। कलकत्ता का 'नेशनल कॉलिज' बन्द हो गया और अन्य विद्यालय भी विलीन हो गये।

१९२० में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन फिर प्रारम्भ हुआ। मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड योजना (Montagu-Chelmsford Reform) के सुधारों से असन्तुष्ट और जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड से आतंकित भारतीयों ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। १९२० में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में महात्मा गांधी ने जनता से अपने बच्चों को स्कूलों और कॉलिजों से हटा लेने की और विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलिजों को स्थापित करने की अपील की। गांधी जी की अपील व्यर्थ न गई। सहस्रों विद्यार्थियों ने विद्यालयों का बहिष्कार कर दिया। इस कार्य में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्र अग्रणी रहे। उन्होंने विश्वविद्यालय के राष्ट्रीयकरण की माँग की पर उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये जिन छात्रों ने विश्वविद्यालय का बहिष्कार किया था उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए मौलाना मुहम्मद अली ने अलीगढ़ में 'जामिया मिलिया इस्लामिया' नामक विश्वविद्यालय स्थापित किया। यह विश्वविद्यालय सन् १९२५ में उठकर दिल्ली चला गया। भारत के अन्य भागों में अलीगढ़ का अनुकरण किया गया और ४ माह से कम में ही बिहार विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ और अन्य प्रकार के अनेकों राष्ट्रीय स्कूलों तथा कॉलिजों की स्थापना हो गई।

निष्कर्ष—सन् १९२० का राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन असहयोग आन्दोलन का एक अंग था। ४ फरवरी १९२२ को चौराचौरा नामक स्थान में गांधी जी को हिंसा के प्रयोग का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ। फलस्वरूप उन्होंने असहयोग आन्दोलन सहसा स्थगित कर दिया। इसका प्रभाव राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन पर भी पड़ा और उसमें शैथिल्य आ गया।

UNIVERSITY QUESTION

1 Give an account of the impact of national movement on education between 1905 and 1921

१४

शिक्षा की प्रगति

(Progress of Education)
[1905-1921]

विषय प्रवेश

जिस समय देश में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन अपनी अन्तिम श्वास ले रहा था उसी समय १२ दिसम्बर १९११ को सम्राट जार्ज पंचम भारत में भ्रमणार्थ पधारे। उन्होंने भारतीयों की शिक्षा में अपनी रुचि व्यक्त की। ६ जनवरी १९१२ को कलकत्ता विश्वविद्यालय में जनता को अपना संदेश देते हुए उन्होंने कहा— 'मेरी यह इच्छा है कि सम्पूर्ण देश में स्कूलों और कॉलिजों का एक ताना बाना फैल जाय जहाँ से उद्योगों तथा कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायों में कुशल कर दिखाने वाले योग्य उपयोगी विश्वसनीय एवं साहसी नागरिक शिक्षा प्राप्त करके निकला करें।' इस संदेश के फलस्वरूप भारत-सरकार को अपनी शिक्षा-नीति स्पष्ट करना आवश्यक हो गया। उसने यह सन् १९१३ में सरकारी प्रस्ताव द्वारा किया।

शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव १९१३, (Government Resolution on Educational Policy 1913)

इस प्रस्ताव के अनुसार शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों को निर्धारित किया गया एवं शिक्षा के विभिन्न अंगों के विषय में सिफारिशें की गईं।

आधारभूत सिद्धान्त—१ शिक्षा-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि करने की अपेक्षा उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय।

२ प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम को जीवनोपयोगी तथा व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय।

३ भारत में उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान की व्यवस्था की जाय जिससे छात्रों को विदेश न जाना पड़े।

प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें—१ पूर्व प्राथमिक (Lower Primary) स्कूलों का अधिक विस्तार किया जाय।

२ उपयुक्त स्थानों पर उत्तर प्राथमिक (Upper Primary) स्कूलों की स्थापना की जाय।

३ जिला-परिषदों एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा अधिक स्कूल खोले जायं।

४ मिडिल एवं माध्यमिक वर्नाक्यूलर स्कूलों में सुधार किया जाय और उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।

माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें—१ राजकीय स्कूलों की संख्या में वृद्धि न की जाय अपितु उनको आदर्श बनाने का प्रयास किया जाय।

२ गैर-सरकारी स्कूलों को उदारतापूर्वक सहायता-अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाय।

३ हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में मैनुअल ट्रेनिंग एवं विज्ञान ऐसे आधुनिकतम विषयों को सम्मिलित किया जाय।

४ छात्रों को स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनके स्वास्थ्य निरीक्षण (Medical Examination) की व्यवस्था की जाय।

५ माध्यमिक विद्यालयों के लिये 'स्कूल फाइनल' परीक्षा की व्यवस्था किसी संस्था द्वारा की जाय।

उच्च शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें—१ भारत में अभी बहुत समय तक परीक्षक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता रहेगी परन्तु उनकी प्रादेशिक सीमाओं को निश्चित कर देना आवश्यक है।

२ विश्वविद्यालयों की संख्या में वृद्धि की जाय और प्रत्येक प्रान्त में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।

३ विश्वविद्यालयों का कार्य बहुत बढ़ गया है। अतः उन्हें हाई स्कूलों को मान्यता प्रदान करने के कार्य से मुक्त कर दिया जाय।

४ ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना पर जोर दिया जाय, जो शिक्षण कार्य करना चाहते हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (१९१७)
(Calcutta University Commission)

नियुक्ति का कारण—१९१६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर आसुतोष मुखर्जी ने स्नातकोत्तर विभाग (Post-Graduate Department) खोला। वे चाहते थे कि इस विभाग के छात्रों में शिक्षण का कार्य विश्वविद्यालय में ही किया जाय। इस बात की उपयुक्तता की जाँच करने के लिये सरकार ने १४ सितम्बर १९१७ को कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष डा० माइकेल सडलर (Michael Sadler) थे। अतः इसको 'सडलर कमीशन (Sadler Commission) भी कहा जाता है।

जाँच का विषय—आयोग द्वारा जाँच का विषय था— कलकत्ता विश्व विद्यालय की अवस्था एवं आवश्यकता की जाँच करना और उससे सम्बन्धित समस्याओं का रचनात्मक ढङ्ग से समाधान करने का सुझाव देना।'

आयोग की सिफारिशें और सुझाव (Recommendations & Suggestions of the Commission)

माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी सुझाव—१ विश्वविद्यालय में उन्हीं छात्रों का प्रवेश किया जाय जो इन्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों और बी० ए० का कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाय।

२ इन्टरमीडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से पृथक कर दिया जाय। इन कक्षाओं की शिक्षा देने के लिए इन्टरमीडिएट कॉलिज स्थापित किए जायें।

३ इन्टरमीडिएट कॉलिजों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं हों।

४ प्रत्येक प्रान्त में माध्यमिक शिक्षा परिषद्' (Board of Secondary and Intermediate Education) की स्थापना की जाय। माध्यमिक विद्यालयों और इन्टरमीडिएट कॉलिजों के निरीक्षण एवं नियंत्रण का भार इन परिषदों को सौंप दिया जाय।

कलकत्ता विश्वविद्यालय-सम्बन्धी सुझाव—१ ढाका में शीघ्र ही एक आवास और शिक्षण (Residential & Teaching) विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय।

२ कलकत्ता नगर की शिक्षा-संस्थाओं को इस प्रकार संगठित किया जाय कि एक वास्तविक शिक्षण-विश्वविद्यालय का निर्माण हो जाय।

३ नगर के समीपवर्ती कालेजों का संगठन इस दृष्टि से किया जाय कि कुछ स्थानों पर नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाए।

भारतीय विश्वविद्यालय-सम्बन्धी सुझाव—१ विश्वविद्यालयों पर सरकार का अति कठोर नियन्त्रण अवांछनीय है। अतः उन्हें अधिक स्वतन्त्रता दी जाय।

२ 'पास कोर्स' (Pass Course) के अतिरिक्त 'आनर्स कोर्स' (Honours Course) का भी प्रबन्ध किया जाय। बी० ए० के कोर्स की अवधि ३ वर्ष की कर दी जाय।

३ विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय यथा—व्यावसायिक शिक्षा, इंजीनियरिंग, अध्यापन, कानून, कृषि आदि।

४ उप-कुलपति का पद वैतनिक कर दिया जाय।

५ विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देख भाल करने के लिए विश्वविद्यालय में एक 'डाइरेक्टर ऑफ फिजिकल ट्रेनिंग' नियुक्त किया जाय।

आयोग का मूल्यांकन (Critical Estimate of the Commission)

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने इस देश की उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्तुत्य कार्य किया। यद्यपि इसकी नियुक्ति केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच करने के लिए हुई थी तथापि इसने समस्त भारतीय विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए सामान्य सुझाव दिए। फलस्वरूप सरकार ने उनको स्वीकृत किया और उन्हीं के आधार पर सभी विश्वविद्यालयों में सुधार किए गए। यही कारण है कि इस आयोग की रिपोर्ट का महत्त्व अखिल भारत के लिए है। इसके सुझावों ने भारतीय विश्वविद्यालयों को अवांछनीय दासता से मुक्त किया और उन्हें एक नया बाना पहिना दिया। वे परीक्षा संस्थाएँ न रहकर अध्यापन तथा अनुसंधान के केन्द्र बन गए। आयोग ने औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव देकर विश्वविद्यालयों पर व्यावसायिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व रखा और इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर दिया।

उच्च शिक्षा (१९०५-१९२१)

नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण—१८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्माण के उपरान्त ३० वर्ष तक कोई भी विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया गया। परन्तु इस अवधि में कॉलेजों की संख्या १८५ हो गई। यह अनुभव किया जाने लगा था कि इतने कॉलेजों का भार ५ विश्वविद्यालय—कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, पंजाब और इलाहाबाद-संभालने में असमर्थ हैं। अतः उनकी संख्या में वृद्धि की जानी आवश्यक है। १९१३ के सरकारी प्रस्ताव ने विश्वविद्यालयों के नव निर्माण पर जोर दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने भी इस दिशा में कार्य करने के लिए परामर्श दिया। फलस्वरूप १९१६ से १९२१ तक निम्न लिखित ७ नये विश्वविद्यालय स्थापित किए गए :—१ मैसूर विश्वविद्यालय (१९१६) २ पटना विश्वविद्यालय (१९१७) ३ बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (१९१७) ४ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (१९२०) ५ ढाका विश्वविद्यालय (१९२०) ६ लखनऊ विश्वविद्यालय (१९२०) ७ उसमानिया विश्वविद्यालय (१९१८)।

विश्वविद्यालयों का शिक्षण-कार्य—सरकारी सहायता अनुदान एवं व्यक्तिगत साधनों से आर्थिक सहायता प्राप्त करके विश्वविद्यालय दत्तचित्त होकर शिक्षण का कार्य करने लगे। इस काल के १२ विश्वविद्यालयों में से १ विश्वविद्यालय शिक्षण और सम्बन्धीकरण (Affiliation) का कार्य करता था, ५ केवल शिक्षण का और शेष ६ सम्बन्धीकरण का। अन्तिम प्रकार के विश्वविद्यालय कुछ शिक्षण-कार्य भी करते थे जो निम्नांकित में से एक या उससे अधिक होता था :—

१ विश्वविद्यालय में भारतीय एवं विदेशी विज्ञानों के भाषणों की व्यवस्था करना।

२ विश्वविद्यालय में कुछ विशिष्ट विषयों के शिक्षण का प्रबन्ध करना।

३ विश्वविद्यालय में मानव तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं को चलाना।

माध्यमिक शिक्षा (१९०५-१९२१)

सन् १९०५ से १९२१ तक माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इसका प्रमुख कारण यह था कि सरकारी नौकरियों के द्वार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिये खुले हुए थे। ऐसी दशा में छात्रों की संख्या में वृद्धि होना और तदनुसार विद्यालयों की संख्या बढ़ना स्वाभाविक था। इस वृद्धि का श्रेय सन् १९१३ के सरकारी प्रस्ताव को भी प्राप्त है, जिसने माध्यमिक

शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध में अनेकों महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। उसके भी अधिक श्रेय भारतीय समाज-सेवकों का दिया जाना चाहिए जिन्होंने शिक्षा प्रसार के कार्य में अपने को तन-मन से लगा दिया था।

व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था— भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तों में हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया गया था और स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट परीक्षा प्रारम्भ की गई थी। यह व्यवस्था इस अवधि में भी यथावत् रखी गई। यद्यपि अधिकांश विद्यार्थी अब भी मैट्रीकुलेशन परीक्षा में सम्मिलित होते थे तथापि स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या उनसे अधिक कम नहीं था।

अंग्रेजी शिक्षा में सुधार—माध्यमिक स्कूलों का प्रमुख ध्येय—अंग्रेजी की शिक्षा देना ही गया था। इस काल में भी इस ध्येय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतः अंग्रेजी के शिक्षण को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के विचार से विभिन्न विधियों का प्रयोग किया गया।

शिक्षा का माध्यम— अंग्रेजी को अत्यधिक महत्त्व देने से भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम न बनाया जा सका। मिडिल स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा था पर हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही था।

एक टिप्पणी—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की सराहनीय प्रगति हुई। साथ ही उसकी गुणात्मक उन्नति भी हुई। छात्रों की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई। परन्तु माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं का समाधान न हो सका। हाई स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा और व्यावसायिक शिक्षा की सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं की गई।

प्राथमिक शिक्षा (१९०५-१९२१)

कर्जन प्रथम वाइसराय था जिसने सन् १९०४ के सरकारी प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा का विकास करना—सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य बताया। उसने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया। फलस्वरूप १९११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में बहुत तीव्रता रही। दिसम्बर १९११ में सम्राट जार्ज पंचम भारत पधारे और उन्होंने दिल्ली दरबार में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए जाने के लिये ५० लाख रुपये की धन राशि प्रदान करने की घोषणा की।

सन् १९१३ के सरकारी प्रस्ताव के अनुसार सरकार का ध्यान प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक उन्नति की ओर अधिक

था। वस्तुतः प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कोई नया सुझाव नहीं दिया गया। अतः प्राथमिक शिक्षा में कोई प्रगति दृष्टिगोचर नहीं हुई। हाँ इतना अवश्य हुआ कि प्रस्ताव के सुझावों के परिणाम-स्वरूप १९१७ के अन्त तक संयुक्त प्रान्त, बिहार, आसाम, पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्तों में ज़िला परिषदों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राथमिक स्कूलों का निर्माण किया गया। पर इन प्रयासों के बावजूद भी परिणाम अच्छे नहीं निकले।

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास

बड़ौदा नरेश का प्रथम प्रयास

महाराज सयाजीराव गायकवाड़ को अपनी प्रजा की शिक्षा में बहुत रुचि थी, फलतः मार्च १८९३ में उन्होंने एक रचनात्मक क़दम उठाया। एक राजाज्ञा द्वारा घोषित किया गया कि अमरेली नगर के एक ताल्लुका के ९ ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी। ७ से १२ वर्ष की आयु तक के सब बालकों और ७ से १० वर्ष की आयु तक की सब बालिकाओं को प्राथमिक विद्यालयों में अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी। नवम्बर १८९३ में अनिवार्य शिक्षा का यह कार्य प्रारम्भ किया गया और इसमें इतनी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई कि उपरोक्त ताल्लुका के ५२ ग्रामों में शिक्षा अनिवार्य करदी गई। अमरेली में १५ वर्ष तक किये जाने वाले इस नवीन प्रयोग ने सिद्ध कर दिया कि सम्पूर्ण बड़ौदा राज्य के लिये प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य किया जाना उपयुक्त और वाञ्छनीय होगा। अतः १९०६ में एक अधिनियम बनाकर राज्य के सभी बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

गोखले का विधेयक (Gokhale's Bill 1911)

राष्ट्रीय भावनाओं से सराबोर शिक्षा के मर्मज्ञ गोपाल कृष्ण गोखले बड़ौदा-नरेश के उत्कृष्ट उदाहरण से अनुप्राणित हुए। उन्होंने विचार किया कि जिस कार्य को आम के सीमित साधनों वाला एक छोटा-सा देशी राज्य सफलतापूर्वक कर चुका है उस कार्य को ब्रिटिश भारत में भी जिसके पास धन का अभाव नहीं है अवश्य सम्पादित किया जा सकता है। अतः उन्होंने भारत सरकार को इस दिशा में क्रियाशील करने का दृढ़ निश्चय किया।

गोखले का प्रस्ताव—केन्द्रीय धारा सभा (Imperial Legislative Council) के सदस्य के रूप में १९ मार्च १९१० को गोखले ने यह प्रस्ताव (Resolution) रखा— "यह सभा सिफारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय और इस सम्बन्ध में निश्चित प्रस्तावों को तैयार करने के लिये सरकारी

और गैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग शीघ्र ही नियुक्त किया जाय।" सरकार द्वारा प्रस्ताव पर विचार करने का आश्वासन प्राप्त होने पर गोखले ने उसे वापिस ले लिया। पर सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने के लिये कुछ नहीं किया। इससे गोखले को बड़ी निराशा हुई।

गोखले का विधेयक—प्राथमिक शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता देखकर गोखले ने १६ मार्च १६११ को केन्द्रीय धारा सभा में प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी अपना विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया— "इस विधेयक का उद्देश्य देश की प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमशः लागू करना है।" ("The object of this Bill is to provide for the gradual introduction of the principle of compulsion into the Elementary Education System of the country") यह विधेयक गोखले के प्रस्ताव पर आधारित था और इसकी मुख्य-मुख्य बातें अधोलिखित थीं —

१ अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम को उन स्थानीय बोर्डों के क्षेत्रों में लागू किया जाय जहाँ के बच्चों का एक निश्चित प्रतिशत प्रारम्भिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। इस प्रतिशत को निश्चित करने का अधिकार गवर्नर-जनरल की परिषद् को होगा।

२ स्थानीय बोर्ड सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करके इस अधिनियम को लागू कर सकते हैं।

३ स्थानीय बोर्ड इस अधिनियम को अपने क्षेत्र में पूर्ण अथवा आंशिक रूप में लागू कर सकते हैं।

४ प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए स्थानीय बोर्ड शिक्षा-कर (Education Cess) लगा सकते हैं।

५ अभिभावकों के लिए ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों को प्राथमिक विद्यालयों में भेजना अनिवार्य हो। यदि वे इस नियम का उल्लंघन करें तो उन्हें दण्ड दिया जाय।

६ कालान्तर में बालिकाओं के लिए भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

–

७ जिस अभिभावक की आय १० रुपये मासिक से कम हो उससे शिक्षा शुल्क न लिया जाय।

८ अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का व्यय भार स्थानीय बोर्डों और सरकार द्वारा वहन किया जाय। सरकार सम्पूर्ण व्यय का ⅔ भाग दे।

१७ मार्च १९१२ को धारा-सभा में विधेयक पर वाद विवाद प्रारम्भ हुआ। दो दिन के भीषण संघर्ष के पश्चात् १९ मार्च १९१२ को इसे १३ वोटों के विरुद्ध ३८ वोटों से गिरा दिया गया।

अनिवार्य शिक्षा-अधिनियम (Compulsory Education Acts)

गोखले के कार्य से प्रेरणा प्राप्त करके निम्नलिखित प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम बनाये गये —

पंजाब—१९१९—नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों के लिये।

संयुक्त प्रान्त—१९१९—नगरपालिका-क्षेत्रों में बालकों तथा बालिकाओं के लिये।

बंगाल—१९१९—नगरपालिका क्षेत्रों में बालकों के लिये।

बिहार व उड़ीसा—१९१९—नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों के लिये।

बम्बई—यहाँ पटेल अधिनियम १९१८ में बना। यह बम्बई के अतिरिक्त अन्य सभी नगरपालिकाओं के लिये था। सन् १९२० में बम्बई नगर के लिये अधिनियम बना। इसके अनुसार वहाँ के बालकों और बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

मध्य प्रान्त—१९२०—नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये।

मद्रास—१९२०—नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Give a historical review of the attempts for Compulsory Primary Education in India from 1906 to 1920. How far did these attempts succeed?

2 In spite of some defects it is universally admitted that the Calcutta University Commission wielded the greatest influence on university education in this country Comment.

3 Write Short notes on the following —

(a) Gokhale s Contribution to Primary Education

(b) Sadler Commission Report, and

(c) Government Resolution on Educational Policy 1913

१५

शिक्षा की प्रगति

(Progress of Education)

[1921-1937]

विषय प्रवेश

सन् १९१४ में प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। अन्य मित्र राष्ट्रों के साथ इंगलैण्ड ने भी घोषित किया कि— यह युद्ध संसार को जनतंत्रवाद के लिये सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से लड़ा जा रहा है। इस घोषणा के पश्चात् महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीयों ने धन-जन से इंगलैण्ड की सहायता की। सन् १९१८ में युद्ध विराम की घोषणा हुई। इस बीच भारत-मंत्री लार्ड मांटेग्यू (Montagu) ने भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड (Chelmsford) के साथ भारत का दौरा करके देश की राजनीतिक एवं वैधानिक परिस्थितियों का अध्ययन किया और जुलाई १९१८ में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (Montagu Chelmsford Report) प्रकाशित की।

द्वैध-शासन की स्थापना (Establishment of Dyarchy)

उपर्युक्त रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने १९१९ का भारत-सरकार अधिनियम (Government of India Act) पारित किया और १९२१ में

उसे कार्यान्वित कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारत में द्वैधशासन प्रणाली (Dyarchy) अर्थात् दोहरे शासन की व्यवस्था की गई। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तों के विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया—(१)सरक्षित (Reserved) और (२) हस्तान्तरित (Transferred)। सरक्षित विषयों का प्रशासन कर्मचारी वर्ग के हाथों में सौंपा गया। ये कर्मचारी गवर्नर-जनरल एवं भारत मन्त्री के माध्यम से ब्रिटिश लोकसभा के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तान्तरित विषयों के प्रशासक, जन प्रिय मन्त्रीगण, प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। शिक्षा को हस्तान्तरित विषयों में स्थान दिया गया और उसे लोकप्रिय मन्त्रियों को सौंप दिया गया।

हर्टॉग समिति (Hartog Committee, 1929)

द्वैध शासन प्रणाली एक असंगत आधार वाली जटिल दुरूह तथा अस्त-व्यस्त प्रणाली सिद्ध हुई। काँग्रेस ने उसका घोर विरोध किया और पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। भारतीय आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश लोकसभा ने ८ नवम्बर १९२७ को 'साइमन कमीशन' (Simon-Commission) की नियुक्ति की जिसका उद्देश्य १९१९ की सुधार-योजना के अनुभवों का विवेचना करना था। इस कमीशन की नियुक्ति के समय भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन चल रहा था। अतः कमीशन ने भारतीय शिक्षा की जाँच करने के लिये एक सहायक समिति (Auxiliary Committe) की नियुक्ति की। इसके सभापति सर फिलिप हर्टॉग (Philip Hartog) थे। उन्हीं के नाम से यह समिति हर्टॉग समिति (Hartog Committee) के नाम से विख्यात है। समिति ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के सभी अङ्गों का अध्ययन किया जिसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा।

उच्च शिक्षा (१९२१-१९३७)

विश्वविद्यालयों का निर्माण—१९१३ के सरकारी-प्रस्ताव के अनुसार इस काल में ५ नवीन विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया गया। ये विश्वविद्यालय थे—१ दिल्ली विश्वविद्यालय (१९२२) २ नागपुर विश्वविद्यालय (१९२३) ३ आंध्र विश्वविद्यालय (१९२६) ४ आगरा विश्वविद्यालय (१९२७) एवं ५ अन्नमलाई विश्वविद्यालय (१९२९)।

पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन—इस काल में पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन किया गया। मद्रास विश्वविद्यालय ने विज्ञान के विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की और अनुसंधान कार्य भी प्रारम्भ किया। बम्बई विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर एवं औद्योगिक शिक्षा प्रदान करने के

काम का श्रीगणेश किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय पूर्ण रूप से शैक्षणिक बन गया। पंजाब विश्वविद्यालय ने 'विज्ञान व आनर्स कार्य' को अधिक व्यापक बनाया।

विश्वविद्यालय शिक्षा—नवीन विश्वविद्यालयों के निर्माण एवं पुरानों के पुनर्गठन तथा विस्तार के कारण उच्च शिक्षा की अधिक सुविधाएं हो गईं। फलस्वरूप छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा की व्यवस्था एवं यू० टी० सी० (University-Training Corps) की स्थापना की गई। कलकत्ता ढाका और कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा (Military Science) को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित किया गया।

हर्टाग समिति के सुझाव—विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में समिति ने निम्नांकित सुझाव दिये —

१. शिक्षा की दृष्टि से एकात्मक विश्वविद्यालय सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सम्बन्धक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता अभी पर्याप्त समय तक रहेगी।
२. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर को ऊंचा उठाना आवश्यक है।
३. विश्वविद्यालयों के प्रवेश-नियमों में कड़ाई की जाय।
४. आनर्स कोर्स के शिक्षण का प्रबन्ध किया जाय और इसको 'पास कोर्स' से पृथक रखा जाय।
५. स्नातकों में बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिये विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया जाय।

माध्यमिक शिक्षा (१९२१-१९३७)

१९२१ से १९३७ तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जितनी मनोन्मुखी उन्नति परिलक्षित होती है उतनी माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अवलोकित नहीं होती है। निस्सन्देह माध्यमिक विद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में कालिजों और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई। राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन के फलस्वरूप प्रायः प्रत्येक बड़े ग्राम और कस्बे में एक स्कूल भवन दिखाई देने लगा। सन् १९३७ तक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा। पर उस वर्ष भारतीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठापित कर दिया गया। अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया।

हर्टाग समिति के सुझाव—समिति ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम संकुचित है। अतः उसको विस्तृत किया जाय और उसमें ऐसे विषयों का स्थान दिया जाय जो छात्रों को धनोपार्जन में सहायता दें।
२ हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को सम्मिलित किया जाय।
३ मिडिल स्कूल का काम समाप्त करने के पश्चात् परीक्षा मन की व्यवस्था की जाय।
४ शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय।
५ अध्यापकों के वेतन एवं सेवा प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार किया जाय।

प्राथमिक शिक्षा (१९२१-१९३७)

भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस अवधि की सर्वप्रधान घटना प्राथमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति है—जैसा कि नीचे दिये हुए विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

प्राथमिक शिक्षा अधिनियम—१९३७ तक निम्नांकित प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अधिनियम पारित किये गये —

बम्बई—१९२३—सम्पूर्ण प्रान्त के बालकों तथा बालिकाओं के लिये।

असम—१९ ६—ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों और बालिकाओं के लिये।

संयुक्त प्रान्त—१९२ —ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों तथा बालिकाओं के लिये।

बंगाल—१९३०—ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों तथा बालिकाओं के लिये।

हर्टाग समिति के सुझाव—समिति ने प्राथमिक शिक्षा की समस्या का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राथमिक शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। समिति के अनुसार इसके प्रमुख कारण अपव्यय (Wastage) एवं अवरोधन (Stagnation) थे।

अपव्यय एवं अवरोधन—समिति ने कहा कि यद्यपि प्राथमिक विद्यालयों और छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति हो रही है। कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन अत्यधिक है। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से

पूर्व बालक को किसी कक्षा में से हटा लेना अपव्यय है। इस दशा में बालक जो कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ना लिखना सीख लेता है, उसे वह भूल जाता है और निरक्षर हो जाता है। साक्षरता का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब बालक कम से कम प्राथमिक शिक्षा को समाप्त कर लें। अवरोधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए समिति ने लिखा कि एक बच्चे का एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक रहना 'अवरोधन' है।

हर्टाग समिति के सुझाव—प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में समिति ने निम्नांकित सुझाव दिये—

१ प्राथमिक विद्यालयों की सख्यात्मक वृद्धि पर ज़ोर न देकर गुणात्मक उन्नति पर बल दिया जाय।

२ प्राथमिक विद्यालयों की न्यूनतम शिक्षा-अवधि ४ वर्ष होनी चाहिये और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाना चाहिये।

३ विद्यालयों की निम्नतम कक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय और उसमें होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को समाप्त करने के लिये दृढ़ प्रयास किया जाय।

४ विद्यालयों में ग्राम-सुधार का कार्य रखा जाय। उनमें सफाई, स्वास्थ्य आत्मविश्वास सहकारिता आदि गुणों का विकास किया जाय और उन्हें सामान्य चिकित्सा मनोरंजन तथा प्रौढ़ शिक्षा का केन्द्र बनाया जाय।

५ प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में शीघ्रता न की जाय। जिस क्षेत्र में अनिवार्य शिक्षा लागू की जानी है—उसका पहिले अध्ययन किया जाय और वहाँ के लिये एक उपयुक्त योजना तैयार की जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Examine critically the main recommendations of the Hartog Committee regarding the improvements necessary in Primary Education.

2. What were the views of the Hartog Committee on wastage and stagnation in Primary Education? What measures did it suggest to overcome them?

3 Trace the growth of University Education in India from 1921 to 1937

4 Trace the development of Secondary Education in India from 1921 to 1937

१६

शिक्षा की प्रगति

(Progress of Education)
(1937-1947)

विषय-प्रवेश

अपने स्वभावगत दोषों एवं भारतीय कांग्रेस के विरोध के परिणामस्वरूप द्वैध शासन प्रणाली असफल सिद्ध हुई। कांग्रेस ने यह राष्ट्रीय माँग बुलन्द की कि भारत के लिए शीघ्र ही पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर संविधान बनाने के लिये एक गोलमेज सम्मेलन (Round Table Conference) बुलाया जाए। सम्मेलन में जो भी निश्चय किये वे भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से अत्यन्त असन्तोषप्रद थे। परन्तु इन्हीं निर्णयों के आधार पर सन् १९३५ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) बनाया गया और अप्रैल १९३७ में उसे प्रचलित कर दिया गया। इसके अनुसार प्रान्तीय प्रशासन के क्षेत्र में स्वशासन की स्थापना हुई।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-कार्य (१९३७-१९४७)

सन् १९३५ के अधिनियम ने शिक्षा के कार्यों को दो स्पष्ट भागों में विभक्त कर दिया—केन्द्रीय एवं प्रान्तीय। १९४६ में बनने वाली अन्तरिम सरकार (Interim Government) में डा० पं० जवाहरलाल नेहरू वाइसराय की कार्य

कारिणी समिति के उपसभापति नियुक्त हुए। उसी समय से केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना प्रारम्भ किया और विभिन्न समितियों तथा संस्थाओं का निर्माण किया गया जिनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं :—

१ केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education)

इस बोर्ड की स्थापना १९२० में हुई थी। पर आर्थिक सकट के कारण इसके अस्तित्व का अन्त कर दिया गया था। १९३५ में इसको पुनर्जीवित किया गया। उसी समय से यह बोर्ड भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे विविध कार्यों का अति कुशलता से सचालन करता चला आ रहा है। अपने वार्षिक अधिवेशन मे यह बोर्ड शिक्षा की प्रगति पर पुनर्विचार करता है और प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा प्रसार के सम्बन्ध मे परामर्श देता है।

२ केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय (Central Secretariate of Education)

इस सचिवालय का निर्माण १९४५ में हुआ और स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इसको मत्रालय (Ministry) का रूप प्रदान किया गया। केन्द्रीय सरकार के समस्त शिक्षा-कार्यों पर इसी का नियन्त्रण है और यही उनका नियोजन करता है।

३ केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय (Central Bureau of Education)

इस कार्यालय का प्रमुख कार्य—शिक्षा-सम्बन्धी तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र करना और प्रान्तीय सरकारों एव शिक्षा-संस्थाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना है। यह भारतीय शिक्षा का विवरण एव शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करता है।

४ विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग (University Grants Commission)

केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की सिफारिश के अनुसार इस आयोग का निर्माण १९४५ मे किया गया। यह आयोग विभिन्न विश्वविद्यालयों की शिक्षा में सामजस्य रखता है उनके लिये सहायता अनुदान की केन्द्रीय सरकार से सिफारिश करता है और इस प्रकार दिये गये अनुदान की देख भाल रखता है।

एबट एण्ड वुड रिपोर्ट, १९३७ (Abbott & Wood Report 1937)

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की सिफारिश के अनुसार ऐबट व वुड समिति की नियुक्ति की गई। भारत-सरकार के निमंत्रण पर ये दोनों अग्रेज शिक्षा विशेषज्ञ १९३६-३७ की शरद ऋतु मे भारत आये। समय के अभाव

के कारण उन्होंने केवल पंजाब, दिल्ली और संयुक्त प्रान्त का परिभ्रमण करके तत्कालीन शिक्षा की जाँच की और सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट दो भागों में विभाजित है—(क) एस० एच० वुड (S H Wood) द्वारा लिखी गई सामान्य शिक्षा पर रिपोर्ट और (ख) ए० ऐबट (A Abbott) द्वारा लिखी गई व्यावसायिक शिक्षा पर रिपोर्ट। शिक्षा के इन अंगों पर दिये गये सुझावों का विवरण निम्नांकित है —

(क) सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव (Recommendations on General Education)

१ प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा को विद्यार्थियों की स्वाभाविक अभिरुचि तथा क्रियाओं पर आधारित किया जाय न कि पुस्तकों पर।

२ निम्न-माध्यमिक (Lower Secondary) कक्षाओं में अंग्रेज़ी के अध्ययन पर बल दिया जाय।

३ हाई स्कूल तक की शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से दी जाय।

४ रचनात्मक हस्तकार्य की शिक्षा को सभी स्कूलों के पाठ्य-क्रम में स्थान दिया जाय।

(ख) व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव (Recommendations on Vocational Education)

१ प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा का रूप वहाँ के उद्योगों, व्यापारों तथा परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित किया जाय।

२ सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षाओं के साधन तथा लक्ष्य विभिन्न हैं। अतः दोनों प्रकार की शिक्षाओं के लिए पृथक विद्यालयों की व्यवस्था की जाय।

३ कुटीर उद्योग धन्धों में लगे हुए व्यक्तियों को उचित व्यावसायिक एवं व्यापारिक प्रशिक्षण दिया जाय।

४ उद्योग एवं व्यापार और उद्योग एवं शिक्षा में निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिये प्रत्येक प्रान्त में 'व्यावसायिक शिक्षा परामर्शदात्री समिति' का संगठन किया जाय।
५ पूर्ण कालिक व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना की जाय। ये विद्यालय दो प्रकार के होने चाहिए—(१) जूनियर वोकेशनल स्कूल, और (२) सीनियर वोकेशनल स्कूल।
६ जो व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए हैं उनको शिक्षा देने के लिये 'अंशकालिक व्यावसायिक स्कूल' स्थापित किये जायें।
७ जिन औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या कम से कम ५० हजार हो, वहाँ जूनियर और सीनियर टेकनीकल स्कूलों का निर्माण किया जाय।

उच्च शिक्षा (१९३७-१९४७)

इस अवधि में विश्वविद्यालय शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ और विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई।

शिक्षा विस्तार के कारण—१ माध्यमिक शिक्षा का विस्तार।

२ स्त्रियों एवं पिछड़ी जातियों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने की उत्कण्ठा।

३ युद्ध-कालीन समय में व्यावसायी वर्ग को व्यापार में अत्यधिक लाभ और उनके द्वारा उच्च शिक्षा के लिए दी गई उदार धन राशि।

४ युद्ध में शिक्षित व्यक्तियों की माँग में अभिवृद्धि।

नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण—इस काल में ४ विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ—१ सागर विश्वविद्यालय (१९३७) २ उत्कल विश्वविद्यालय (१९४३) सागर विश्वविद्यालय (१९४६), तथा ४ राजपूताना विश्वविद्यालय (१९४७)।

माध्यमिक शिक्षा (१९३७-१९४७)

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई परन्तु वह पूर्व कालों की अपेक्षाकृत मन्द था।

शिक्षा की मन्द प्रगति के कारण—१ इस काल में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति में शैथिल्य रहा। इसकी प्रतिक्रिया माध्यमिक शिक्षा पर होनी

स्वाभाविक थी। प्राथमिक विद्यालयों के छात्र हा माध्यमिक स्कूल म प्रविष्ट होते थे।

२ विश्व-युद्ध के कारण जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गई थी। इस मँहगाई का सबसे बुरा प्रभाव मध्य वर्ग के व्यक्तियों पर पड़ा था। उनके पास धन का अभाव था। अत उनके लिये इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था कि व अपने बच्चों को विद्यालय जाने से रोक दें।

३ शिक्षकों को मँहगाई देने के लिये शुल्क म वृद्धि की गई। साथ ही पुस्तकों आदि का भी मूल्य बढ़ गया। ऐसी दशा म शिक्षा इतनी मँहगी हो गई कि आय के सामान्य साधन वाले व्यक्तियों क बच्चों को शिक्षा स लाभ उठाना कठिन हो गया।

माध्यमिक शिक्षा की अन्य विशेषताए—इस अवधि म प्राय सभी माध्यमिक विद्यालयों म शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ हो गईं। पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन किया गया और व्यावसायिक सुधार की जाने लगा। प्रान्तीय सरकारों ने टेक्निकल और कृषि-हाई स्कूल खोले। वाणिज्य की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या म वृद्धि की गई। स्त्रियाँ अध्यापन-कार्य की ओर आकृष्ट हुईं।

प्राथमिक शिक्षा (१९३७-१९४७)

इस अवधि में काग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिये पूर्ण प्रयास किया। उन्होंने बिहार बम्बई मध्य प्रदेश पंजाब मद्रास उड़ीसा उत्तर प्रदेश आसाम और सिन्ध में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया।

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये उन्होंने अन्य साधनों का भी प्रयोग किया। उन्होंने उन ग्रामों म स्कूल खोले जहाँ प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। स्थानीय संस्थाओं को अतिरिक्त सहायता-अनुदान दिया जिससे व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार म होने वाले व्यय का भार वहन कर सकें। जिन स्थानों में माँग थी वहाँ बालिका विद्यालय निर्मित किये। प्राथमिक स्कूलों में अधिक शिक्षकों की नियुक्ति की जिससे शिक्षण-कार्य दक्षतापूर्वक सम्पन्न किया जा सके।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Summarize the views expressed by Messrs Abbott and Wood on the development of Vocational Education in this country

2. Give a brief account of the educational activities of the Central Government from 1937 to 1947

3 Describe the progres of Primary Secondary and University Education from 1917 to 1947

१७

बेसिक शिक्षा

(Basic Education)

वर्धा शिक्षा-योजना

[Wardha Scheme of Education]

विषय प्रवेश

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में 'बेसिक शिक्षा' का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। अविनाशलिंगम् के अनुसार 'बेसिक शिक्षा' महात्मा गांधी द्वारा दिया गया अन्तिम और सबसे अधिक मूल्यवान उपहार है।" ("The last and the most precious gift.") देश को स्वतन्त्रता दिलवाने तथा एक नवीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करने के प्रयास में महात्मा गांधी ने शिक्षा के महत्व को भली प्रकार समझ लिया था।

महात्मा गांधी के शिक्षा-विषयक विचार—तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों को देखकर महात्मा गांधी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उससे देश तथा उसके निवासियों का कल्याण होना असम्भव है। अतः उन्होंने हरिजन में उस शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रकाशन करना प्रारम्भ किया जो

भारत के लिये उपयुक्त हो सकती था। ३१ जुलाई १९३७ के हरिजन में उन्होंने अपने शिक्षा विषयक विचारों को अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया —

'राष्ट्र के रूप में हम शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्य-क्रम धन पर आधारित किया तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्वों को इस पीढ़ी में थोड़े समय में निर्वाह करने की आशा नहीं कर सकते हैं। अतः मैंने अपनी रचनात्मक योग्यता की ख्याति को संकट में डालकर यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा आत्म निर्भर होनी चाहिये। शिक्षा से मेरा अर्थ है—बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आदि। यह तो अनेकों साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है उसी समय से उसे उत्पादन करने योग्य बनाकर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इस प्रकार यदि राज्य विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं को लेने का उत्तरदायित्व ले ले तो प्रत्येक विद्यालय आत्म निर्भर बनाया जा सकता है।'

बेसिक शिक्षा का जन्म—गांधी जी के शिक्षा-विषयक विचारों ने देश में हलचल मचा दी। उस समय महात्मा जी वर्धा में थे। वहाँ २२ और २३ अक्टूबर १९३७ को मारवाड़ी हाईस्कूल की रजत जयन्ती का समारोह होने वाला था। इस अवसर पर भारत के विभिन्न भागों से शिक्षा विशेषज्ञों, राष्ट्रीय नेताओं एवं समाज-सुधारकों को आमंत्रित किया गया और 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन' जिसे 'वर्धा शिक्षा-सम्मेलन' भी कहते हैं, का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में गांधी जी ने शिक्षा विचारकों के समक्ष अपने शिक्षा सम्बन्धी विचार व्यक्त किये।

ज़ाकिर हुसैन समिति—सम्मेलन ने जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली के आचार्य डा० ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इसे ज़ाकिर हुसैन समिति के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति का उद्देश्य—वर्धा शिक्षा सम्मेलन में व्यक्त किए गए गांधी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अनुसार एक विस्तृत पाठ्य-क्रम तैयार करना था। इस समिति ने दिसम्बर १९३७ और अप्रैल १९३८ में दो रिपोर्ट प्रस्तुत कीं। प्रथम रिपोर्ट में बेसिक शिक्षा-योजना के आधारभूत सिद्धान्तों, उद्देश्यों, शिक्षकों तथा उनके प्रशिक्षण, निरीक्षण, संगठन, प्रशासन एवं परीक्षण और कताई बुनाई के विस्तृत पाठ्य क्रम इत्यादि का विशद वर्णन किया।

द्वितीय रिपोर्ट में समस्त विषयों के पाठ्य क्रम एवं उनकी आधारभूत हस्त तथा उत्पादक कार्य से सम्बन्धित करने के उपायों पर अपना मत प्रकट किया।

बेसिक शिक्षा योजना की रूप रेखा—१ यह शिक्षा ६ से १४ वर्ष तक की आयु के बालक और बालिकाओं के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य है।

२ शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा है।

सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है।

४ चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि यह बच्चों को उत्तम शिल्पी बना देता है और जो वस्तुएँ वे बनाते हैं उनको बेच कर विद्यालय के व्यय के कुछ भाग की पूर्ति की जा सकती है।

पाठ्य क्रम—बेसिक शिक्षा के पाठ्य क्रम में निम्नलिखित विषय होते हैं—

१ आधारभूत शिल्प—अधोलिखित आधारभूत शिल्पों में से कोई एक चुना जाता है —(क) कृषि (ख) कताई बुनाई (ग) लकड़ी का काम (घ) मिट्टी का काम (ङ) चमड़े का काम (च) मछली पालना (छ) फल शाक एवं उद्यान कर्म (ज) बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान (झ) कोई अन्य शिल्प, जिसके लिए स्थानीय तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों।

२ मातृ भाषा।

३ गणित।

४ सामाजिक अध्ययन—इतिहास भूगोल एवं नागरिक शास्त्र।

५ सामान्य विज्ञान—(अ) प्रकृति अध्ययन (ब) वनस्पति शास्त्र; (स) प्राणि-शास्त्र, (द) रसायन-शास्त्र (र) स्वास्थ्य विज्ञान (ल) नक्षत्रों का ज्ञान (व) महान् वैज्ञानिकों एवं अन्वेषकों की कहानियाँ।

६ कला—रेखा चित्रण एवं संगीत आदि।

७ हिन्दी (जहाँ मातृ भाषा नहीं है)।

८ शारीरिक शिक्षा (व्यायाम एवं खेल-कूद)।

अध्यापन विधि—बेसिक शिक्षा में अध्यापन-विधि सामान्य शिक्षण-पद्धति से सर्वथा भिन्न है। बेसिक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन का कार्य क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षण विधि इतनी व्यावहारिक होती है कि बच्चे विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में अर्जित करते हैं। मात्र न … समय में ही उपलब्ध हो जाता है।

विस्तार रूप में शिक्षा अग्रलिखित प्रकार से प्रदान की जाती है—प्रथम कक्षा में बच्चों को अपनी मातृभाषा का मौखिक ज्ञान कराया जाता है। तदनन्तर बच्चे पढ़ना और उसके बाद लिखना सीखते हैं। जिस समय वे लिखना सीखते हैं उस समय किसी आधारभूत शिल्प की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों बच्चे आगे की कक्षाओं में पहुँचते हैं, वे विभिन्न विषयों के ज्ञान का अर्जन करते हैं। परन्तु उनको इन विषयों की शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्रदान न की जाकर किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जाती है। पाठ्यक्रम के समस्त विषय परस्पर-सम्बन्धित ज्ञान क्षेत्रों के रूप में बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ८ वर्ष के अन्त में बच्चों को सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उन्हें आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि उसकी सहायता से वे धनोपार्जन करने लगते हैं।

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त (Basic Principles of Basic Education)

(१) जनसाधारण की शिक्षा—गांधी जी का कथन था कि "जनसाधारण की अशिक्षा भारत का पाप और कलङ्क है अतः उसका अन्त करना आवश्यक है। जब भारत में जनतन्त्र प्रणाली की स्थापना की गई तब गांधी जी के शब्दों की गरिमा का अनुभव किया गया। यह आवश्यक समझा गया कि देश का प्रत्येक सदस्य अनिवार्य रूप से शिक्षित हो। इस कार्य के लिये बेसिक शिक्षा को उपयुक्त समझा गया। अतः यह शिक्षा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए रखी गई है और जनसाधारण को इसके द्वारा अज्ञानता के कूप से बाहर निकाला जायगा।

(२) अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा—गांधी जी का भारत के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा में दृढ़ विश्वास था। पराधीन भारत अपने बच्चों के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करने में असफल रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ६ से १४ वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का निश्चय किया गया।

(३) हस्त शिल्प की शिक्षा—भारत के लिए नवीन शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए गांधी जी ने ३१ जुलाई १९३७ के हरिजन में लिखा था—साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्त शिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है उसी समय से उत्पादन करने योग्य बनाकर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। गांधी जी के इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर बेसिक शिक्षा प्रणाली में हस्तशिल्प का

प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है और समस्त विषयों की शिक्षा उसी के माध्यम से दी जाती है।

(४) स्वावलम्बी शिक्षा—नवीन शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए गांधी जी का कथन था कि— शिक्षा को स्वावलम्बी होना चाहिए अर्थात् शिक्षा से पूंजी के अतिरिक्त वह सब धन मिल जाना चाहिए जो उसे प्राप्त करने में व्यय किया गया है। अतः बेसिक शिक्षा में इस स्वावलम्बी पहलू के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है।

(५) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा— बुनियादी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। इतिहास हमें बताता है कि यदि किसी देश की संस्कृति को मिटाना हो तो उसका साहित्य मिटा देना चाहिए। इसी सिद्धान्त पर विदेशियों ने हमारे देश में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा। पर बुनियादी शिक्षा में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा स्वाभाविक रूप तथा स्वतन्त्रता से दी जा सकती है।

(६) शिक्षा में शारीरिक श्रम—बेसिक शिक्षा में शारीरिक श्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इससे तीन लाभ होंगे—प्रथम इससे बच्चों की शिक्षा का व्यय निकल आयेगा। द्वितीय इनसे उन्हें एक व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त होगी। तृतीय शारीरिक श्रम में बच्चों को आत्म विश्वासी बनाया जा सकेगा और वे शारीरिक श्रम से घृणा नहीं करेंगे।

(७) सामाजिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा का अन्तिम आधारभूत सिद्धान्त है— प्रत्येक प्राणी में सहानुभूति एवं प्रेम उपस्थित करना, धनी और निर्धन व्यक्तियों का भेद समाप्त करना और उच्च तथा निम्न वर्गों में समता लाना। इस प्रकार बेसिक शिक्षा के द्वारा एक ऐसे नवीन समाज की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है जो शोषणविहीन हो। जिसका आधार न्याय हो और जिसका मूलमन्त्र अहिंसा तथा सत्य हो।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य

(१) नागरिकता के गुणों का विकास—प्रजातन्त्र-शासन-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है। राज्य के प्रति उसके कर्तव्य बढ़ जाते हैं। साथ ही उसे अनेकों अधिकार भी प्राप्त हैं। वह इन कर्तव्यों तथा अधिकारों का निर्वाह तभी कर सकता है जब वह इनके प्रति सजग हो। इसके लिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उसमें नागरिकता के गुणों का विकास कर। बेसिक शिक्षा में इस बात की ओर पूरा पूरा ध्यान दिया गया है।

(२) नैतिक विकास—आधुनिक समाज का उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता जा रहा है। समाज की इस पतनोन्मुख दशा को देखकर गांधी जी ने शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य—व्यक्ति में नैतिकता को समाविष्ट करना बताया। बेसिक शिक्षा में नैतिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है।

(३) सांस्कृतिक उद्देश्य—प्रचलित शिक्षा प्रणाली का एक मुख्य दोष यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति का पाठ न पढ़ाया जाकर बच्चों को पाश्चात्य रंग में रँगा जाता है। वे अपनी परम्परागत संस्कृति से दूर हो जाते हैं। अतः गांधी जी ने अक्षर ज्ञान से अधिक महत्व शिक्षा के सांस्कृतिक पहलू को दिया। इसीलिये बेसिक शिक्षा में भारतीय शिल्पों का स्थान दिया गया है और शिक्षा को सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाया गया है।

(४) त्रिविधि विकास—प्रचलित शिक्षा प्रणाली में केवल बुद्धि के विकास पर बल दिया जाता है और शारीरिक तथा आत्मिक विकास की पूर्णतः उपेक्षा की जाती है। अतः इस प्रकार व्यक्ति का केवल एकांगी विकास होता है पूर्ण विकास नहीं। बेसिक शिक्षा में मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास की ओर पूरा ध्यान दिया गया है।

(५) आर्थिक उद्देश्य—बेसिक शिक्षा में आर्थिक उद्देश्य के दो अभिप्राय हैं। प्रथम बच्चों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से विद्यालय के व्यय की आंशिक पूर्ति करना। द्वितीय बेसिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् बालकों का वह होकर किसी उद्योग के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

(६) सर्वोदय समाज—आज का भौतिकवादी समाज स्वार्थ सिद्धि की नीति की नींव पर खड़ा है। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित है—धनपति और धनहीन। दोनों ही वर्ग विकृत हैं। एक की विकृति का कारण धन की अधिकता है और दूसरे की विकृति का कारण धन का अभाव। बेसिक शिक्षा का उद्देश्य—इस विकृत समाज के स्थान पर सर्वोदय समाज की स्थापना करना है। सर्वोदय समाज में स्वार्थ का स्थान परमार्थ, संग्रह की वृत्ति का स्थान त्याग की वृत्ति और शोषण का स्थान सेवा लेगी। इस समाज में श्रम की महत्ता होगी, पैसे की नहीं और सहयोग तथा स्नेह की भावनाएं होंगी ईर्ष्या और द्वेष की नहीं। इस समाज के निर्माण के लिए बेसिक शिक्षा बच्चों में त्याग, आत्मविश्वास, समाज-सेवा, प्रेम आदि की उच्च भावनाओं को कूट-कूट कर भरने का प्रयत्न करती है।

बेसिक शिक्षा की विशेषतायें

(१) मनोवैज्ञानिक आधार—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का आधार मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें पाठ्य विषयों की अपेक्षा बालक को प्रधानता दी जाती

है। बालक का प्राकृतिक विकास क्रिया के द्वारा ही हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बेसिक शिक्षा में हस्तशिल्प को प्रमुखता दी गई है।

(२) सामाजिक आधार—बेसिक शिक्षा प्रणाली का आधार सामाजिक है क्योंकि इसमें बालक में सामाजिक गुणों का विकास करने का प्रयास किया जाता है। हस्तशिल्प द्वारा उनमें आत्म-संयम, आत्म-शासन, सहयोग, सहिष्णुता आदि गुणों का विकास किया जाता है।

(३) आर्थिक आधार—बेसिक शिक्षा प्रणाली का आधार आर्थिक है। इसके पक्ष में दो तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रथम, बेसिक विद्यालयों में छात्रों को किसी शिल्प की शिक्षा दी जाती है। उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं को बेचकर विद्यालय और शिक्षा का व्यय यदि पूर्ण रूप से नहीं तो आंशिक रूप से अवश्य निकल आता है। द्वितीय, बालक हस्तशिल्प को सीखकर और उसमें प्रवीणता प्राप्त कर स्वतन्त्र रूप से जीविकोपार्जन कर सकते हैं।

(४) हस्त-श्रम का महत्व—बेसिक शिक्षा में बालक हाथ से काम करने वाले व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और हस्तश्रम का महत्व समझते हैं। हमारे देश में मानसिक कार्य श्रेष्ठ और हाथ का काम निकृष्ट समझा जाता है। इस प्रकार के विचार और संस्कार आजकल के नये प्रजातन्त्रवादी वातावरण में नहीं चल सकते हैं और प्रजातन्त्रवादी संस्थाओं की वृद्धि और विकास में बाधा डालते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर बेसिक शिक्षा प्रणाली में हाथ के काम को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

(५) विद्यालय, गृह और समाज के जीवन में सामंजस्य—वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके द्वारा विद्यालय, गृह और समाज के जीवन में सामंजस्य नहीं उपस्थित किया जाता है। बेसिक शिक्षा प्रणाली इस दोष का निवारण करती है। हस्तशिल्प की शिक्षा प्राप्त करके बालक के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होती है और वह अपने को विद्यालय, गृह और समाज में प्रायः समान वातावरण में पाता है।

(६) सहसम्बद्ध शिक्षण—बेसिक शिक्षा में अपनायी गई शिक्षण विधि विशेष रूप से महत्वपूर्ण तथा आधुनिकतम है। इस विधि में बालक की समस्त शिक्षा का माध्यम कोई हस्तशिल्प अथवा क्रिया है। यदि कताई-बुनाई, बढ़ई-गिरी अथवा चमड़े के काम आदि में से बालक एक काम को चुनकर करता है तो उसे उसी काम के माध्यम से सब विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

(७) ज्ञान एक अभिन्न अखण्ड समष्टि—H R Bhatia के अनुसार बेसिक शिक्षा में ज्ञान एक अभिन्न अखण्ड समष्टि है और उसका अनेक असम्बद्ध और कई बार परस्पर अभिवर्जित विषयों में विभाजन निषिद्ध है। प्रचलित शिक्षा प्रणाली के अनुसार बालकों को जिन विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है वे प्राय एक-दूसरे से असम्बद्ध होते हैं। फलत बालक जिस ज्ञान का उपार्जन करता है वह एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में न होकर विभिन्न तथ्यों तथा नियमों का सकलन मात्र होता है। बेसिक शिक्षा प्रणाली में सभी विषयों का ज्ञान किसी उपयोगी हस्तशिल्प के द्वारा कराया जाता है।

(८) बालक-प्रधान शिक्षा—बेसिक शिक्षा बालक प्रधान है। उसका एक मात्र विषय बालक है। शिक्षा बालक को प्राप्त करनी है। अतएव उसे सफल और सार्थक बनाने के लिये यह प्रयास किया जाता है कि विद्यालय के प्रत्येक कार्य तथा प्रयास में बालक पूर्ण रुचि से और उसमें खुशी से भाग ले। H R Bhatia के शब्दों में बेसिक प्रणाली में बालक को शिक्षा का ग्राहक समझा जाता है जिसकी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाना और समझना जिनकी व्यवस्था करना और जिनको पूर्ण करना आवश्यक होता है।

(९) क्रिया-प्रधान शिक्षा—बेसिक शिक्षा क्रिया-प्रधान है। इसमें सम्पूर्ण ज्ञान का आधार अनुभव माना गया है। इस अनुभव को प्राप्त करने का माध्यम कोई हस्तशिल्प होता है। बालक इन केन्द्रभूत हस्तशिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहते हुए और भी सम्बन्धित अनुभवों को प्राप्त करता है। हस्तशिल्प में लगे हुए बालक बौद्धिक ज्ञान अथवा मानसिक अनुभव भी प्राप्त करते हैं। शिक्षा में यह सिद्धान्त करो और सीखो (Do and Learn) कहा जाता है।

(१०) शिक्षा का माध्यम आधारभूत शिल्प—बेसिक शिक्षा का माध्यम कोई आधारभूत शिल्प होता है। यही शिल्प सभी विषयों के अध्ययन का माध्यम होता है। आधुनिक युग के सभी शिक्षा विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि बालकों को किसी उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षा प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की शिक्षा जीवन से वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करती है।

(११) स्वतन्त्रता-प्रधान प्रणाली—बेसिक शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों तथा छात्रों को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता रहती है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि उसमें आत्म अभिव्यक्ति तथा रचनात्मक कार्य सम्भव नहीं है क्योंकि उसमें केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के संकुचित लक्ष्य को रखते हुए निश्चित अवधि में तथ्यों पर अधिकार कराने पर बल दिया जाता है।

बेसिक स्कूलों में छात्रों को काम करने का कार्य में रुचि रहता था और काम करके लाभप्रद ज्ञान के अर्जन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है।

बेसिक शिक्षा में अध्यापकों को भी पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। उन्हें न तो कोई अटल पाठ्य-क्रम ही चलाना पड़ता है और न कोई नियमबद्ध पाठ ही पढ़ाने पड़ते हैं। उन्हें न तो पुस्तकों को समाप्त करने की चिन्ता होती है और न उन्हें परीक्षाओं का भय होता है। वे अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग तथा परीक्षण कर सकते हैं और ऐसी विधियों एवं उपायों पर विचार कर सकते हैं तथा उन्हें काम में ला सकते हैं जो छात्रों के मस्तिष्क तथा योग्यता के विकास के लिए आवश्यक हों और जिनसे स्कूल की आवश्यक माँगें पूर्ण हो सकें।

बेसिक शिक्षा के दोष

१ यह योजना विशेष रूप से ग्रामों के लिये है न कि नगरों के लिये।

२ इस योजना में उत्पादिता सिद्धान्त (Principle of Productivity) की अति है। अतः इसका अनुसरण करने से बेसिक विद्यालय कुटीर उद्योगों में परिणत हो जायेंगे।

३ उत्पादिता सिद्धान्त से अध्यापकों का नैतिक पतन हो जायगा क्योंकि वे विद्यालयों को फैक्ट्रियाँ एवं विद्यार्थियों को धनोपार्जन करने के साधन समझने लगेंगे।

४ यह युग वायुयानों एवं बमों का है और विज्ञानों की अति तीव्र गति से प्रगति हो रही है। ऐसे युग में कताई और बुनाई के समान मध्यकालीन उद्योगों के प्रयोग का उपदेश करके भारत की औद्योगिक प्रगति अवरुद्ध हो जायगी।

५ आधारभूत शिल्प द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा दी जानी एक असम्भव बात है।

६ आधारभूत शिल्प की सहायता से न तो बच्चों का सर्वतोमुखी विकास करना सम्भव होगा और न उन्हें सामान्य शिक्षा ही दी जा सकेगी क्योंकि वर्धा शिक्षा योजना में व्यावसायिक तथा बौद्धिक शिक्षा में उचित संतुलन का अभाव है।

७ तकली द्वारा कताई पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है। क्योंकि इस काम द्वारा अधिक उत्पादन होना सम्भव नहीं है अतः इसमें विद्यार्थियों का समय नष्ट होगा और उनके लिए शिक्षा मँहगी पड़ेगी।

८ वर्धा शिक्षा योजना में भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है पर धर्म को शिक्षा में कोई स्थान नहीं दिया गया है।

९ Jhingran and Sharma के शब्दों में— यह योजना काल्पनिक है एक अनावश्यक विश्वास है एक मन सृष्टि है और वास्तविक व्यवहार से परे है। इस योजना में एक सुस्थिर शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसे गाँधी जी की महानता से प्रभावित व्यक्तियों ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है।'

उपसंहार

बेसिक शिक्षा योजना के उपयुक्त गुण-दोषों के विवेचन के आधार पर हमे यह स्वीकार करने मे संकोच नही करना चाहिये कि भारत जैसे निर्धन देश के लिये वर्धा शिक्षा योजना अत्यधिक कल्याणकारी सिद्ध होगी। वस्तुत हमारे देश के लिय इससे अधिक उत्तम शिक्षा-योजना की कल्पना करना ही असम्भव है। इस योजना की महानतम देन है— उत्पादक क्रिया का सिद्धान्त। यह योजना गाधी जी की दूरदर्शिता का प्रतीक और उनकी देश सेवा तथा तपस्या का अनुपम फल है। हम दृढ विश्वास है कि जिस प्रकार उनकी राज नीतिक योजनाओ मे इस देश की राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने के लिये अद्वितीय शक्ति विद्यमान रहती थी उसी प्रकार उनकी वर्धा शिक्षा योजना में भारत की समस्त शिक्षा समस्याओ को हल करने की पूर्ण क्षमता है।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Describe in detail the fundamental features of the Basic Education explaining the implications of a basic craft and self-supporting aspect of the education

2 Write a reasoned criticism of the Wardha Scheme

3 The present system of education does not meet the requirements of the country in any shape or form In what respects does the Wardha Scheme meet the requirements of this country ?

३८

सार्जेन्ट-योजना, १९४४

(Sargent Scheme, 1944)

विषय प्रवेश

द्वितीय विश्व युद्ध के दुःखान्त अभिनय का अन्त होने पर भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के युद्धोत्तर विकास की योजनाओं व निर्माण-कार्य की ओर कारगर कदम उठाये गए। इन योजनाओं में शिक्षा को भी स्थान मिला। अतः 'वायसराय की प्रबन्धकारिणी कौंसिल' की पुनर्निर्माण समिति ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा सलाहकार सर जॉन सार्जेन्ट (Sir John Sargent) को भारत में युद्धोत्तर शिक्षा विकास पर एक स्मृति-पत्र (Memorandum) तैयार करने का आदेश दिया। सार्जेन्ट ने १९४४ में अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत की और बोर्ड द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान कर दी गई। इस रिपोर्ट को 'सार्जेन्ट योजना' के नाम से पुकारा जाता है।

सार्जेन्ट योजना की सिफारिशें

(Recommendations of Sargent Scheme)

सार्जेन्ट योजना में भारत की सम्पूर्ण शिक्षा को १२ अध्यायों में विभाजित किया गया है। हम इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं —

१ पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा— से ६ वर्ष तक की अवस्था वाले शिशुओं के लिये शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित की जाय। ये संस्थायें समस्त शिक्षण साधनों और सुयोग्य शिक्षकों से सम्पन्न हों। शिक्षा नि शुल्क हो।

२ प्राथमिक अथवा बेसिक शिक्षा—६ से १४ वर्ष तक की अवस्था के समस्त बच्चों के लिये सार्वभौमिक नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक या बेसिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। अपव्यय को रोकने के लिये शिक्षा को अनिवार्य बनाना आवश्यक है और अनिवार्यता को कार्यान्वित करने के लिये 'उपस्थिति निरीक्षक पदाधिकारी' नियुक्त किये जायें। योजना में बेसिक शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों का समर्थन परन्तु शिक्षा को आत्म निर्भर बनाने का विरोध किया गया। कहा गया कि बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का विक्रय कठिन है। बेसिक शिक्षा के काल को दो भागों में विभक्त किया गया—(क) जूनियर बेसिक (६ ११) और (ख) सीनियर बेसिक (११ १४)।

३ हाई-स्कूल शिक्षा—यह शिक्षा ११ से १७ वर्ष तक की आयु के छात्रों के लिये होगी। हाई स्कूल दो मुख्य प्रकार के होंगे—साहित्यिक और प्राविधिक। दोनों प्रकार के हाई स्कूलों में कुछ विषयों की सामान्य रूप से शिक्षा दी जायगी यथा—(१) मातृभाषा (२) अंग्रेजी (३) आधुनिक भाषायें (४) भारत एवं विश्व का इतिहास (५) भारत एवं विश्व का भूगोल (६) गणित (७) विज्ञान (८) अर्थशास्त्र (९) कृषि (१०) कला (११) शारीरिक शिक्षा। इन विषयों के अतिरिक्त साहित्यिक हाई स्कूलों में प्राचीन भाषाओं और नागरिक शास्त्र की भी शिक्षा दी जायगी। प्राविधिक हाई स्कूलों में जिन अन्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था होगी वे हैं—काष्ठ-कला धातु कला साधारण इंजीनियरिंग ड्राइङ्ग वाणिज्य सम्बन्धी विषय बुक-कीपिंग शार्ट हैण्ड टाइप राइटिंग एकाउन्टैंसी व्यापार पद्धति इत्यादि। बालिकाओं को गृह विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा होगी।

४ विश्वविद्यालय शिक्षा—विश्वविद्यालय का बी० ए० की उपाधि पाने के लिए न्यूनतम अवधि ३ वर्ष होनी चाहिये। अतः सार्जेंट योजना में यह सिफारिश की गई कि इन्टरमीडिएट कक्षा को भंग कर दिया जाय और उसकी १२ वीं कक्षा को विश्वविद्यालय में तथा ११ वीं कक्षा को हाई-स्कूल के अन्तर्गत कर लिया जाय। विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के नियमों में कठोरता कर दी जाय।

५ प्राविधिक वाणिज्य एवं कला शिक्षा—इस प्रकार की शिक्षा के लिए पूर्णकालिक तथा अल्पकालिक विद्यालय स्थापित किये जायें। भारतीय कलाओं

तथा उद्योगों के लिए निम्नलिखित चार प्रकार के कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है—

(क) उच्च श्रेणी—इस श्रेणी में भविष्य के मुख्य कार्याधिकारी तथा अनुसंधानकर्त्ता आते हैं। इस श्रेणी के लिए शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थी टैकनिकल हाई स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरान्त किसी विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिक (Technological) विभाग या किसी अन्य पूर्णकालिक टैकनिकल संस्था में प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण करेंगे।

(ख) निम्न श्रेणी—इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न कार्याधिकारी फोरमैन आदि आते हैं। इस श्रेणी के व्यक्तियों की शिक्षा देना टैकनिकल हाईस्कूल का कार्य होगा।

(ग) कुशल शिल्पकार—कुशल शिल्पकारों में उन छात्रों की भर्ती किया जायगा जो टैकनिकल हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण होंगे।

(घ) अर्द्ध कुशल एवं अकुशल कारीगर—इन कारीगरों में सीनियर बेसिक मिडिल स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने वाले वे छात्र भर्ती हो सकेंगे, जिन्होंने किसी शिल्प का अध्ययन किया होगा।

६ प्रौढ़ शिक्षा—प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। बालकों युवतियों, पुरुषों और स्त्रियों के लिए पृथक विद्यालयों की व्यवस्था की जाय। प्रौढ़-शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चित्र मैजिक लैन्टर्न सिनेमा ग्रामोफोन रेडियो पुस्तकालयों एवं वाचनालयों का आयोजन किया जाय।

७ अध्यापकों का प्रशिक्षण—सार्जेन्ट-योजना को सफल बनाने के लिए अध्यापकों की एक बहुत बड़ी संख्या आवश्यक है। अत बड़े पैमाने पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना आवश्यक होगा। इसके अतिरिक्त पूर्व प्राथमिक शिक्षकों बेसिक शिक्षकों तथा हाई स्कूल शिक्षकों की दीक्षा के लिये पृथक प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण करना अनिवार्य है।

८ छात्रों का स्वास्थ्य—६, ११ एवं १४ वर्ष की आयु में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का निरीक्षण डाक्टरों के द्वारा किया जाय। छात्रों का स्वास्थ्य अभिलेख (Medical Record) रखा जाय। अस्वस्थ छात्रों की निःशुल्क चिकित्सा की जाय। स्कूलों में साधारण रोगों तथा शारीरिक दोषों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाय। शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाय।

९ विकलांग छात्रों की शिक्षा—विकलांग (Handicapped) छात्रों के लिए विशिष्ट स्कूलों की स्थापना की जाय और वहाँ ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे कोई व्यवसाय करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकें।

१० विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियाएं—प्रत्येक विद्यालय में छात्रों की आयु के अनुसार अप्रलिखित क्रियाओं में से जो उचित हों उनका चयन किया जाय—बागवानी लोकनृत्य शारीरिक व्यायाम जूनियर रेड-क्रास ग्रुप अभिनय बालचर वाद विवाद अन्तर्विद्यालय प्रतियोगिताएँ स्काउटिंग युवक आन्दोलन।

११ सेवा योजनालय—सेवा योजनालयों की स्थापना की जाय—जो सीनियर बेसिक जूनियर टेकनिकल और हाई स्कूलों के छात्रों को व्यवसाय चुनने में सहायता दें। विश्वविद्यालयों के अपने स्वयं के सेवा-योजनालय होने चाहिए।

१२ शिक्षा का प्रशासन—शिक्षा प्रशासन की व्यवस्था के लिए मुख्य इकाई प्रान्त हो। परन्तु विश्वविद्यालय तथा उच्च टेकनिकल शिक्षा का प्रबन्ध तथा समन्वय अखिल भारतीय पैमाने पर किया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना के लिये केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के बीच अधिक निकट सहयोग होना चाहिए।

सार्जेन्ट-योजना का मूल्यांकन
(Estimate of Sargent Scheme)

१८५४ के वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् अनेक समितियों एवं आयोगों की नियुक्ति की गई थी और भारतीय शिक्षा के विकास तथा विस्तार के लिये बहुत से सरकारी प्रस्ताव प्रकाशित किये जा चुके थे परन्तु न तो उनका दृष्टिकोण ही व्यापक था और न उनके विचार ही स्पष्ट थे। इनके विपरीत सार्जेन्ट शिक्षा-योजना एक ऐसा व्यापक प्रयास था जिसमें शिक्षा के सभी पक्षों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके उनको समुन्नत करने के लिये बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये गये। परन्तु कुछ शिक्षाविदों ने इस योजना पर भारी आरोप लगाये हैं और इसको काल्पनिक अराष्ट्रीय विलम्बकारी और खर्चीली कहकर भारत ऐसे निर्धन देश के लिये अनुपयुक्त ठहराया है। पर वास्तविकता यह है कि योजना निर्माण के समय से लेकर अब तक भारतीय शिक्षा प्रणाली को न तो उस दोषों से मुक्त किया जा सका है जिनका उल्लेख योजना में किया गया है और न उन गुणों से युक्त किया गया है जो योजना में विद्यमान हैं। आज भी हमारी शिक्षा प्रणाली अपने पूर्व रूप में बनी आ रही है। यदि हमने योजना को छिद्रान्वेषणों में करके और आलोचना करने के अपने अभ्यास का परित्याग करके योजना को क्रियान्वित कर दिया होता तो आज भारतीय शिक्षा का रूप कैसा ही कुछ और होता।

UNIVFRSITY QUESTIONS

1 Explain the importance of the Sargent Report and summarize its main recommendations

2 Write a reasoned criticism of the Sargent Plan as Scheme of National Education

१९

अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का सिंहावलोकन

(Review of the British Educational Policy)

विषय प्रवेश

इससे पूर्व कि हम स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विवरण प्रारम्भ करें यह युक्ति-संगत प्रतीत होता है कि हम अंग्रेजी शासन-काल में शिक्षा का सिंहावलोकन कर लें। भारतीय नेताओं एवं शिक्षा विशारदों का मत है कि अंग्रेजों की शिक्षा-नीति तथा अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति भारत के लिये सर्वथा अनुपयुक्त अहितकर एवं अराष्ट्रीय थी। इसके विपरीत भारत के अंग्रेज शासकों का कथन है कि अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारत के लिये एक ऐसा श्रेष्ठ वरदान है जो इस देश के शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ है। इन्हीं दोनों विचारधाराओं का हमें अध्ययन करना है।

अंग्रेजी शिक्षा के लाभ

(१) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क— अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों का पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क स्थापित हो गया। यह सम्पर्क ऐसे समय में स्थापित हुआ जब भारतीय अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को विस्मृत करके पतनोन्मुख हो रहे थे।

(२) भारतीय समाज का आधुनीकरण—जिस समय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई उस समय यहाँ के समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इसमें अनेकों हानिप्रद कुरीतियाँ प्रचलित थी और उनसे देश का अध पतन हो रहा था। अंग्रेजी की शिक्षा से प्रभावित होकर भारतीय विचारकों ने इन सामाजिक दूषणों के विरुद्ध आन्दोलन किया और भारतीय समाज को एक नवीन रूप प्रदान किया।

(३) साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति—भारत में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति करने का श्रेय अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त है। अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन किया और संस्कृत की पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस प्रकार उन्होंने भारत के लुप्त गौरव का प्रामाणिक परिचय हमारे समक्ष उपस्थित किया। अपने साहित्य तथा संस्कृति की जिन बातों को हम विस्मृत कर चुके थे उनको हमने अंग्रेजी भाषा के द्वारा समझा।

(४) वैज्ञानिक उन्नति—ब्रिटिश शासन की स्थापना के उपरान्त अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में नवजागरण प्रारम्भ हुआ तब राजा राममोहन राय आदि नेताओं ने यह अनुभव किया कि पश्चिम की अभूतपूर्व प्रगति का एक प्रमुख कारण—विज्ञान की उन्नति है। अतः उन्होंने अंग्रेजी के द्वारा भारतीयों को वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा दिये जाने की माँग की। इस शिक्षा की सुविधा मिल जाने पर भारतीयों ने विज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्रगति की।

(५) ललित कलाओं का पुनरुत्थान—भारत की ललित कलाओं के पुनरुत्थान का श्रेय अंग्रेजों को प्राप्त है। फर्ग्युसन ने अपने चिरस्मरणीय ग्रन्थ में भारत की वास्तुकला के भव्य स्मारकों का विशद वर्णन करके ललित कलाओं के प्रति भारतीयों की रुचि को पुनः जाग्रत किया।

(६) लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं का विकास—अंग्रेजी शिक्षा के फल स्वरूप ही भारत में लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं की वृद्धि एवं विकास हुआ। उदाहरणार्थ—अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके ही भारतीयों के हृदय में लोकतन्त्रवाद की विचारधाराएँ दृढ़ होती गईं एवं प्रजातन्त्रवादी संस्थाओं का क्रमशः विकास होता गया।

(७) शिक्षा प्रसार के नवीन साधन—शिक्षा प्रसार के नवीन साधन भी अंग्रेजों की देन है। उन्होंने अपनी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रणालयों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, रेडियो, चलचित्रों आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। स्वतन्त्र भारत ने इनको शिक्षा प्रसार के साधनों में स्थान दिया है और इनकी

सहायता से शिक्षण तथा निरक्षरता के निवारण का कार्य किया जा रहा है।

(८) भारतीय पुनर्जागरण—भारतीय पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण अंग्रेजी की शिक्षा है। स्कूलों एवं कॉलिजों में प्रदान की जाने वाली अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों के विचारों तथा दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन कर दिया। परिणामस्वरूप इस देश में उसी प्रकार की विशाल मानसिक प्रगति हुई जैसी कि यूरोप में पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में पुनर्जागरण के समय में हुई थी।

अंग्रेजी शिक्षा की हानियाँ

(१) अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली—देश के वातावरण के प्रतिकूल—विदेशियों द्वारा आयोजित की जाने के कारण अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली इस देश के वातावरण के प्रतिकूल थी। M R Paranjpe का कथन है कि—'यह एक विदेशी वृक्ष था जो भारत भूमि में उचित प्रकार से पल्लवित नहीं हो सकता था।'

(२) राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश—M R Paranjpe का मत है कि—'अंग्रेजी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश करना और यहाँ के निवासियों को भारतीय होते हुए भी पसन्द, व्यवहार तथा विचार में अंग्रेज बनाना था।'

(३) अंग्रेजी शिक्षा का निकृष्ट ध्येय—अँग्रेजों द्वारा १८३५ में जिस शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया गया, जिसका १८५४ में अनुसरण किया गया और जिस पर १८८२ में बल दिया गया उसका एक मात्र ध्येय अँग्रेजी दफ्तरों के लिए बाबू वर्ग को तैयार करना था।

(४) अंग्रेजी माध्यम के दुष्परिणाम—M R. Paranjpe ने लिखा है कि—'भारतवासियों को अँग्रेजी माध्यम के द्वारा शिक्षा दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उनको अपने साहित्य तथा भाषाओं का समुचित ज्ञान न प्राप्त हो सका। साथ ही भारतीय भाषाओं एवं भारतीय मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया।'

(५) धर्महीनता एवं नैतिक पतन—M R Paranjpe ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि—'अँग्रेजी विद्यालयों में भारतीयों के धर्म की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गई। शिक्षा को पूर्णतया लौकिक बना दिया गया। धार्मिक शिक्षा के अभाव में व्यक्तियों में न केवल धर्महीनता की वृद्धि

हुई अपितु धर्म के अभाव में उनका नैतिक पतन भी होना प्रारम्भ हो गया।"

(६) शिक्षा का मन्द विकास—अंग्रेज़ों पर एक दोषारोपण यह भी किया जाता है कि उन्होंने शिक्षा का प्रसार करने में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। फलतः शिक्षा के विकास की गति अत्यन्त मन्द रही। लगभग १५० वर्षों में अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली द्वारा केवल १५ प्रतिशत भारतीयों को शिक्षित बनाया जा सका।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास में असफलता

(Failure to Develop a National System of Education)

अंग्रेज़ भारत में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण एवं विकास करने में पूर्णतः असफल रहे। इस असफलता के प्रमुख कारणों की ओर हम संक्षेप में संकेत कर रहे हैं —

(१) प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय न करना—अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति का प्रमुख दोष यह था कि वह प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय करने में असफल रही। भारत और इङ्गलैण्ड के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं नैतिक आदर्शों में किसी प्रकार का साम्य नहीं था। एक आध्यात्मिकता में विश्वास करता था तो दूसरा भौतिकवादिता में।

(२) साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण—अंग्रेज़ भारत को अपने साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अङ्ग समझते थे और प्रत्येक सम्भव नीति से इस पर अपना प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने इस बात की कभी कल्पना ही नहीं की कि भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करके सम्मानित पद भी दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में उनके लिए राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के निर्माण की बात सोचना बिल्कुल असम्भव था।

(३) शिक्षा के उद्देश्यों में अस्थिरता—भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ प्रशासकों के विचारों में कभी स्थिरता नहीं रही। उद्देश्यों का रूप समय-समय तथा अवसर के अनुसार सदैव परिवर्तित होता रहा। १८११ के आज्ञापत्र में प्राच्य साहित्य तथा ज्ञान का प्रोत्साहन करना का आरम्भ किया गया। १८५४ के घोषणा पत्र में शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ-साथ अंग्रेज़ी शिक्षा द्वारा एक व्यक्तियों को उत्पन्न करना बताया गया जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें। १९१३ के सरकारी प्रस्ताव में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण निर्धारित किया गया।

(४) **शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियाँ**—यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अंग्रेजों ने भारत में शिक्षा प्रसार की जितनी विधियों का अनुसरण किया वे सभी दोषपूर्ण थीं। निस्यन्दन सिद्धान्त' शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को प्रतिष्ठित करना माध्यमिक स्कूलों एवं कॉलेजों में अंग्रेजी की शिक्षा को प्रधानता देना एवं भारतीय भाषाओं की अवहेलना करना, शिक्षा प्रसार की दोषपूर्ण विधियों के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(५) **शिक्षा विभाग की अवहेलना**—अंग्रेजों ने जितना ध्यान अन्य विभागों की ओर दिया उसका शतांश भी शिक्षा विभाग की ओर नहीं दिया। जिस प्रकार के सुयोग्य एवं कुशल मनुष्यों को अन्य विभागों में कार्य करने के लिए इंगलैंड से भारत भेजा गया उस प्रकार के मनुष्यों को भारतीय शिक्षा विभाग में नियुक्त नहीं किया गया। जो व्यक्ति आये भी उनमें इतनी कार्य-क्षमता नहीं थी कि वे इस देश के लिए राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की योजना बना सकते।

निष्कर्ष

उपरिलिखित ब्रिटिश कालीन शिक्षा एवं अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के लाभ-हानियों अथवा गुण दोषों पर दृष्टि डालने से सहसा यही विचार उत्पन्न होता है कि अंग्रेजों ने अपनी भाषा और शिक्षा-पद्धति को परवश भारत पर लादकर एक ऐसा जघन्य अपराध किया है जिसके लिए वे अक्षम्य हैं। पर यदि हम अपनी भावुकता के वशीभूत न होकर निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से विचार करें तो हम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था हमारे लिए एक अद्वितीय वरदान बनकर आई। अंग्रेजी के अध्ययन से ही हमारे देश में पिछले सौ वर्षों में युगान्तर हुआ है। इसका श्रीगणेश उस समय हुआ जब हमने ज्ञान एवं प्रकाश के लिए अपना मुह पूर्व दिशा से पश्चिम की ओर मोड़ा।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss critically the view that the British totally failed to evolve a National System of Education for India
2. 'The British Educational Administration did several good things which India will always acknowledge Elucidate and comment

२०

विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग

(University Education Commission)

राधाकृष्णन् कमीशन

(Radhakrishnan Commission)

[1948-1949]

विषय प्रवेश

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हुई। परन्तु विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जा रही थी, उससे जनसाधारण में अत्यधिक असन्तोष था। अतः अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा-परिषद (Inter University Board of Education) और केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education) ने सरकार से एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग नियुक्त करने की सिफारिश की। फलस्वरूप भारत सरकार ने ४ नवम्बर १९४८ को डा० एस० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' की नियुक्ति की।

नियुक्ति के उद्देश्य—आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य—'भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और उन सुधारों तथा विस्तारों के विषय में सुझाव देना था, जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं के उपयुक्त होने के लिए वांछनीय हो सकें।"

आयोग के विचार तथा सुझाव

(Views & Recommendations of the Commission)

आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के सभी पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए और उनमें सुधार करने के लिए सुझाव दिए। हम इनका वर्णन नीचे कर रहे हैं :—

१ विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य (Aims of University Education)

१ स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे विश्वविद्यालयों के कर्तव्यों तथा दायित्वों में वृद्धि हो गई है। अब उन्हें ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है जो राजनीतिक प्रशासकीय तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण कर सकें।

२ विश्वविद्यालय समाज सुधार में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। अतः उनका उद्देश्य ऐसे नेताओं को जन्म देना होना चाहिए जो दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा साहसी हों।

३ विश्वविद्यालयों को ऐसे विवेकी व्यक्तियों को जन्म देना चाहिए जो प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा का प्रसार कर सकें।

४ शिक्षा का उद्देश्य—जीवन और ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करना है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जायें वे पाठ्य-क्रम के अभिन्न अंग हों।

५ विश्वविद्यालय देश की सभ्यता तथा संस्कृति के पोषक हैं। अतः विश्वविद्यालय की शिक्षा का उद्देश्य—नवयुवकों में इन तत्वों का प्रसार करना होना चाहिए।

६ स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में निवास करता है। अतः विश्वविद्यालयों में छात्रों के न केवल मानसिक विकास अपितु शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जाय।

२ अध्यापक वर्ग (Teaching Staff)

१ अध्यापकों को प्राविडेन्ट फण्ड की अधिक उत्तम सुविधा दी जाय। इसके लिए अध्यापक और विश्वविद्यालय—दोनों आठ-आठ प्रतिशत दें।

२ विश्वविद्यालयों के समीप ही अध्यापकों के निवास की व्यवस्था की जाय।

३ अध्यापक अपने पद पर ६० वर्ष की आयु तक रहें और यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा है तो वे ६४ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते हैं।

४ अध्यापकों को अध्ययन के लिए एक बार में १ वर्ष का अवकाश, और अपने सम्पूर्ण सेवा काल में ३ वर्ष का अवकाश मिलना चाहिए।

५. अध्यापकों को एक सप्ताह में अधिक से अधिक १८ घण्टे (Periods) का अध्यापन कार्य दिया जाय।

३ अध्यापन के स्तर (Standards of Teaching)

१ विभिन्न विश्वविद्यालयों की कला एवं विज्ञान कक्षाओं में ३,००० और सम्बद्ध कॉलेजों में १,४०० से अधिक छात्र न रखे जायें।

२ परीक्षा दिवसों को छोड़कर कार्य करने के दिन एक वर्ष में कम से कम १८० हों।

३ शिक्षकों के व्याख्यान परिश्रम से तैयार किये जायें, ट्यूटोरियल कक्षाओं की व्यवस्था की जाय और पुस्तकालय में अध्ययन तथा लिखित कार्य पर बल दिया जाय।

४ किसी भी कक्षा के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित न किया जाय।

५ स्नातकोत्तर स्तर पर छात्रों को व्याख्यानों में उपस्थित होने के लिए बाध्य न किया जाय।

६ स्नातकोत्तर स्तर पर विचार गोष्ठियों (Seminars) को प्रोत्साहित किया जाय।

७ छात्रों को १८ वर्ष की आयु से पूर्व विश्वविद्यालयों में प्रवेश न दिया जाय, क्योंकि इस आयु के पूर्व उनका मानसिक परिपाक नहीं हो पाता है।

८ छात्रों को ३३, ४५ और ६० प्रतिशत अंकों पर तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम श्रेणी न दी जाकर ४०, ५५ और ७० प्रतिशत पर दी जाय।

४ पाठ्य-क्रम (Courses of Study)

१ स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की अवधि ३ वर्ष हो।

२ स्नातकोत्तर उपाधि आनर्स कक्षा के १ वर्ष पश्चात् और स्नातक बनने के २ वर्ष उपरान्त प्रदान की जाय।

३ विश्वविद्यालयों तथा माध्यमिक स्कूलों में सामान्य शिक्षा के सिद्धान्तों तथा प्रयोगों का शिक्षण अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया जाय।
४ सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा में समन्वय स्थापित किया जाय।

५ स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान (Post Graduate Training and Research)

१ स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में एक विशिष्ट विषय का उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान की विधियों का प्रशिक्षण सम्मिलित किया जाना चाहिए।
२ पी० एच डी० के छात्रों का अखिल भारतीय स्तर पर निर्वाचित किया जाय।
३ पी० एच डी० एवं अन्य अनुसंधान कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों तथा अभिवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
४ डी० लिट० एवं डी० एस-सी० की उपाधियाँ केवल उच्च कोटि की मौलिक कृतियों पर प्रदान की जायें।

६ व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education)

(i) कृषि (Agriculture)—कृषि शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नांकित सिफारिशें कीं —

१ प्राथमिक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में कृषि शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
२ कृषि शिक्षा की संस्थायें यथासम्भव ग्रामीण क्षेत्रों में होनी चाहिए।
३ वर्तमान कृषि कालिजों को पर्याप्त आर्थिक सहायता देकर अधिक साधन-सम्पन्न बनाया जाय।
४ नवीन कृषि-कालिजों को यथासम्भव नवीन ग्रामीण विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रखा जाय।
५ केन्द्रीय और राज्य-सरकारों द्वारा प्रयोगात्मक फार्म खोले जायें।

(ii) वाणिज्य (Commerce)—आयोग ने वाणिज्य की शिक्षा विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये—

१ विश्वविद्यालय में वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को ३ या ४ विभिन्न प्रकार की फर्मों में व्यावहारिक कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाय।
२ स्नातक-परीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् छात्रों को किसी विशेष शाखा में विशेषज्ञ बनने का परामर्श दिया जाय।

(iii) शिक्षा-व्यवसाय (Teaching Profession)—शिक्षा-व्यवसाय में सुधार करने के उद्देश्य से आयोग ने अधोलिखित सिफारिशें कीं—

१ प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाय। पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा विद्यालयों में अध्यापन के अभ्यास को अधिक महत्व दिया जाय।

२ प्रशिक्षण विद्यालयों में अधिकांश अध्यापक वे हों, जो स्कूलों में पढ़ाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हों।

३ शिक्षा-सिद्धान्त (Theory of Education) के पाठ्य-क्रम लचीले और स्थानीय वातावरण के अनुकूल हों।

४ एम० एड० डिग्री के लिए उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाय जिन्हें कुछ वर्ष के शिक्षण का अनुभव हो।

(iv) इन्जीनियरिंग एवं टैक्नोलॉजी (Engineering & Technology)—इस शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की मुख्य सिफारिशें निम्नांकित थीं—

१ फोरमैन, ड्राफ्टमैन और ओवरसियरों को शिक्षा देने वाले इन्जीनियरिंग स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाय।

२ इन्जीनियरिंग स्कूलों और कॉलिजों में अध्ययन करने वाले छात्रों को कारखानों में काम करके व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया जाय।

३ देश के विभिन्न उद्योगों की माँग को ध्यान में रखते हुए इन्जीनियरिंग और टैक्नोलॉजी की संस्थाओं के पाठ्य-क्रम को विस्तृत किया जाय।

४ उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए टैक्नोलॉजिकल संस्थाओं का शीघ्रातिशीघ्र निर्माण किया जाय।

(v) कानून (Law)—कानून की शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव निम्नलिखित थे—

१ छात्रों को कानून की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति तभी दी जाय जब वे ३ वर्ष का सामान्य डिग्री कोर्स पास कर लें।

२ कानून के विशेष विषयों का पाठ्य-क्रम ३ वर्ष का हो।

३ कानून के छात्रों को अपने अध्ययन-काल में अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियों में दी जाय।

(vi) चिकित्सा (Medicine)—चिकित्सा-शिक्षा के विषय में आयोग ने जो विचार प्रकट किए, उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

१ किसी भी मेडिकल कॉलेज में १०० से अधिक छात्रों को प्रवेश न दिया जाय।
२ कॉलेज में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक छात्र के लिए १० रोगी हों।
३ स्नातक-पूर्व एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रों को ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाय।
४ देशी चिकित्सा प्रणालियों में अनुसंधान-कार्य के लिये विशेष सुविधायें प्रदान की जायें।

७ धार्मिक शिक्षा (Religious Education)
१ सभी शिक्षा-संस्थाएं कुछ मिनट के मौन चिन्तन के पश्चात् अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ करें।
२ डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में विश्व के महान् धार्मिक नेताओं—बुद्ध, कनफ्यूशियस, सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज, माधव, मुहम्मद, कबीर, नानक, गाँधी—की जीवनियाँ पढ़ाई जायें।
३ द्वितीय वर्ष में विश्व के धार्मिक ग्रन्थों में से सार्वभौमिक महत्त्व के चुने हुए भाग पढ़ाये जायें।
४ तृतीय वर्ष में धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन किया जाय।

८. शिक्षा का माध्यम (Medium of Instruction)
१ उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में यथाशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया जाय।
२ उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओं का ज्ञान कराया जाय—प्रादेशिक भाषा (मातृभाषा), संघीय भाषा (राष्ट्रभाषा) और अंग्रेजी।
३ उच्च शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा (Regional Language) हो परन्तु राष्ट्रभाषा को एक या अधिक विषयों की शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है।
४ राज्य सरकारें उच्चतर माध्यमिक स्कूलों, डिग्री कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की सभी कक्षाओं में संघीय भाषा की शिक्षा की व्यवस्था करें।
५ नवीन ज्ञान के सम्पर्क में रहने के लिये स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का अध्ययन यथापूर्व रखा जाय।

९ परीक्षाएँ (Examinations)
१ प्रत्येक विश्वविद्यालय में तीन सदस्यों का एक पूर्णकालीन बोर्ड स्थापित किया जाय। इस बोर्ड के दो प्रमुख कार्य होंगे—

(i) विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज में अध्यापकों को वस्तुगत परीक्षाओं (Objective Tests) की नवीन योजनायें बनाने में परामर्श देना और पाठ्य-क्रम में संशोधन के लिये सामग्री देना।

(ii) सम्बद्ध कॉलेजों के छात्रों का समय-समय पर प्रगति परीक्षाओं (Progressive Tests) द्वारा परीक्षण करना।

२ कक्षा में छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिये यथाशीघ्र वस्तुगत प्रगति-परीक्षाओं (Objective Progressive Tests) का एक कुलक (Set) विकसित किया जाय।

३ तीन वर्ष के किसी पाठ्य-क्रम की परीक्षा तीन वर्ष उपरान्त न ली जाय अपितु प्रत्येक वर्ष के अन्त में स्वतःपूर्ण इकाइयों (Self contained Units) में परीक्षा ली जाय और विद्यार्थी को प्रत्येक विषय में पास होना आवश्यक हो।

४ परीक्षाओं के स्तर को ऊँचा करने के लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियों के लिये न्यूनतम अंक क्रमशः ७०, ५५, और ४० प्रतिशत निर्धारित किये जायँ।

१० छात्र, उनके काम तथा उनका कल्याण (Students their Activities and Welfare)

१ प्रवेश के समय और तदुपरान्त वर्ष में एक बार प्रत्येक छात्र और छात्रा की निःशुल्क स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

२ प्रत्येक विश्वविद्यालय में छात्रों की चिकित्सा के लिये अस्पताल हो।

३ मध्याह्न के समय उचित मूल्य पर छात्रों को पौष्टिक भोजन दिया जाय।

४ प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक 'डाइरेक्टर ग्राफ फिजीकल एजूकेशन' की नियुक्ति की जाय।

५ छात्रों के खेल-कूद जिमनेजियम आदि की उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

६ सभी शिक्षा-संस्थाओं में एन० सी० सी० की स्थापना की जाय।

७ विश्वविद्यालयों में छात्रावासों की उचित व्यवस्था की जाय। एक छात्रावास में ५० से अधिक विद्यार्थी न हों।

८ छात्रों की उत्तम प्रशासन में रुचि उत्पन्न की जाय और 'प्रॉक्टोरियल प्रणाली' (Proctorial System) का विकास किया जाय।

९ विश्वविद्यालय में छात्र-कल्याण परामर्शदात्री समिति (Advisory Board of Student Welfare) की स्थापना की जाय।

११ स्त्री शिक्षा (Women s Education)

१ स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे कि वे सुमाता और सुगृहिणी बन सकें।

२ स्त्रियों की शिक्षा-सुविधाओं में विस्तार किया जाय।

३ शिक्षा प्राप्त करने में स्त्रियाँ पुरुषों का अनुकरण न करें अपितु स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त करें।

४ शिक्षा-संस्थाओं का पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिए जिससे स्त्रियाँ सामान्य समाज में अपना सामान्य स्थान ग्रहण कर सकें।

५ गृह अर्थशास्त्र (Home Economics) और गृह-प्रबन्ध (Home Management) की शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्त्रियों को प्रेरणा दी जाय।

१२ ग्रामीण विश्वविद्यालय (Rural Universities)

भारत एक खेतिहर देश है। अत उसकी उन्नति और आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये ग्रामीण कॉलिजों तथा विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है। इस दिशा मे कार्य प्रारम्भ करना वाछनीय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये —

१ छोटे-छोटे आवासिक स्नातक पूर्व कॉलिज स्थापित किये जायें। उनके केन्द्र में एक विश्वविद्यालय हो।

२ कॉलिजों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या लगभग ३०० हो और समस्त कॉलिजों तथा विश्वविद्यालय के छात्रों की संख्या २५०० से अधिक न हो।

३ सभी कॉलिजों में पृथक अध्यापक और निवास की सुविधा हो। परन्तु जहाँ तक पुस्तकालयों प्रयोगशालाओं आदि का प्रश्न है वे सब कॉलिजों के लिये एक ही स्थान पर हो सकते हैं।

४ इन कॉलिजों का प्रमुख ध्येय—छात्रों को सामान्य शिक्षा देना और उनकी व्यक्तिगत रुचियों का विकास करना होना चाहिए।

५ जिस समय छात्र स्नातक-पूर्व कक्षा में अध्ययन कर रहे हों उन्हें विश्वविद्यालय या व्यावसायिक स्कूल में किसी पाठ्य-क्रम को अध्ययन करने की सुविधा होनी चाहिए।

६ इस प्रकार की सुविधा से उनका अधिक विकास सम्भव हो सकेगा और वे पूर्व-स्नातक शिक्षा के साथ-साथ किसी विषय की विशेष शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे।

७ स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में कठोर विभाजन नहीं होना चाहिए जिससे कि एक विद्यार्थी कुछ विषयों को स्नातक-पूर्व शिक्षा प्राप्त करते हुए भी स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण कर सके।

राधाकृष्णनन् कमीशन का मूल्याङ्कन
(Estimate of Radhakrishnan Commission)

आज तक विश्वविद्यालय शिक्षा का परीक्षण करने के लिये जितने भी आयोगों और समितियों की नियुक्ति हुई है उन सब में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। यदि आयोग की सभी सिफारिशों को क्रियान्वित कर लिया गया तो हमारे विश्वविद्यालयों की रूप रेखा पूर्णतया परिवर्तित हो जायगी और वे वास्तव में राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हो जायेंगे। तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आयोग के कार्यों की सराहना करते हुए लिखा था— आयोग ने हमारी विश्वविद्यालय शिक्षा की प्राप्तियों पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करके एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है और साथ ही अति अमूल्य प्रस्ताव तथा सुझाव भी दिए हैं।" ("The Commission has submitted a very valuable report containing a review of the achievements of our University Education and also suggestions and recommendations which are of a far reaching character")

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What reforms have been suggested in the University Education in this country by the Radhakrishnan Commission ?
2. Comment upon the view that the Indian Universities as they exist today despite many admirable features do not fully satisfy the requirements of a National System of Education How far do you think the implementations of the recommendations of the University Commission of 1948 can fulfil the needs of the country ?

२१

माध्यमिक शिक्षा-आयोग

(Secondary Education Commission)

मुदालियर कमीशन

(Mudaliar Commission)

[1952-1953]

विषय प्रवेश

स्वतन्त्र भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था। अतः उनमें सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया गया। १९४८ में 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की जाय। १९५१ में बोर्ड ने अपनी माँग को फिर दोहराया। फलस्वरूप भारत सरकार ने २३ सितम्बर १९५२ को डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इसी को 'मुदालियर कमीशन' भी कहा जाता है।

नियुक्ति के उद्देश्य—इस आयोग की नियुक्ति के दो मुख्य उद्देश्य थे —

१ देश में प्रचलित माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की जाँच करना। (To examine the prevailing system of Secondary Education in the country)

२ इस शिक्षा प्रणाली के पुनर्संगठन और सुधार के लिये सुझाव देना। ('To suggest measures for its reorganisation and improvement')

आयोग के विचार एवं सुझाव

(Views & Recommendations of the Commission)

माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न अवयवों एवं उनसे सम्बन्धित समस्याओं के विषय में आयोग द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये और जो सुझाव दिये गये उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है —

१ माध्यमिक शिक्षा के दोष (Defects of Secondary Education)

१ माध्यमिक शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

२ अध्यापन की रीतियाँ परम्परागत हैं और वे छात्रों को प्रभावित करने में असमर्थ हैं।

माध्यमिक शिक्षा एकांगी, संकीर्ण एवं पुस्तकीय है और छात्रों की रुचि के अनुकूल नहीं है।

४ अँग्रेजी भाषा, शिक्षा का माध्यम एवं अध्ययन का अनिवार्य विषय है। अतः जिन छात्रों को इस भाषा का समुचित ज्ञान नहीं होता है वे इसके अध्ययन में कठोर परिश्रम करके अपने समय तथा शक्ति को नष्ट करते हैं।

५ वर्तमान शिक्षा में छात्रों के चरित्र निर्माण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है।

६ परीक्षा प्रणाली अत्यधिक दोषपूर्ण है।

२ माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Secondary Education)

(१) लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास (Development of Democratic Citizenship)—भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है और उसका उद्देश्य धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्र की स्थापना करना है। अतः शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जाना चाहिए जो कि भारत के नवीन वातावरण के

अनुरूप हों। दूसरे शब्दों में माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य—लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास करना होना चाहिए।

(२) व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि (Improvement of Vocational Efficiency)—माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य—नागरिकों में व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि करना है। अतः छात्रों को औद्योगिक शिक्षा दी जानी आवश्यक है।

(३) व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)—शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—नागरिकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। अतः शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिये जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास हो सके।

(४) नेतृत्व का विकास (Development of Leadership)—प्रजातन्त्र उसी दशा में सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है जब कि उसका प्रत्येक नागरिक अनुशासन एवं नेतृत्व में शिक्षा प्राप्त कर चुका हो। अतः माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य—छात्रों को अनुशासन के साथ साथ नेतृत्व की भी शिक्षा प्रदान करना है।

३ माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन (New Organisational Pattern of Secondary Education)

१ माध्यमिक शिक्षा की अवधि ७ वर्ष की होनी चाहिए।
२ यह शिक्षा ११ से १७ वर्ष तक की आयु के बालकों तथा बालिकाओं के लिये होनी चाहिए।
३ शिक्षा काल दो भागों में विभाजित किया जाय —
(i) ३ वर्ष की जूनियर माध्यमिक (Junior Secondary) शिक्षा।
(ii) ४ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) शिक्षा।
४ वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षा को तोड़ दिया जाय।
५ डिग्री कोर्स ३ वर्ष का कर दिया जाय।
६ बहु उद्देशीय (Multipurpose) स्कूलों की स्थापना की जाय।
७ काफी बड़ी संख्या में प्राविधिक स्कूलों (Technical Schools) की स्थापना की जाय।
८ बड़े नगरों में केन्द्रीय प्रौद्योगिक संस्थानों (Technological Institutions) का निर्माण किया जाय।
९ उद्योगों पर उद्योग शिक्षा कर (Industrial Education Cess) लगाया जाय और इससे प्राप्त धन को प्राविधिक शिक्षा के विस्तार में व्यय किया जाय।

१० बालिकाओं को गृह विज्ञान (Domestic Science) के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जाय।

४ भाषाओं का अध्ययन (Study of Languages)

१ हिन्दी को विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में अनिवार्य विषय बना दिया जाय।

२ इस समय पाठ्य-क्रम में अंग्रेजी एक अनिवार्य विषय है और इसको भविष्य में इसी स्थान पर रखना पड़ेगा।

३ विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में संस्कृत को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।

४ माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिये।

५ मिडिल स्कूलों में प्रत्येक छात्र को कम से कम दो भाषायें सिखाई जानी चाहिये।

६ हायर सेकेंडरी स्तर पर कम से कम दो भाषाओं की शिक्षा दी जाय। इनमें से एक मातृभाषा हो और दूसरी क्षेत्रीय भाषा।

५ माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य क्रम (Curriculum in Secondary Schools)

१ पाठ्य-क्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए जिससे कि उसे छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुकूल बनाया जा सके।

२ पाठ्य-क्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए।

३ पाठ्य-क्रम में ऐसे विषय नहीं होने चाहिए, जिनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो।

६ पाठ्य-क्रम के विषय (Curriculum)

(क) मिडिल और सीनियर बेसिक स्कूल—(१) भाषायें (Languages), (२) समाज विज्ञान (Social Studies) (३) सामान्य विज्ञान (General Science) (४) गणित (Mathematics) (५) कला एवं संगीत (Art & Music) (६) शिल्प (Craft) (७) शारीरिक शिक्षा (Physical Education)।

(ख) हाई व हायर सेकेण्डरी स्कूल—इन स्कूलों के पाठ्य क्रम में विविधता (Diversification) की आवश्यकता है जिससे छात्रों की अभिरुचियों तथा

योग्यताओं का विकास किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्य क्रम में निम्नलिखित विषय होंगे —

१—आन्तरिक विषय (Core Subjects)

अ—(१) मातृभाषा अथवा प्रादेशिक (Regional) भाषा अथवा मातृभाषा तथा एक शास्त्रीय भाषा (Classical Language) का मिश्रित पाठ्य क्रम।

(२) निम्नांकित में से चुनी जाने वाली एक अन्य भाषा —

(i) हिन्दी (जिसकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है)।

(ii) प्रारम्भिक अंग्रेजी (जिन्होंने माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन नहीं किया है)।

(iii) उच्च अंग्रेजी (जिन्होंने पहिले अंग्रेजी का अध्ययन किया है)।

(iv) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा।

(v) अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा (Classical Language)।

ब—(१) समाज विज्ञान का सामान्य पाठ्य-क्रम (केवल प्रथम दो वर्षों के लिए)।

(२) गणित सहित सामान्य विज्ञान का सामान्य पाठ्य-क्रम (केवल प्रथम दो वर्षों के लिये)।

स—निम्नलिखित में से एक शिल्प (Craft) —

(१) कताई एवं बुनाई (२) लकड़ी का काम (३) धातु का काम (४) बागवानी (५) दर्जी का काम (६) मुद्रण का काम (७) कमशाला का काम (८) मॉडल बनाने का काम (९) सिलाई व दस्तकारी।

२—वैकल्पिक विषय (Optional Subjects)

क—निम्नलिखित समूहों में से किसी एक समूह के तीन विषय —

समूह १—मानव विज्ञान (Humanities) समूह २—विज्ञान (Science) समूह ३—प्राविधिक (Technical) समूह ४—वाणिज्य (Commercial) समूह ५—कृषि (Agriculture) समूह ६—ललित कलाएं (Fine Arts) समूह ७—गृह विज्ञान (Domestic Science)।

७ पाठ्य पुस्तकें (Text Books)

१ निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए एक सर्वोच्च पाठ्य पुस्तक समिति (High Power Text book Committee) का निर्माण किया जाय।

२ केन्द्रीय सरकार पुस्तक चित्रकला का प्रशिक्षण देने के लिए एक नई संस्था की स्थापना करे।

३ किसी भी विषय के लिए एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित न की जाय अपितु उस स्तर की पुस्तकें पर्याप्त संख्या में निश्चित का जायें।

४ पाठ्य-पुस्तकों में थोड़े थोड़े समय के उपरान्त परिवर्तन न किया जाय।

८ शिक्षण की प्रावगिक विधियाँ (Dynamic Methods of Teaching)

१ विद्यालयों में शिक्षण विधियों का उद्देश्य केवल कुशलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं होना चाहिए अपितु छात्रों में उपयुक्त मूल्यों (Desirable Values) उचित दृष्टिकोणों (Proper Attitudes) एवं कार्य करने की भावना का भी समावेश करना चाहिए।

२ शिक्षण में मौखिक बातों (Verbalism) एवं कंठस्थ करने की क्रिया (Memorization) पर बल नहीं दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत, शिक्षण ऐसी परिस्थितियों के माध्यम द्वारा किया जाना चाहिए जो साभिप्रायिक (Purposeful), मूर्त (Concrete) एवं वास्तविक हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षण विधियों में क्रिया-पद्धति (Activity Method) और योजना-पद्धति (Project Method) को स्थान देना चाहिए।

६ धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा (Religious & Moral Instruction)

१ धार्मिक शिक्षा विद्यालयों में दी जा सकती है।

२ यह शिक्षा विद्यालय में अध्ययन के समय न हो वरन् उससे पूर्व या उसके उपरान्त दी जाय।

३ इस शिक्षा को ग्रहण करने के लिए किसी छात्र को बाध्य न किया जाय।

१० चरित्र निर्माण की शिक्षा (Education of Character)

१ छात्रों के चरित्र का निर्माण करना सभी अध्यापकों का विशेष उत्तरदायित्व है। अतः स्कूल के प्रत्येक कार्य-क्रम में चरित्र निर्माण की शिक्षा दी जानी चाहिए।

२ उत्तम अनुशासन के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों एवं छात्रों में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया जाय।

३ अतिरिक्त पाठ्य क्रियाओं (Extra-curricular Activities) को विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाय।

४ सब स्कूलों में एन० सी० सी० फस्ट-एड और जूनियर रेड क्रास कार्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

११ मार्ग प्रदर्शन एवं समुपदेशन (Guidance & Counselling)

१ यह आवश्यक है कि छात्र उद्योगों के विभिन्न व्यवसायों के प्रकृति एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करें। अतः विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित कार्यों के फिल्म तैयार किए जायें और उन्हें छात्रों को दिखाया जाय। साथ ही छात्रों को विभिन्न उद्योगों के कल-कारखानों में ले जाया जाय।

२ विद्यालयों में प्रशिक्षित मार्ग प्रदर्शन अधिकारियों (Guidance Officers) और आजीविकोपार्जन शिक्षकों (Career Masters) की नियुक्ति की जाय।

१२ छात्रों का शारीरिक कल्याण (Physical Welare of Students)

१ सब राज्यों में स्कूल स्वास्थ्य सेवा (School Medical Service) को उचित रूप से सङ्गठित किया जाय।

२ विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सब छात्रों की प्रतिवर्ष पूर्ण रूप से स्वास्थ्य-परीक्षा की जाय।

३ सभी रोगी छात्रों की विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी (School Health Officer) द्वारा चिकित्सा की जाय।

४ छात्रावासों और निवास विद्यालयों (Residential Schools) में सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार की व्यवस्था की जाय।

१३ परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्याङ्कन (Examination and Educational Evaluation)

१ बाह्य परीक्षाओं की संख्या में कमी की जाय।

२ परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के ढंग में इस प्रकार परिवर्तन किया जाय कि परीक्षा निबन्धात्मक ढंग की न रह जाय।

३ छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्यांकन करते समय आन्तरिक परीक्षाओं (Internal Examinations) के साथ-साथ नियतकालिक परीक्षाओं (Periodical Tests) और विद्यालय-अभिलेखों (School Records) को भी उचित महत्व प्रदान किया जाय।

४ बाह्य तथा आन्तरिक परीक्षाओं में छात्रों के कार्य का मूल्यांकन संख्या में न किया जाकर प्रतीकात्मक (Symbolic) होना चाहिए।

१४ अध्यापकों की उन्नति (Improvement of Teachers) —

१ अध्यापकों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता है। अतः विशिष्ट समितियों की नियुक्ति की जाय, जो इस बात का सुझाव दें कि वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्यापकों को कितना वेतन दिया जाना चाहिए।

अध्यापकों को अपनी और अपने आश्रित सम्बन्धियों की चिन्ताओं से मुक्त करने के लिए प्रत्येक राज्य में त्रिमुखी लाभ-योजना कार्यान्वित की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत अध्यापकों को पेन्शन, प्राविडेन्ट फण्ड और जीवन-बीमा की सुविधाएं दी जायें।

३ अध्यापकों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाय, विद्यालयों के समीप उनके निवास की व्यवस्था की जाय, स्वास्थ्य पद के स्थानों, कक्षा शिक्षा-सम्मेलनों आदि में जाने के लिए उन्हें किराये में रियायत और छुट्टी दी जाय तथा चिकित्सालयों में मुफ्त इलाज की सुविधा दी जाय।

उपसंहार

मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में जो सुझाव दिए हैं उनको प्रायः सभी शिक्षा विशारदों ने व्यावहारिक और सामयिक माना है। उनका कथन है कि आयोग के अधिकांश सुझाव अति महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय हैं। यदि उनके अनुसार हमारी माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन किया जाय तो उसका रूप पूर्णतः परिवर्तित हो जायगा और देश के नवयुवकों का हित करके भावनाओं का कल्याण करेगी। आयोग के अधिकांश सुझावों को केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर लिया गया है।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Critically examine the recommendations of the Mudaliar Commission for the reorganization of Secondary Education in India

2 Discuss the pattern of Secondary Education as recommended in the Report of the Secondary Education Commission

२२

पचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा

(Eduacation Under The Five Year Plans)

विषय-प्रवेश

शताब्दियों से परतन्त्रता की शृंखलाओं में बन्दी भारत अगस्त १९४७ में मुक्त हुआ। परन्तु विगत दो महायुद्धों, अंग्रेजों की शोषण-नीति तथा देश के विभाजन ने राष्ट्र के समक्ष अति जटिल समस्यायें उपस्थित कर दीं। उन समस्याओं का निवारण एवं देश की सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियों का पुनर्संगठन करके ही स्वाधीनता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव थी। अतः विश्व के अनेक समृद्ध तथा सभ्य देशों के समान भारत ने भी अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने एवं निश्चित दिशा में अग्रसर होने और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास करने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से अप्रैल १९५१ में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की। इसमें अन्य विषयों के साथ साथ शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

शिक्षा की दशा

१९५१ में भारतीय शिक्षा की स्थिति अति शोचनीय थी। अनेक दोषों से युक्त होने के अतिरिक्त देश में साक्षरता का प्रतिशत केवल १७.२ था। इससे स्पष्ट है कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। वस्तुत ६-११ वर्ष की आयु के कुल ४० प्रतिशत, ११-१७ वर्ष की आयु के कुल १० प्रतिशत और १७-२३ वर्ष की आयु के ०.९ प्रतिशत व्यक्तियों को ही शिक्षा की सुविधायें प्राप्त थीं, जब कि योरोप और अमरिका के देशों में ८० से लेकर १०० प्रतिशत तक बालक-बालिकायें शिक्षा से लाभ उठा रहे थे। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा को अनावश्यक अधिक महत्व, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का अभाव, नगरों एवं ग्रामों में शिक्षा सुविधाओं की असमानता, स्त्री शिक्षा की उपेक्षा और प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी आदि कुछ ऐसे दोष थे, जिनका निवारण अनिवार्य था। अतः भारतीय शिक्षा को जनतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिये शिक्षा का पुनर्गठन अनिवार्य था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में क्रियात्मक पग उठाया गया।

शिक्षा-पुनर्गठन

योजना-आयोग (Planning Commission) ने भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये —

१ बेसिक एवं समाज शिक्षा के क्षेत्रों का प्रसार करना।

२ माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा को नवीन रूप देकर पुनर्संगठित करना।

३ व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुसार नवीन रूप प्रदान करना।

४ स्त्री शिक्षा का विस्तार करना और ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देना।

५ अध्यापकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करना।

६ अध्यापकों के वेतन और उनकी सेवा प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार करना।

७ शिक्षा में पिछड़े हुए राज्यों को उनको सहायता अनुदान देकर वहाँ शिक्षा विकास एवं विस्तार करना।

शिक्षा पर व्यय

अनुमान लगाया गया कि प्रथम योजना-काल में ६ १४ वर्ष की आयु के शत प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के लिये लगभग ४०० करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय होगे। इसके अतिरिक्त २०० करोड़ रुपय बेसिक और हाई स्कूल के अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा २७२ करोड़ रुपये स्कूलों के भवनों के लिये आवश्यक थे। सरकार ने इतनी विशाल धन राशि व्यय करने के लिये अपने को असमर्थ पाया और योजना काल में १६६ करोड़ रुपये की स्वीकृति दी। इस धन में से ४४ करोड़ केन्द्र द्वारा और १२५ करोड़ राज्य सरकारों द्वारा व्यय किये गये। यह धनराशि इतनी अल्प थी कि इससे देश की समस्त शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो सकती थी। अतः सरकार ने जनता से अपील की कि वह धन धरती सेवा और भवन देकर इस कार्य में हाथ बँटाए।

योजना के लक्ष्य

योजना आयोग को आशा थी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक निम्नांकित लक्ष्य प्राप्त हो जायेंगे —

१ १९५६ से पूर्व ही ६ ११ वर्ष की आयु के ६० प्रतिशत बालकों को शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त हो जायेंगी।

२ विद्यालयों में ६ ११ वर्ष तक की आयु वाली बालिकाओं की संख्या ४० प्रतिशत हो जायगी।

३ स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा के लिये योग्य आयु के बच्चों की संख्या १५ प्रतिशत तक पहुँच जायगी और इन स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या भी बढ़कर १० प्रतिशत हो जायगी।

४ समाज शिक्षा के क्षेत्र में १४ ४० वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों को व्यावसायिक अर्थों में सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने की शिक्षा दी जायगी। इसमें भाग लेने वाले स्त्री एवं पुरुषों की संख्या क्रम से क्रमश १ और २० प्रतिशत होगी।

इस योजना में विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया।

समालोचना

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा के विकास विस्तार एवं पुनर्गठन के लिए एक योजना का निर्माण करके अप्रैल १९५१ में उस

कार्यान्वित कर लिया गया। इस योजना में गुणों के साथ-साथ दोषों का अभाव भी नहीं, प्रत्युत इसके अन्तर्गत भी अनेक ऐसी बातें थीं जो दोषपूर्ण थीं। प्रथम, योजना में शिक्षा के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे उन्हें प्राप्त करने में सफलता न मिली। द्वितीय, इसने अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली के दोषों का स्पष्ट उल्लेख करके भी उनके निवारण के लिये कोई रचनात्मक पग नहीं उठाया। तृतीय, पूर्व प्राथमिक शिक्षा की ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। चतुर्थ, योजना-आयोग ने शिक्षकों की असंतोषजनक स्थिति के प्रति सहानुभूति व्यक्त करके भी उनके आर्थिक हित तथा सामाजिक सम्मान के लिये जो प्रयास किये, वे प्रायः नगण्य ही कहे जा सकते हैं। पंचम, सार्वजनिक शिक्षा को सामञ्जस्य के लिये आवश्यकता पर भी आयोग ने पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिये इतनी अल्प धनराशि निश्चित की, जो लज्जा की बात कही जा सकती है। अन्तिम, इसका यथोचित सुधार रूप से नहीं किया गया। लाखों रुपयों का दुरुपयोग किया गया। शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कार्य उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किये जाने के पश्चात् तनिक सी बाधा उपस्थित होने पर स्थगित कर दिये गये जिससे धन और शक्ति का भयंकर नाश हुआ।

उपरिलिखित दोषों के बावजूद भी भारतीय शिक्षा के इतिहास में शिक्षा के नियोजन का यह प्रथम प्रयास था। अनुभव मनुष्य का सर्वोत्तम शिक्षक है। योजनाकारों ने शिक्षा-योजना के दोषों तथा त्रुटियों से एक नवीन पाठ सीखा और इसके आधार पर द्वितीय योजना में उनसे मुक्त रह कर शिक्षा के प्रसार एवं पुनर्गठन का दृढ़ संकल्प किया। फलस्वरूप उन्हें प्रथम योजना की अपेक्षा द्वितीय योजना में अधिक सफलता हस्तगत हो रही है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

शिक्षा-पुनर्गठन

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य—शिक्षा को सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल बनाना और भारतीय शिक्षा प्रणाली में निहित दोषों का उन्मूलन करना था। इस प्रयास में केवल आंशिक सफलता प्राप्त हुई। योजना में जो अभाव थे उनकी ओर संकेत करते हुए आ इस्पुत ने आलंकारिक भाषा में कहा था— 'तलवार के मूठ पर्याप्त है और पतला का होना स्वाभाविक ही है क्योंकि तस्वीर बहुत बड़ा बन रही है।' प्रथम योजना-काल में शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति न हो सकी। इसी बात का ध्यान में रखकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के पुनर्गठन पर विशेष रूप से बल दिया गया। इसके लिए निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किया गया —

१ बेसिक तथा प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना।
२ माध्यमिक शिक्षा को बहुउद्देशीय बनाकर उसका रूप परिवर्तन करना।
३ कॉलेज और विश्वविद्यालय के शिक्षा स्तर में सुधार करके उसको ऊँचा करना।
४ प्राविधिक प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिए सुविधाओं का विस्तार करना।
५ समाज शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना।

शिक्षा पर व्यय

प्रथम योजना में शिक्षा पर १६९ करोड़ रुपये व्यय किए गये थे। द्वितीय योजना में ३०७ करोड़ व्यय करने की व्यवस्था की गई। दोनों योजनाओं में व्यय का विभाजन निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है —

शिक्षा का स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में)	
	प्रथम योजना (१९५१—५६)	द्वितीय योजना (१९५६—६१)
प्राथमिक शिक्षा	९३	८९
माध्यमिक शिक्षा	२२	५१
विश्वविद्यालय शिक्षा	१५	५७
प्रौद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा	२३	४८
समाज शिक्षा	५	५
प्रशासन व विविध	११	५७
योग	१६९	३०७

योजना के लक्ष्य

प्रथम योजना में शिक्षा के विविध क्षेत्रों में कितनी उन्नति हुई और द्वितीय योजना का क्या लक्ष्य था, इसका विवरण अग्रांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है —

विवरण	१९५०–५१ योजना से पूर्व	१९५५–५६ प्रथम योजना	१९६०–६१ द्वितीय योजना
(क) विभिन्न वय-वर्ग के बच्चों के लिये शिक्षा सुविधाएँ—			
१ (६–११) वय-वर्ग का प्रतिशत	४२.०	५१.०	६२.७
२ (११–१४)	१३.९	१९.२	२२.५
३ (१४–१७)	६.४	९.४	११.७
(ख) संस्थायें—			
१ प्राथमिक बेसिक	२०९६७१	२७४०३८	३२६८००
२ पूर्व बेसिक	१,४००	८३६०	१३८००
३ मिडिल बेसिक	१३५९६	१९२७०	२२७२५
४ उत्तर बेसिक	३५१	१,६४५	४५७१
५ हाई—हायर सेकेंडरी	७२८८	१०६००	१२१२५
६ बहुउद्देशीय	—	२५०	११८७
७ हायर सेकेंडरी बना दिये जाने वाले हाई-स्कूल	—	४७	११९७
८ विश्वविद्यालय	२६	३१	३८
(ग) इंजीनियरिंग विद्यालय—			
१ डिग्री देने वाले	४१	४५	५४
२ डिप्लोमा देने वाले	६४	८३	१०४
(घ) टेक्नोलॉजी के विद्यालय—			
१ डिग्री देने वाले	२५	३५	३८
२ डिप्लोमा देने वाले	३६	३६	३७

समालोचना

भारत-सरकार ने इस योजना की अवधि के लिये शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कार्यक्रम निश्चित किये जिनको राष्ट्र के भविष्य के लिये सम्पन्न किया जाना था। देश के औद्योगिक आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये शिक्षा का पुनर्संगठन किया जाना आवश्यक था परन्तु ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका। वास्तविकता यह है कि विश्व के अन्य विकसित राष्ट्रों—रूस, चीन और अमरिका के समान हमारी योजना के अभिप्राय को न तो स्पष्ट रूप से समझा गया और न उसके कार्यक्रमों को ही निर्धारित किया जा सका। इस योजना की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें कोई निश्चित योजना नहीं थी। केवल थोड़े से विद्यालयों की स्थापना करने विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने पाठ्य क्रमों में अधिक विषयों का समावेश करने और कुछ स्थानों पर शिक्षा की अधिक सुविधायें प्रदान करने से शिक्षा को न तो पुनर्संगठित किया जा सकता था और न इन कार्यों को योजना की संज्ञा ही दी जा सकती थी। तथ्य यह है कि योजनाकारों ने शिक्षा के विकास एवं विस्तार के अर्थ को रंच मात्र भी नहीं समझा। फिर आर्थिक विकास को पूर्ण रूप से जनता की भलाई का साधन बनाने के लिए शिक्षा के कार्यक्रमों को आर्थिक योजनाओं की अपेक्षा प्राथमिकता नहीं दी गई। आर्थिक योजनाओं का स्थान सर्वोपरि था और शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं को गौण स्थान प्रदान किया गया। देश के सभी कुशल कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान आर्थिक विकास पर केन्द्रित था। शिक्षा के क्षेत्र में जो व्यक्ति कार्य कर रहे थे उनमें न तो पर्याप्त कार्य-क्षमता थी और न कार्य-पटुता ही थी। ऐसी दशा में शिक्षा के कार्य-क्रमों का असफल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

आलोचकों ने कुछ अन्य दोषों की ओर भी संकेत किया है। उनका कथन है कि द्वितीय योजना में जन शिक्षा की उपेक्षा करके माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया। यही कारण है कि सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के व्यय को ६१ करोड़ से बढ़ाकर ८६ करोड़ कर दिया गया जब कि माध्यमिक शिक्षा के व्यय को २२ करोड़ से बढ़ाकर ५१ करोड़ और विश्वविद्यालय शिक्षा के व्यय को १५ करोड़ से बढ़ाकर ५७ करोड़ कर दिया गया।

योजना का एक अन्य दोष यह भी था कि प्रशासन पर होने वाला व्यय ५७ करोड़ निश्चय किया गया था जब कि प्रथम योजना में यह व्यय केवल ११ करोड़ था। प्रथम और द्वितीय योजनाओं में शिक्षा पर होने वाला कुल

व्यय क्रमशः १६६ करोड़ और ३०७ करोड़ था, अर्थात् द्वितीय योजना में प्रथम योजना की अपेक्षा १३८ करोड़ रुपया अधिक व्यय किया जा रहा था। इस धन में से लगभग आधा रुपया प्रशासन पर व्यय किया गया। यह बात बुद्धि की समझ से परे है कि आखिर ऐसा क्यों किया गया?

योजना आयोग ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि शिक्षा प्रणाली को सफल बनाने के लिए अध्यापकों के वेतन में वृद्धि और उनके सेवा प्रतिबन्धों में सुधार किया जाना अति आवश्यक था। परन्तु खेद का विषय है कि अध्यापकों के लिए कुछ भी नहीं किया गया। शिक्षा-योजना पर एक अन्य दोषारोपण यह किया गया है कि इसमें निरक्षरता का नाश करने के लिए कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया गया।

अन्त में हम कह सकते हैं कि क्रान्तिकारी ढंग से शिक्षा में नियोजन की आवश्यकता की पुकार सुनकर भी भारत-सरकार इस ओर पूर्णतया उदासीन रही।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

शिक्षा-पुनर्गठन

प्रथम योजना प्रारम्भ होने के बाद से शिक्षा की सुविधाओं में सभी स्तरों पर प्रशंसनीय विस्तार हुआ है। परन्तु जब दृष्टि इस समस्या की विशालता, देश की जनशक्ति का विकास करने और ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित करने की आवश्यकता पर जाती है जिनमें सब को आगे बढ़ने का अवसर मिल सके तब विकास की प्रगति को और भी तीव्र कर देना आवश्यक प्रतीत होने लगता है। अतः तृतीय योजना के मुख्य उद्देश्यों में से एक यह है कि शिक्षा प्रसार कार्यक्रम का विस्तार करके इस प्रयत्न पर बल पहुँचाना है ताकि शिक्षा राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक शाखा में आयोजित विकास का केन्द्र बिन्दु बन जाय। इसके लिये निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किया गया है:—

१. ६ से ११ वर्ष तक के सभी बच्चों को पढ़ने लिखने की सुविधा देना।

२. माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के स्तर पर विज्ञान की शिक्षा में सुधार करना।

३. सब वर्गों के शिक्षकों का प्रशिक्षण देना।

४. प्राविधिक शिक्षा का विस्तार करना।

शिक्षा पर व्यय

नीचे दी गई सारिणी में प्रथम, द्वितीय और तृतीय योजनाओं में सामान्य शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये निर्धारित व्यय का अलग अलग ब्योरा दिया गया है।

शिक्षा का स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में)		
	प्रथम योजना (१९५१-५६)	द्वितीय योजना (१९५६-६१)	तृतीय योजना (१९६१-६६)
१ प्रारम्भिक शिक्षा	८५	८७	२०९
२ माध्यमिक शिक्षा	२०	४८	८८
३ विश्वविद्यालय शिक्षा	१४	४५	८२
४ अन्य कार्यक्रम—			
समाज शिक्षा	—	४	६
शारीरिक शिक्षा व युवक कल्याण	१५	१०	१२
५ अन्य		१	११
योग	१	२०८	४०८
६ सांस्कृतिक कार्यक्रम	०	४	१०
कुल योग	१ ३	२ ८	४१-

० प्रथम योजना में सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर होने वाला व्यय अन्य कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था।

योजना के लक्ष्य

प्रथम एवं द्वितीय योजनाओं में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में कितनी उन्नति हुई और तृतीय योजना का क्या लक्ष्य है इसका विवरण नीचे की सारिणी से स्पष्ट हो जाता है —

विवरण	१९५०-५१ योजना से पूर्व	१९५५-५६ प्रथम योजना	१९६०-६१ द्वितीय योजना	१९६५-६६ तृतीय योजना
(क) विभिन्न वय-वर्ग के बच्चों के लिये शिक्षा सुविधाएँ				
१ ६-११ वय वर्ग का प्रतिशत	४ ०	४२ ६	६१ १	७६ ४
२ ११-१४ ,,	१ ७	१६ ५	२ ८	२८ ६
३ १४-१७ ,,	५ ३	७ ८	११ ५	१५ ६
(ख) संस्थाएं				
१ प्राथमिक व बेसिक	२०६ ७१	२७८ १३५	३ [illegible] ० ०	४ १५ ०००
२ जूनियर बेसिक	३३ ३७६	४२ ६७१	१ ०० ०००	१ २५ ०००
३ मिडिल बेसिक	१३ ५९६	२१ ७३०	६ ६००	५७,७००
४ सीनियर बेसिक	३२१	४८४	११ ६४०	१६,७००
५ हाई व हायर सेकेंडरी	७ २८८	१० ८ [illegible]	११ [illegible] ००	[illegible] १ ८००
६ बहुउद्देशीय	—	२५४	२,११५	२ ४४६
७ विश्वविद्यालय	२७	३१	४६	५८

प्राथमिक शिक्षा

तृतीय योजना के अन्त तक प्राथमिक शिक्षा को सभी बच्चों के लिए सुलभ नहीं बनाया जा सकेगा। ६ ११ वय-वर्ग के ७६ ४ तथा ११ १४ वय

वर्ग के २८.६ प्रतिशत बच्चों को ही शिक्षा की सुविधा प्रदान की जा सकेगी। एक विचार यह है कि ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों की नियम पूर्वक विद्यालय जाने की सुविधाओं में शिक्षा को आगे भी जारी रख सकने के अवसरों की पर्याप्त वृद्धि कर दी जाय। इसके अतिरिक्त, श्रम एवं नियोजन मंत्रालय भी एक ऐसी योजना तैयार कर रहा है जिससे ११ वर्ष तक की आयु के शिक्षित बालकों को सरल ढंग का प्राविधिक प्रशिक्षण दिया जा सके। आशा है कि चौथी और पाँचवी योजनाओं के समय ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने के लक्ष्य पूर्ण करने के उपाय किये जा सकेंगे और तब संविधान के एक निर्देश की पूर्ति हो जायगी।

प्रथम दो योजनाओं के समान तृतीय योजना में भी प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक प्रणाली से सम्बद्ध किया जा रहा है। किन्तु इसके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता प्रशिक्षित शिक्षकों की है। अतः तृतीय योजना में शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बल दिया जा रहा है। आजकल एक बड़ी संख्या में शिक्षकों को बेसिक अध्यापन प्रणाली सिखाई जा रही है। जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार वर्तमान संस्थाओं को ही सुधार कर किया जायगा तथा तृतीय योजना के अन्त तक विद्यालयों में लगे हुए कम-से-कम ८० प्रतिशत शिक्षक प्रशिक्षित हो चुकेंगे। शेष के लिये प्रशिक्षण के कम समय के क्रम क्रियान्वित किये जायेंगे। एक विचार यह भी है कि तृतीय योजना के समय प्रारम्भिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का समय बढ़ाकर सभी राज्यों में २ वर्ष कर दिया जाय।

माध्यमिक शिक्षा

तृतीय योजना में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन इन तीन दिशाओं में किया जायगा —(१) विज्ञान की शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि की जायगी, (२) द्वितीय योजना के समय जो बहुउद्देशीय विद्यालय खुले थे उन्हें सुधारा जायगा तथा कुछ नवीन विद्यालय भी खोले जायेंगे, और (३) उच्चतर माध्यमिक प्रकार के कुछ नवीन विद्यालय खोले जायेंगे तथा वर्तमान माध्यमिक विद्यालयों को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में परिवर्तित कर दिया जायगा।

द्वितीय योजना की समाप्ति पर १६,००० माध्यमिक विद्यालयों में से ११,५०० में विज्ञान की शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हो गई थीं। तृतीय योजना के अन्त तक माध्यमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर १८,००० हो जाने की आशा है। लक्ष्य यह रखा गया है कि प्रयोगशालायें स्थापित करने के लिये

विशेष सहायता देकर तथा शिक्षकों को प्रशिक्षित करके इन सभी विद्यालयों में सामान्य विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ कर दी जाय।

द्वितीय योजना की अवधि में १,५५० माध्यमिक विद्यालय बहुउद्देशीय विद्यालय बना दिये गये। इन विद्यालयों को प्रशिक्षित शिक्षक मिलने, विशेष कर हाथ के काम के विषय पढ़ाने वाले शिक्षक मिलने में कठिनाई होती है। अतः निश्चय किया गया है कि कुछ थोड़े-से बहुउद्देशीय विद्यालय खोलने के अतिरिक्त तृतीय योजना में विशेष बल पहिले से खुले हुए विद्यालयों को सुधारने तथा उन्नत करने और उनमें शिक्षा की पर्याप्त सुविधायें एकत्रित करने पर दिया जायगा। शिक्षकों की आवश्यकता पूर्ण करने के लिये चार प्रादेशिक प्रशिक्षण कॉलिज खोलने का निश्चय किया जा चुका है।

विश्वविद्यालय शिक्षा

तृतीय योजना का एक महान् कार्य विज्ञान पढ़ाने की सुविधाओं का विस्तार करना होगा। लक्ष्य यह रखा गया है कि इस योजना के अन्त तक विज्ञान के छात्रों का अनुपात लगभग ४० प्रतिशत हो जाय। विद्यालयों में विज्ञान के शिक्षकों, इन्जीनियरी तथा अन्य प्राविधिक संस्थाओं में छात्रों की उपाधि में कायरताओं आदि की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने के लिये ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है। यह लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब प्रयोगशालाओं की सुविधाओं में वृद्धि करने तथा अध्यापकों के लिए योग्य व्यक्ति खोजने के प्रयत्न शीघ्र ही आरम्भ कर दिये जायें। विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग इन समस्याओं का हल करने की ओर विशेष ध्यान दे रहा है।

इस योजना में जो नवीन कार्य-क्रम प्रारम्भ किए जायेंगे उनमें विज्ञान पढ़ाने की सुविधाओं में वृद्धि शिक्षकों की वेतन-दर-वृद्धि प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालयों का सुधार, स्नातकोत्तर अध्ययनों तथा अनुसन्धानों के लिए धन की व्यवस्था छात्रवृत्तियाँ एवं ऋण देना छात्रावासों तथा शिक्षकों के निवास स्थान बनवाने के लिए सहायता देना सायंकालीन संस्थायें सामान्य पत्राचार-शिक्षा कक्षायें चलाना पत्र-व्यवहार द्वारा पढ़ाई की सुविधा करना और प्रयास के लिये अनेक नवीन परियोजनाओं का आरम्भ करना आदि सम्मिलित है।

प्राविधिक शिक्षा

तृतीय योजना के समय ४५,००० स्नातकों तथा ८०,००० डिप्लोमाधारियों की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना है। यह सब पूर्ण हो जायगा। डिप्लोमाधारियों की जो भारी कमी रहेगी, उसे पूरा करने के लिए तृतीय योजना के आरम्भ में ही यथाशीघ्र अतिरिक्त प्रशिक्षण-सुविधाओं की व्यवस्था की जायगी।

तृतीय योजना की अवधि में डिग्री लेने वाले छात्रों के वार्षिक प्रवेश में ६ ००० की वृद्धि कर लेने का विचार है—५ ००० को इंजीनियरिंग कॉलेजों में प्रविष्ट करके तथा १ ००० को आंशिक समय में अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा पढ़ा कर। अब वार्षिक दाखिला की संख्या १९६१ में १३ २०० से बढ़कर १९६६ में १९ २०० हो जायगी। इस प्रकार चौथी योजना के समय ७५ ००० इंजीनियर स्नातकों की सम्भावित मांग इंजीनियरिंग कॉलेजों से निकले हुए और आंशिक समय में अथवा पत्र व्यवहार द्वारा पढ़े हुए स्नातकों को मिला कर पूरी हो जायगी।

इसी प्रकार डिप्लोमा लेने वाले छात्रों के वार्षिक दाखिलों की संख्या में १२ ००० की वृद्धि कर देने का विचार है—१० ००० को पोलिटेक्नीकों में प्रविष्ट करके तथा ५ ००० को आंशिक समय में अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा पढ़ा कर। तब वार्षिक दाखिलों की संख्या जो द्वितीय योजना के अन्त में २४ ०० थी वह तृतीय योजना के अन्त तक बढ़कर ३९ ००० हो जायगी। इससे चौथी योजना के समय डिप्लोमाधारियों की सब मांग पूरी हो जायगी।

सामाजिक शिक्षा तथा वयस्क साक्षरता

तृतीय योजना में भारत-सरकार ने सामाजिक शिक्षा का आयोजन किया है। अतः सरकार ने निश्चय किया है कि सामाजिक शिक्षा तथा वयस्क साक्षरता का विकास शिक्षा में लगे विशेष रूप से ग्राम के स्कूलों पंचायतों एवं स्वयंसेवी संगठनों में मिल जुलकर की जाने वाली विस्तार कार्यवाही के रूप में किया जाना चाहिए। मोटे तौर पर यह लक्ष्य होना चाहिए कि जहाँ एक कक्षा के लिये पर्याप्त संख्या में ऐसे व्यक्ति हैं जो साक्षर होना चाहते हैं उनके लिए अध्यापक एवं शिक्षा उपकरणों के रूप में सब सुविधायें उपलब्ध हो जायें। प्रत्येक शिक्षा संस्था को इस प्रयास में योग देना चाहिए इसमें भाग लेने वाले अध्यापकों को उचित पारिश्रमिक दिया जाय। साथ ही ग्राम पंचायतों और अन्य अभिकरणों को इस कार्य में पूरा योग देना चाहिए। सामाजिक शिक्षा-संगठनकर्ताओं तथा शिक्षा-अधिकारियों और निजी शिक्षा संस्थाओं को मिल जुलकर आवश्यक सुविधायें देना चाहिए। … समितियां ग्राम-पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं को सौंप चाहिए कि वे जनता में इसके लिए उत्साह उत्पन्न करें और उसे बनाए रखें … शिक्षा … कार्यक्रमों की अपनी आवश्यकताओं और अवस्था के अनुसार निरन्तर विकास करते रहें। पुरुष तथा महिलाओं में साक्षरता बढ़ाने के इस … में प्रत्येक पग पर स्थानीय नेताओं अध्यापकों और स्वयंसेवी कार्य

कक्षाओं का योग प्राप्त किया जाय। वयस्क साक्षरता के एक व्यापक कार्यक्रम के सुझावों पर आजकल विचार हो रहा है और आशा है कि तृतीय योजना की अवधि में इसमें उल्लेखनीय प्रगति होगी।

समालोचना

तृतीय योजना में शिक्षा के जिन कार्यक्रमों का गत पृष्ठों में विवरण दिया गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे देश में नयी शिक्षा के सभी *अवयवों का पुनर्गठित करके एक नये मोड़ में शासन के लिये प्रयत्नशील है।* अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये तृतीय शिक्षा के जिन कार्यक्रमों का निर्माण किया है वे प्रशंसनीय हैं। इन कार्यक्रमों में प्रमुख हैं — ६ से ११ वर्ष की आयु के समस्त बच्चों के लिये शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान की शिक्षा में विस्तार एवं सुधार, प्रत्येक स्तर पर व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा का विस्तार, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुविधाओं में सुधार एवं विस्तार, छात्रवृत्तियों की संख्या तथा अन्य सहायताओं में वृद्धि। इनके अतिरिक्त बालिकाओं की शिक्षा की अधिक उत्तम व्यवस्था की जायगी और उनको अध्यापन की अन्य सुविधायें प्रदान की जायेंगी। इस समय बालकों तथा बालिकाओं के शिक्षा-स्तरों में जो अन्तर है उसको कम किया जायगा। सभी प्राथमिक विद्यालय बेसिक स्कूलों में परिवर्तित किये जायेंगे। विश्वविद्यालयों में त्रि-वर्षीय डिग्री कोर्स पूर्ण रूप से प्रचलित किया जायगा तथा स्नातकोत्तर और अनुसंधान सुविधाओं में विस्तार एवं सुधार किया जायगा। इन सभी कार्यक्रमों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये तृतीय योजना में शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को द्वितीय योजना से दुगुने से अधिक तथा प्रथम योजना से तिगुने से अधिक कर दिया गया है। ये सभी बातें शिक्षा में भारत-सरकार की प्रबल रुचि का प्रमाण हैं।

उपसंहार

नहीं कहा जा सकता है। ६ से ११ और ११ से १४ और १४ से १७ वर्ष की आयु में स्कूल जाने वाले छात्रों की संख्या अभी क्रमशः ६१ २३ और १२ प्रतिशत है। जब इस कथन को कि—शिक्षा प्रजातन्त्र का प्रमुख आधार है और प्रजातन्त्र की सफलता बच्चों की शिक्षा पर जो देश के भावी नागरिक हैं निर्भर है—एक अखंड सत्य स्वीकार किया जाता है तो हम कह सकते हैं कि सरकार ने जन जन के लिए शिक्षा को सुलभ न बनाकर अपने दायित्व का पालन नहीं किया है।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Write a critical note on "Education in India under the First and Second Five year Plans
2. Discuss briefly the achievements in the following fields of education under the Third Five year Plan —
   - (a) Primary Education
   - (b) Social Education
   - (c) Secondary Education
   - (d) University Education and
   - (e) Technical Education

२३

नव-भारत में शिक्षा

(Education in New India)

(1947-1965)

विषय प्रवेश

स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी आशातीत प्रगति हुई है और सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं की समुचित व्यवस्था की गई है। हम उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर है। १ जुलाई १९५७ को स्थापित की गई अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Elementary Education) केन्द्र तथा राज्य-सरकारों को प्राथमिक शिक्षा के विकास एवं अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श प्रदान कर रही है। इसके फलस्वरूप स्वतन्त्रता के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा की प्रगति को अग्रांकित तालिका से जाना जा सकता है :—

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा की प्रगति —

वर्ष	मान्यता प्राप्त स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	व्यय (करोड़ रुपयों में)
१९५०-५१	२०९६७१	१८२९३९६७	५३७९१८	३६.४९
१९५५-५६	२७८१३५	२९१९७८	६९१२४९	५३.७३
१९५८-५९	२९९ ०	४१०१९९९	७१५१७७	६२.१७

योजना आयोग (Planning Commission) ने शिक्षा पैनल (Panel) ने राष्ट्रीय निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का क्रम या के लिये निर्धारित अवधि को दो क्रमों में विभाजित करने का सुझाव रखा है (१) ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों के लिये प्राथमिक और (२) ११ से १४ वर्ष के बच्चों के लिये माध्यमिक। प्रथम क्रम को १९६५-६६ तक पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है। सार्वजनीन निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के कार्यक्रम को सफल तथा व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये शिक्षा मंत्रालय ने तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रशिक्षित अध्यापकों को पर्याप्त संख्या में उपलब्ध करने की एक योजना बनाई है। इस योजना के अनुसार वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं की सामर्थ्य बढ़ाई जायगी और साथ ही यथावश्यक नवीन संस्थाओं का निर्माण किया जायगा। प्रशिक्षण की सुविधाओं के विस्तार के लिये विद्यमान अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिये केन्द्रीय सरकार राज्यों को शत प्रतिशत आधार पर अनुदान देती है।

बेसिक शिक्षा

तृतीय योजना में ५७७९० प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने, सामान्य विद्यालयों को बेसिक ढांचे के ढंग पर लाने तथा प्रशिक्षण संस्थाओं को बेसिक प्रणाली के आधार पर पुनर्गठन करने, नगर क्षेत्रों में बेसिक स्कूल खोलने और बेसिक शिक्षा को एक स्थानीय समुदाय के विकास कार्यों से सम्बद्ध करने की व्यवस्था है।

बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में अब तक जो प्रगति हुई है उसका विवरण अग्रिम तालिका में स्पष्ट हो जाता है

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद बेसिक शिक्षा की प्रगति —

मद	१९५०-५१	१९५५-५६	१९५८-५९
स्कूलों की संख्या :			
जूनियर बेसिक	३३ ३७९	४ ०३१	५ १६
सीनियर बेसिक	३५१	४८४२	४४
छात्रों की संख्या			
जूनियर बेसिक	२८ ४ ०	४ ९	५३ ८० १४५
सीनियर बेसिक	६६ ४८२	२९ ७ ८	२१ १० १०६
व्यय करोड़ रुपयों में			
जूनियर बेसिक	३ ६४	११	१२ १८
सीनियर बेसिक	२१	४०	७ ३२४

केन्द्रीय सरकार द्वारा बेसिक शिक्षा की प्रगति में विशेष रूप से योग दिया जा रहा है। जो राज्य बेसिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं उनको केन्द्रीय सरकार किए जाने वाले व्यय का ५ प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देता है। जो राज्य प्राथमिक स्कूलों को बेसिक प्राथमिक स्कूलों का रूप देना चाहते हैं उन्हें केन्द्रीय सरकार कुल व्यय का ७५ प्रतिशत देता है। नवीन बेसिक स्कूलों की स्थापना में किए गए व्यय का ५ प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाता है। केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए एक स्थायी बेसिक शिक्षा समिति स्थापित (Standing Committee of the Central Advisory Board of Education on Basic Education) की है।

माध्यमिक शिक्षा

केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एवं उसमें सुधार करने के लिए ठोस कदम उठा रही है। माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिश के अनुसार सरकार ने १९५५ में अखिल भारतीय माध्यमिक परिषद् (All India Council for Secondary Education) की स्थापना की। इसका प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करना और इस शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों को परामर्श देना है। माध्यमिक विद्यालयों के प्रशिक्षण के लिए [illegible] सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन (Central Institute of Education) का विस्तृत किया गया है। माध्यमिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के निमित्त [illegible] केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो (Central Bureau of Text Book Research) की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त [illegible] शिक्षा [illegible] के विचार [illegible] १९५८ [illegible] (Central

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा की प्रगति —

वर्ष	मान्यता प्राप्त स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	व्यय (करोड़ रुपयों में)
१९५०-५१	२,०९,६७१	१,८२,९३,९६७	५,३७,९१८	३६.८९
१९५५-५६	२,७८,१३५	२,६१,६७,३८	६,९१,२४९	५३.७३
१९५८-५९	२,९९,[illegible]	४१,[illegible],९९९	७,१५,१७७	६२.१७

योजना आयोग (Planning Commission) के शिक्षा पैनल (Panel) ने सार्वजनिक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की अवधि को दो क्रमों में विभक्त करने का सुझाव रखा है (१) ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों के लिए प्राथमिक और (२) ११ से १४ वर्ष के बच्चों के लिए माध्यमिक। प्रथम क्रम को १९६५-६६ तक पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है। सार्वजनीन निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के कार्य-क्रम को सफल तथा व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये शिक्षा मंत्रालय ने तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रशिक्षित अध्यापकों को पर्याप्त संख्या में उपलब्ध करने की एक योजना बनाई है। इस योजना के अनुसार वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं की सामर्थ्य बढ़ाई जायगी और साथ ही यथावश्यक नवीन संस्थाओं का निर्माण किया जायगा। प्रशिक्षण की सुविधाओं के विस्तार के लिए विशेषतः अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए राष्ट्रीय सरकार राज्यों को शत प्रतिशत आधार पर अनुदान देती है।

बेसिक शिक्षा

तृतीय योजना में ५७,७६[illegible] प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने, वर्तमान विद्यालयों को बेसिक ढाँचे के ढंग पर लाने, सभी प्रशिक्षण संस्थाओं को बेसिक प्रणाली के आधार पर पुनर्गठन करने, नगर क्षेत्रों में बेसिक स्कूल खोलने और बेसिक शिक्षा को हर स्थानीय समुदाय के विकास कार्यों से सम्बद्ध करने की व्यवस्था है।

बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में अब तक जो प्रगति हुई है उसका विवरण [illegible] दिया जाता है

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद बेसिक शिक्षा की प्रगति —

वर्ष	१९५०-५१	१९५५-५६	१९५८-५९
स्कूलों की संख्या :			
जूनियर बेसिक	३३ ३७६	८ ६७१	५८ १६२
सीनियर बेसिक	४१	८८८२	८ ४४
छात्रों की संख्या			
जूनियर बेसिक	२८ ८– ८०	३ ८ ६	५३ ८० ५८८
सीनियर बेसिक	६६ ८८२	२६ ७ ८	२ १० १०६
व्यय करोड़ रुपयों में			
जूनियर बेसिक	३ ६ ८	११	१२ १८
सीनियर बेसिक	२१	४०	७ ३२४

केन्द्रीय सरकार द्वारा बेसिक शिक्षा की प्रगति में विशेष रूप से योग दिया जा रहा है। जो राज्य बेसिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं उनको केन्द्रीय सरकार किए जाने वाले व्यय का ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता-अनुदान के रूप में देता है। जो राज्य प्राथमिक स्कूलों को बेसिक प्राथमिक स्कूलों का रूप देना चाहते हैं उन्हें केन्द्रीय सरकार कुल व्यय का ७५ प्रतिशत देती है। नवीन बेसिक स्कूलों की स्थापना में किये गये व्यय का ५ प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाता है। केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए एक स्थायी बेसिक शिक्षा समिति स्थापित (Standing Committee of the Central Advisory Board of Education on Basic Education) की है।

माध्यमिक शिक्षा

केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एवं उसमें सुधार करने के लिए ठोस कदम उठा रही है। माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिश के अनुसार सरकार ने १९५५ में अखिल भारतीय माध्यमिक परिषद् (All India Council for Secondary Education) की स्थापना की। इसका प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करना और इस शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों का पथ-प्रदर्शन करना है। माध्यमिक विद्यालयों के प्रशिक्षण के लिए दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा अनुसंधान संस्थान (Central Institute of Education) को विस्तृत किया गया है। माध्यमिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के निमित्त दिल्ली में केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो (Central Bureau of Text Book Research) की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त शैक्षिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के विचार से सन् १९५८ में भारत में [illegible] (Central

Institute of English) स्थापित किया गया। इस संस्था में अंग्रेजी शिक्षण के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य और शिक्षकों का प्रशिक्षण किया जाता है।

केन्द्रीय सरकार के प्रोत्साहन के फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा में जो प्रगति हुई है उसका अनुमान नीचे की तालिका से लगाया जा सकता है —

वर्ष	विद्यालयों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या	अध्यापकों की संख्या	व्यय (करोड़ रुपयों में)
१९५० ५१	२० ८८४	५२ ३२० ९	२ १२ ०००	३० ७४
१९५५ ५६	३२ ५९८	८५,२६ ५ ९	३,३८,३३३	५३ ०२
१९५८ ५९	५३ ३०२	१ ४० ७८ ३३४	४ ७१ २०७	८१ ६३

माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करते समय एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह सामने रखा गया है कि इसका झुकाव शिल्पगत तथा व्यावहारिक शिक्षा की ओर कर दिया जाय। इसके लिये ० उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में इसको शुरू करवाना और सब बहुउद्देशीय विद्यालयों में कारखाना में काम करवाना आरम्भ किया जा चुका है। हाल के वर्षों में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन और विकास के जो कार्य-क्रम पूरे किये गए हैं उनका लक्ष्य माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों का विस्तार करना और इसे शिक्षा क्रम के अन्तर्गत एक पूर्ण इकाई बनाना है। इसके लिये जो कदम उठाये गये हैं वे हैं हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में बदलना, बहुउद्देशीय स्कूलों का विकास जिनमें कई ऐच्छिक विषय पढ़ाने की व्यवस्था हो, विज्ञान पढ़ाने की सुविधाओं में विस्तार और सुधार और व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन की व्यवस्था, परीक्षा और मूल्यांकन प्रणाली में सुधार, व्यावहारिक शिक्षा सुविधाओं का विस्तार, बालिकाओं और पिछड़ी जातियों की शिक्षा-सुविधाओं में विस्तार, योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियों द्वारा प्रोत्साहन इत्यादि।

विश्वविद्यालय शिक्षा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों की संख्या में दिनानुदिन वृद्धि हुई है। देश के विभाजन से पूर्व भारत में २१ विश्वविद्यालय थे परन्तु उसके उपरान्त १९ रह गये। उस समय से सब तक आज तक २१ नए विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी है। इस प्रकार अब हमारे देश में ४० विश्वविद्यालय हैं। स्वतन्त्र भारत में इस शिक्षा की प्रगति का अनुमान अग्रांकित तालिका से लगाया जा सकता है —

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा की प्रगति

वर्ष	विश्वविद्यालय	[illegible] संस्थान	विशिष्ट शिक्षा कालेज	व्यावसायिक और तकनीकी कालेज	कला और विज्ञान कालेज	विद्यार्थी	अध्यापक	व्यय (करोड़ रुपया में)
१९५०-५१	२७	१८	९२	२०८	४९८	४ ०३ ५१९	२४ ४५३	१७ ६८
१९५५-५६	३२	३४	११२	३३६	७१२	६ ८१ १७९	७ ८६५१	२९ ७१
१९५८-५९	४०	४४	१५२	५२८	८७३	८ ६५ ६६६	५५ ५३१	४२ ८५

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में छात्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। १९५८-५९ में इनकी संख्या ८ ६५ ६६६ थी, जबकि १९५०-५१ में ४०३ ५१९ ही थी। इन आँकड़ों से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में कितनी शक्ति व्यर्थ जा रही है। विश्वविद्यालय एवं कालेजों की शिक्षा के प्रकार को उन्नत करने एवं अपव्यय को रोकने के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग कुछ उपाय कर रहा है। माध्यमिक कक्षाओं में विविधतायुक्त शिक्षा के प्रचलन से कदाचित् कालिजों में छात्रों की भीड़ कुछ कम हो जाय। यह भी प्रश्न उपस्थित हुआ है कि सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती की दृष्टि से किसी सीमा तक डिग्री पर निर्भर किया जाय या कि कुछ भी न किया जाय? इस पर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त की गई एक समिति विचार कर रही है। विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत कालिज जिनमें अनेकों में मानदण्ड असन्तोषजनक है एक और महत्वपूर्ण समस्या उपस्थित करते हैं और केन्द्रीय सरकार इस पर भी विचार कर रही है। यह बात निर्विवाद है कि माध्यमिक कक्षाओं एवं विश्वविद्यालयों के स्तर पर और सार्वजनिक सेवाओं की भर्ती की शर्तों एवं विधियों में उपयुक्त परिवर्तन से विश्वविद्यालय की शिक्षा का वृहत्तर उद्देश्य सफल एवं सिद्ध प्राप्त होगी और इस प्रकार राष्ट्रीय निर्माण में अधिक सहायता मिल सकेगी।

ग्रामीण उच्च शिक्षा

ग्रामीण उच्च शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सर्वप्रथम १९४९ के विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने आकर्षित किया। आयोग के सुझाव के अनुसार भारत सरकार ने अक्टूबर १९५६ में ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-समिति (Rural Higher Education Committee) की स्थापना की। समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को रूरल इन्स्टीट्यूट्स (Rural Institutes) में परिवर्तित करने की सिफारिश की और इनके पाठ्यक्रम के विषय में निम्नांकित सुझाव दिये—

१ ग्रामीण सेवाओं के लिए ३ वर्ष का डिप्लोमा कोर्स।
२ शिक्षण डिप्लोमा (Teaching Diploma) के लिए १ वर्ष का कोर्स।
३ शिक्षण सर्टिफिकेट (Teaching Certificate) के लिए १ वर्ष का कोर्स।
४ ग्राम्य स्वास्थ्य कार्यकर्त्री (Rural Health Workers—Women) के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट कोर्स।
५ ओवरसियरों के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट कोर्स।
६ कृषि विज्ञान के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट-कोर्स।

समिति की सिफारिश के अनुसार १० संस्थाओं को रूरल इन्स्टीट्यूट्स में परिवर्तित कर दिया गया है और उन्होंने अपना काम प्रारंभ कर दिया है। ग्राम-सेवाओं के डिप्लोमा को विश्वविद्यालय की सर्वप्रथम डिग्री के समान ही मान्यता प्रदान हो चुकी है। रूरल इन्स्टीट्यूट्स को ७३,०५,८४२ लाख रुपये के अनुदान की एवं उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ७०८ विद्यार्थियों के लिए १०,४०,४९१ लाख रुपये की छात्रवृत्ति के दिए जाने की सरकार द्वारा स्वीकृति दी गई। ग्रामीण उच्च शिक्षा के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए फोर्ड फाउन्डेशन (Ford Foundation) ने भारत सरकार को ८१.८१ लाख रुपये दिए हैं।

स्त्री शिक्षा

केन्द्रीय सरकार ने श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में मई १९५८ में स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय समिति (The National Committee of Women's Education) की नियुक्ति की। समिति का उद्देश्य स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर अपने सुझाव देना था। समिति ने जनवरी १९५९ में अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। रिपोर्ट में दिए गए मुख्य मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं:

१. स्त्री शिक्षा को देश की समस्याओं में प्रमुख स्थान प्रदान किया जाना चाहिये।

२. पुरुषों एवं स्त्रियों की शिक्षा में जो विषमता है उसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये। दोनों की शिक्षा में समानता स्थापित करना सरकार का कर्तव्य है।

३. केन्द्रीय सरकार को स्त्री शिक्षा का भार अपने ऊपर लेना चाहिए और इस शिक्षा के विकास एवं विस्तार के लिए एक योजना बना कर निश्चित समय में पूरा कर देना चाहिये।

४. केन्द्रीय सरकार समस्त राज्यों के लिए स्त्री शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करे और उसको कार्यान्वित किए जाने के लिए राज्य सरकारों को आर्थिक सहायता दे।

५. प्रत्येक शिक्षा मन्त्रालय में स्त्री शिक्षा का एक पृथक विभाग स्थापित किया जाना चाहिये।

६. प्रत्येक राज्य में स्त्री शिक्षा के प्रसार के निमित्त बालिका एवं स्त्री शिक्षा की राज्य परिषदें स्थापित की जावें।

७. माध्यमिक स्तर में स्त्री शिक्षा के प्रसार पर और विशेष ध्यान दिया जाय। इस व्यय का पूर्ण भार सरकार वहन करे।

८ द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जितना धन स्त्री शिक्षा के लिये निर्धारित किया गया है उसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपये और व्यय किये जाय।

१९५९ ई० में बालिकाओं की शिक्षा के विभिन्न क्रमों तथा वयस्क स्त्रियों की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर सरकार को परामर्श देने के लिये महिला शिक्षा की एक राष्ट्रीय परिषद् स्थापित की गई है। शिक्षा मंत्रालय ने महिलाओं की शिक्षा के लिये एक विशेष व्यवस्था की है जो तृतीय पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित की जायगी। राज्य-सरकारों को परामर्श दिया गया है कि प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग में एक उप निर्देशक अथवा सयुक्त निर्देशक नियुक्त किया जाना चाहिये जिसका काम—बालिकाओं तथा महिलाओं की शिक्षा से सम्बन्धित विशेष कार्य-क्रम बनाना और कार्यान्वित करना होगा। १९५९ ई० के बजट में बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार तथा प्रारम्भिक स्तर पर अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिये केन्द्र द्वारा आरम्भ की गई योजना के अन्तर्गत ७०.४० लाख रुपये की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त, बालिकाओं तथा वयस्क महिलाओं की शिक्षा के एक विशेष कार्य-क्रम के लिये 'राष्ट्रीय परिषद्' की सिफारिशों को अमल में लाने के लिये शिक्षा मंत्रालय द्वारा एक विशेष व्यवस्था किये जाने का विचार है। यह विशेष व्यवस्था तृतीय पंचवर्षीय योजना का अंश होगी।

विकलाङ्गों की शिक्षा

(Education of the Handicapped)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक भारत में विकलाङ्गों की शिक्षा की बहुत कम व्यवस्था थी। अन्धों की शिक्षा के लिये कलकत्ता में २, बिहार में २, बम्बई में ४, मध्यप्रान्त में १, मद्रास में ६, पंजाब में २, उत्तर प्रदेश में ६, अजमेर में १ और तुगलकाबाद (दिल्ली) में १ स्कूल था। इनके अतिरिक्त गूंगों और बहरों के लिये ३३, मानसिक दुर्बलता वालों के लिये २ और कोढ़ियों के लिये २ स्कूल थे। ११ सुधार-गृह (Reformatories) भी थे। इन स्कूलों में विकलांगों को साधारणतया बुनने कातने बेंत के काम रस्सी बनाने आदि की शिक्षा दी जाती थी। अन्धों को ब्रेल लिपि (Braille Code) द्वारा जिसका आविष्कार १९४१ में हो चुका था लिखने पढ़ने की भी शिक्षा दी जाती थी। बम्बई में अन्धों के स्कूल में टाइप राइटिंग की शिक्षा की व्यवस्था थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राज्यों के शिक्षा मन्त्रालयों एवं शिक्षा विभागों ने विकलांगों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। मई सन् १९५२

में भारतीय बाल कल्याण परिषद् (Indian Council of Child Welfare) की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य बाल-कल्याण के क्षेत्र में अनुसन्धान करना है। एक अन्य महत्वपूर्ण संस्था समाज-कल्याण बोर्ड (Social Welfare Board) है। यह किशोर अपराधियों, विकलांगों एवं बाल-कल्याण के कार्यों की देखभाल करता है। मार्च १९५५ तक बोर्ड ने देश की विभिन्न बाल कल्याण संस्थाओं को १ ५ लाख व्यय किये।

एक राष्ट्रीय परामर्श परिषद् सरकार को विकलांगों की शिक्षा, प्रशिक्षण एवं नियोजन सम्बन्धी समस्याओं पर परामर्श देती है। उच्चतर शिक्षा अथवा प्राविधिक अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए अन्धे, बहरे एवं विकलांग छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

देहरादून के अन्ध (प्रौढ़) प्रशिक्षण केन्द्र में लगभग १५० व्यक्तियों को व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाता है। अन्धे व्यक्तियों के लिये एक यामदिमाऊ ...नर जुलाई १९५४ से मद्रास में काम कर रहा है।

अक्टूबर १९५० में देहरादून में स्थापित केन्द्रीय ब्रेल मुद्रणालय द्वारा भारतीय भाषाओं में ब्रेल साहित्य प्रकाशित किया जाता है। अन्धे बालक बालिकाओं के लिए जनवरी १९५९ में स्थापित एक स्कूल में किंडरगार्टन एवं प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती है। अन्ततोगत्वा इसको माध्यमिक स्कूल में परिवर्तित कर दिया जायगा।

१९५५-५६ में भारत में ५३१४ स्कूल विकलांगों के लिये थे जिन पर २११६८१८ लाख रुपया व्यय किया जा रहा था।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 The idea of Rural Universities has recently gained much favour with the Indian leaders. Bearing in mind the recommendations of the Radhakrishnan Commission outline a scheme to make the idea a real success in the country.
2. Write a brief account of the progress of Women's Education from 1947 to 1963.
3 Write a note on The National Committee on Women's Education.
4 Describe briefly the progress of Primary, Secondary and University Education in free India.

भारतीय शिक्षा को समस्याएँ

(Problems of Indian Education)

२४

प्राथमिक शिक्षा

(Primary Education)

विषय प्रवेश

अपने युग के महान् अंग्रेज लेखक रस्किन (Ruskin) के अग्रलिखित शब्द शिक्षा जगत् को सदैव प्रभावित करते रहेंगे : "शिक्षा का अभिप्राय व्यक्तियों को उन बातों की शिक्षा देना नहीं है जिन्हें वे नहीं जानते हैं। शिक्षा का अभिप्राय है उनको इस प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा देना जैसा कि वे नहीं करते हैं।"[1] हम भले ही अपने को प्रगतिशील, आधुनिक तथा सभ्य कहें, परन्तु हमारे नैतिक आदर्शों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आज का मानव उसी प्रकार की समस्या उपस्थित करता है जैसा कि प्राचीन मानव करता था। उसने अपने बाह्य आवरण का परिवर्तन कर लिया है परन्तु उसका स्वभाव वही है। वह अधिक सुन्दर और आकर्षक वस्त्र धारण करता है परन्तु फिर भी वह प्राचीन मानव से भिन्न नहीं है। अपनी सभ्यता की चरम सीमा पर पाश्चात्य देशों के पुरुषों ने गत दो विश्व युद्धों में ऐसे जघन्य अपराध किए

---

1 Education does not mean teaching people to know what they do not know; it means teaching them to behave as they do not behave. —John Ruskin, Quoted by Sir Richard Livingstone, *Some Tasks for Education*, p. 24

हैं जिनकी समानता इतिहास में प्राप्त होना असम्भव है।[1] अतः आज के प्रजातन्त्रीय युग में सब महान् आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा द्वारा मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया जाय और उसे प्रजातन्त्र राज्य का सुयोग्य नागरिक बनाया जाय। एक उत्तम नागरिक के रूप में उसे दूसरों के साथ रहना और उनके अधिकारों तथा भावनाओं का आदर करना सीखना है। उसे समाज की प्रगति में योग देना है अन्यथा समाज का जीवित रहना असम्भव है। समाज के विनाश में हमारा विनाश भी अवश्यम्भावी है।

आज हमारा देश भी एक प्रजातन्त्र राज्य है और उसको सफल बनाने के लिए उत्तम एवं आदर्श नागरिकता की शिक्षा देना अनिवार्य है। इस शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी अधिक है क्योंकि भारत की केवल २३.७% जनसंख्या साक्षर है।[2] भारतीयों को एक विशेष स्तर तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान करके ही उन्हें देश के योग्य नागरिक बनाने की आशा की जा सकती है और भारत को सफल प्रजातन्त्र बनाने का स्वर्णिम स्वप्न पूर्ण हो सकता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारतीय संविधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है, "राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत सभी बच्चों के लिए जब तक वे चौदह वर्ष की आयु को पूर्ण नहीं कर लेंगे निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"[3] यह शिक्षा बेसिक प्रकार की होगी। इसी आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा का भवन निर्मित किया जायगा। हमारी सरकार इस दिशा में सक्रिय पग उठा रही है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग (Age Group) के केवल ३० प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे परन्तु तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक इस वर्ग के ७६.४ प्रतिशत तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय वर्ग के ... ६ प्रतिशत बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो जायगी।[4]

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को योग दे रहा है। जो राज्य प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं उनको

---

1. "In the last years the West at the height of its civilization has seen human nature guilty of crimes to which history has no parallel."—Sir Richard Livingstone op cit p 27
2. Fir Year Book of Education p 913
3. "The state shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution for the free and compulsory education for all childern until they complete the age of fourteen years."—Article 45 of the Constitution adopted by F e India on January 26 1950
4. Third Five Year Plan p 574

केन्द्रीय सरकार किए जाने वाले कुल व्यय का ३० प्रतिशत वार्षिक सहायता अनुदान के रूप में देती है। अतः प्राथमिक शिक्षा में प्रगति तो अवश्य हुई है परन्तु उसे उत्साहवर्द्धक नहीं कहा जा सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा के मार्ग में अनेकों समस्याएं, बाधाएं और कठिनाइयाँ हैं, जिनकी उपस्थिति में शिक्षा का सरल तथा त्वरित प्रसार कठिन ही नहीं अपितु असम्भव प्रतीत होता है। हम प्राथमिक शिक्षा की इन समस्याओं और उनके समाधान पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं।

समस्याएँ और उनका समाधान

(Problems and Their Solutions)

१ समस्या—सरकार की दोषपूर्ण नीति (Faulty Policy of Government)

१९५० में स्वतन्त्र भारत के संविधान में घोषित किया गया था कि १० वर्ष की अवधि में ६ से १४ वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करने का प्रयास किया जायगा। परन्तु खेद का विषय है कि सरकार द्वारा इस दिशा में अभी तक अति न्यून सफलता प्राप्त की गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय ६ से ११ वर्ष वाले बच्चों के ३० प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। मार्च १९६६ के अन्त तक ७६ प्रतिशत ७६.४ हो जायगा और ११ से १४ वर्ष वाले बच्चों के ८६ प्रतिशत बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो जायगी। ये आँकड़े इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि सरकार घोषित किए हुए लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सरकार की नीति आदर्शवाद पर आधारित है। बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। इसी ध्येय से प्रेरित होकर प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। परन्तु भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में जहाँ धन का आर्थिक अभाव है बेसिक स्कूलों की सम्पूर्ण योजना को क्रियान्वित करना दुष्कर है। सरकार ने भी इस समस्या की गुरुता का अनुभव करके यह बात स्वीकार कर ली है कि सम्पूर्ण देश में कुछ ही समय में बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना सम्भव नहीं है। परन्तु फिर भी सरकार प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए जाने वाले धन का अधिकांश भाग बेसिक शिक्षा पर व्यय कर रही है। ऐसी स्थिति में हम कहने को बाध्य हैं कि सरकार की नीति अब भी आदर्शवाद पर आधारित है और वह व्यावहारिक रूप में काम करके प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए सर्वोत्तम पग नहीं उठा रही है।

समाधान—शिक्षा की निश्चित नीति (Definite Educational Policy)

सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि सरकार अपनी प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी नीति को पूर्ण रूप से निश्चित कर ले। सरकार घोषित कर चुकी है कि भारत की राष्ट्रीय शिक्षा बेसिक शिक्षा के प्रकार की होगी। परन्तु इसके साथ-साथ सरकार इस बात को भी स्वीकार कर चुकी है कि कुछ ही समय में सम्पूर्ण देश में बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना असम्भव है। ऐसी दशा में सर्वोत्तम नीति यही हो सकती है कि अनिवार्य शिक्षा और बेसिक शिक्षा का प्रसार पृथक रूप से किया जाय। प्राथमिक विद्यालयों में जो भी शिक्षा दी जा रही है उसी को अनिवार्य बनाया जाय। उस शिक्षा को धन और सुविधानुसार बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जाय। यदि सरकार ने इस सिद्धान्त पर अपनी अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी नीति का निर्माण नहीं किया, तो निकट भविष्य में अनिवार्यता की आशा करना व्यर्थ है।

२ समस्या—राजनीतिक कठिनाइयाँ (Political Difficulties)

शिक्षा प्रजातन्त्र का आधार है। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये नागरिकों को शिक्षित करना अनिवार्य है। शिक्षा के अभाव में वे स्वतन्त्र नागरिकों के रूप में अपने कर्त्तव्यों का सफलतापूर्वक पालन नहीं कर सकेंगे। इस दृष्टिकोण से भारत में एक विशेष स्तर तक प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य होना आवश्यक है। पर अभी तक सरकार इस ओर अपना पूर्ण ध्यान नहीं दे पायी है। कारण यह है कि सत्ता हस्तान्तरण के समय से लेकर आज तक उसके समक्ष कितनी ही कठिन समस्यायें उपस्थित रही हैं और अब भी हैं, यथा—देशी राज्यों की समस्या, शरणार्थियों की समस्या, कश्मीर की समस्या, विभिन्न भाषा भाषी राज्यों की समस्या, खाद्यान्न की समस्या, चीन की समस्या इत्यादि। इन समस्याओं ने सरकार के ज्ञान, धन और ध्यान पर अधिकार कर रखा है कि अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी सरकार को शिक्षा के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का अवकाश नहीं प्राप्त हुआ है।

समाधान—सरकार का पूर्ण ध्यान (Close Attention of Government)

ऊपर जिन राजनैतिक कठिनाइयों का उल्लेख किया गया है, वे सब मान्य हैं। यद्यपि उनमें से कुछ समस्यायें [illegible] समक्ष गम्भीर रहेंगी। सम्भव है कि कुछ अन्य समस्यायें भी उपस्थित हो जायें। पर इसका अभिप्राय यह तो नहीं है कि इन समस्याओं की आड़ में सरकार अपना ध्यान [illegible]। यदि सरकार पर [illegible] देश को [illegible] करने का उत्तरदायित्व है तो उस [illegible] शिक्षा के प्रसार में [illegible] करने का भार

भी उसी पर है। फिर शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता का कारण समझ में आना कुछ कठिन प्रतीत होता है। यदि सरकार इन राजनैतिक कठिनाइयों की उपस्थिति में देश के औद्योगीकरण, आवागमन के साधनों के प्रसार आदि कार्य को कर सकती है तो शिक्षा के कार्य से उपेक्षा क्यों? कारण जैसा कि सपदन ने लिखा है यह समझ में आता है "भारत की राजनैतिक स्थिति अनिवार्य शिक्षा-योजना का कार्यान्वित शीघ्र हो चाहती है पर इस के राजनीतिज्ञ इसके लिए पर्याप्त उत्सुक नहीं है।" इन आलोचनाओं से वे तभी मुक्त हो सकते हैं जब वे प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रति अपना पूर्ण ध्यान दें।

३ समस्या—दोषपूर्ण शिक्षा प्रशासन (Faulty Administration of Education)

भारत के अधिकांश राज्यों में प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगर पालिकाओं तथा जिला परिषदों पर है। जब यह कार्य उन्हें सौंपा गया था तब यह आशा की गई थी कि इससे शिक्षा का प्रसार अधिक शीघ्र गति से होगा। परन्तु समय की गति ने यह सिद्ध कर दिया है कि ऐसा नहीं हुआ। साधारणतः इन स्थानीय संस्थाओं में कार्य करने की अभिरुचि तथा धन का अभाव है। वे अनिवार्य शिक्षा का व्यय भार वहन करने के लिए स्थानीय कर ले सकती हैं परन्तु ऐसा करने में ये सदस्य आगामी निर्वाचन में अपना पद रिक्त करने के विचार से सशंकित हो उठते हैं। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सभी अधिनियम समयानुकूल न होकर प्राचीन हो गए हैं। फिर ऐसी कोई केन्द्रीय संस्था या शक्ति नहीं है जो स्थानीय संस्थाओं को इन्हें कार्यान्वित करने के लिए बाध्य करे। ऐसी स्थिति में ये अधिनियम केवल पुस्तकों में लिखे हुए ही रह गए हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में तो वृद्धि की गई है, परन्तु उसके अनुपात में शिक्षा निरीक्षकों की वृद्धि नहीं की गई है। शिक्षा प्रशासन की ऐसी दोषपूर्ण व्यवस्था अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में महान् बाधक सिद्ध हो रही है।

समाधान—शिक्षा प्रशासन में सुधार (Reform in Administration of Education)

इस समय प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं के ऊपर है परन्तु इन संस्थाओं की उदासीनता तथा असमर्थता के कारण प्राथमिक शिक्षा के प्रसार

की गति अत्यन्त मन्द है। नागरिकों को शिक्षित करने का भार राष्ट्र के ऊपर होता है। अतः यह आवश्यक है कि प्राथमिक शिक्षा के पुनीत कार्य का भार सरकार स्वयं अपने ऊपर ले। यदि किन्हीं कारणों वश सरकार इस उत्तरदायित्व को नहीं सम्भाल सकती है तो उसे एक ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय संस्था स्थापित कर देनी चाहिये जो एक निश्चित अवधि में जिला परिषदों तथा नगर पालिकाओं को अपने क्षेत्रों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये बाध्य करे।

४ समस्या—शिक्षकों का अभाव (Dearth of Teachers)

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में शिक्षकों की वांछित संख्या उपलब्ध न होने के कारण सरकार के समक्ष एक अति जटिल समस्या उपस्थित है। अनुमान लगाया गया है कि शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए २८ लाख शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु इनमें से १९५८-५९ में केवल ६,९५,२४० शिक्षक ही उपलब्ध थे।[1] १९५५-५६ में प्रति शिक्षक के पास औसत रूप में शिक्षा देने के लिये ३ छात्र थे। नगर विद्यालयों की अपेक्षा ग्राम विद्यालयों में शिक्षकों का अधिक अभाव है। शिक्षकों की वांछित संख्या प्राप्त न होने तथा विद्यालयों में उनका अभाव होने का प्रमुख कारण यह है कि नवयुवकों के लिये अध्यापन कार्य आकर्षक नहीं है। प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों का वेतन इतना निम्न है कि किसी योग्य तथा सुशिक्षित नवयुवक का ध्यान उधर आकृष्ट ही नहीं होता है। नगरों में तो उनको धनोपार्जन के अन्य साधन प्राप्त रहते हैं परन्तु ग्रामों में इस बात की आशा करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त ग्रामों की अपेक्षा नगरों में सुगम जीवन व्यतीत करने के अधिक उत्तम साधन उपलब्ध होते हैं। इन्हीं सब बातों पर विचार करके युवक अध्यापक ग्राम विद्यालयों में कार्य नहीं करना चाहते हैं। जहाँ तक अध्यापिकाओं का प्रश्न है वे ग्राम विद्यालयों में कार्य करने का विचार ही नहीं करती हैं जब तक कि उनका निवास-स्थान उसी ग्राम में न हो जिसमें कि विद्यालय है। ऐसी स्थिति में अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं का प्राथमिक विद्यालयों में स्थायी अभाव होना स्वाभाविक है। इस अभाव की उपस्थिति में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

---

1 *First Year Book of Education*, p 935

2 *Education in India* 1955-56 p 71

समाधान—अध्यापकों की पूर्ति (Suppl) of Teachers)

शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए शिक्षकों की पर्याप्त संख्या उपल नहीं है परन्तु इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। प्रारम्भ में न्यूनतम वेतन पर आवश्यक योग्यताओं के शिक्षकों को रखा जा सकता है चाहे वे अप्रशिक्षित ही क्यों न हों। उनमें से प्रतिवर्ष एक निश्चित संख्या को विद्याध्ययन करने अपनी योग्यताओं को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है अथवा उन्हें राज्य व्यय पर प्रशिक्षण विद्यालयों में दीक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जा सकता है। अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करना जब तक कि आवश्यक शिक्षकों की आवश्यक संख्या उपलब्ध न हो जाय विवेकपूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता है। सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों का अधिक वेतन और सुविधायें तथा अधिक सम्मान प्रदान करके अध्यापन कार्य के प्रति आकर्षित किया जाय।

५ समस्या—शिक्षण का निम्न स्तर (Low Standard of Teaching)

प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों की न्यूनता है। १९६०-६१ में विद्यालयों में ६,१०,००० व्यक्ति अध्यापन कार्य कर रहे थे जिनमें से २,६१,५०० अध्यापक तथा अध्यापिकायें अप्रशिक्षित थे। अप्रशिक्षित अध्यापक शिक्षण विधियों से परिचित नहीं होते हैं। समस्त शिक्षकों में से ५ प्रतिशत से भी कम हाईस्कूल अथवा मिडिल पास या उत्तीर्ण हैं। चाहे सभी प्राथमिक स्तर पर शिक्षित हैं। धनाभाव के कारण प्राथमिक विद्यालय शिक्षण के उपकरणों का प्रयोग न कर पाते हैं।[1] इन समस्त कारणों के फलस्वरूप शिक्षा अरुचिकर तथा निम्न स्तर पर है। और बच्चे तथा उनके अभिभावकों को आकृष्ट करने में असफल रहती है।

समाधान—अध्यापक प्रशिक्षण एवं सहायता अनुदान (Teachers Training and Grant in-Aid)

शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक विद्यालयों में केवल प्रशिक्षित अध्यापकों की ही नियुक्ति की जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि अधिक संख्या में प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाय। इस बात का ध्यान रखा जाय कि ये प्रशिक्षण विद्यालय नगरों में ही निर्मित न किये जायें अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थापित किये जायें जिससे समीपवर्ती स्थानों के प्रशिक्षणार्थी के लिए ...पास ही मिलें उनसे कम

1 *Third Five-year Plan* p 575

धन व्यय करके शिक्षित हो सके। उत्तम तो यही होगा कि छात्राध्यापकों के समस्त प्रशिक्षण का व्यय भार सरकार या स्थानीय परिषदें अपने ऊपर लें। पर यह विचार कि केवल प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति से ही शिक्षण का स्तर पर्याप्त ऊँचा हो जायगा कोरी कल्पना से अधिक और कुछ न होगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि प्राथमिक विद्यालयों को मुक्त हस्त से शिक्षण उपकरणों को क्रय करने के लिये सहायता अनुदान दिया जाय। शिक्षा के साधनों के अभाव में उत्साही और प्रशिक्षित अध्यापक भी अपने शिक्षण स्तर को ऊँचा उठाने में असमर्थ पायेंगे।

६ समस्या—धनाभाव (Dearth of Money)

प्राथमिक विद्यालयों के समक्ष आर्थिक समस्या अति विकराल रूप में उपस्थित रहती है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों पर है। सरकार ने ऐसा व्यय पूर्ण दायित्व तो उन पर रख दिया परन्तु उनके लिये धन की कोई व्यवस्था नहीं की। उनके व्यय के आय-साधन सीमित हैं जिनसे वे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाकर उसका व्यय भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। ब्रिटिश शासन-काल में प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का ३० प्रतिशत सरकार द्वारा दिया जाता था। स्वतन्त्र भारत में इस धन राशि को ३३ प्रतिशत कर दिया गया है।[1] सरकार द्वारा दी जाने वाली इस न्यून आर्थिक सहायता को शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये किसी प्रकार उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः देश के नागरिकों को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व राज्य पर होता है न कि स्थानीय संस्थाओं पर। फिर यदि आर्थिक समस्या से ग्रसित स्थानीय संस्थायें शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विचार नहीं करती हैं तो इसके लिये उन पर दोषारोपण करना सर्वथा अनुचित है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

धनाभाव के कारण अनिवार्य शिक्षा का प्रसार अबाध गति से नहीं हो रहा है। यदि सम्पूर्ण देश में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना को ६ से १४ वर्ष तक की आयु के समस्त बच्चों के लिये क्रियान्वित कर लिया जाय तो प्रतिवर्ष २९६.४ करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। शिक्षा पर इतना धन व्यय करना इस निर्धन देश की शक्ति से परे की बात है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा पर ९३ करोड़ रुपया व्यय किया गया परन्तु अन्य

1 Education in India 1952-53 Vol I p 27
2 Ibid 1953-54 Vol I p 116

विकास कार्यों के लिये धन की आवश्यकता होने के कारण द्वितीय योजना में इस राशि को घटाकर ८६ करोड़ कर दिया गया।[1] धनाभाव की ऐसी दशा में हमारा ध्यान प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि पर नहीं होना चाहिये अपितु हम इस बात का प्रयास करना चाहिये कि कम धन व्यय करके अधिक से अधिक बच्चों को शिक्षित किया जा सके जिससे वे अज्ञानता के भार से न मरें। इस सम्बन्ध में गोखले के ये शब्द उल्लेखनीय हैं "जन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य अशिक्षा का नाश करना है। शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि महत्वपूर्ण अवश्य है, पर इस पर तभी बल दिया जाना चाहिये जब अज्ञानता का विनाश हो जाय।"[2] इस कथन में निहित सत्य को ध्यान में रखकर जो धन प्राथमिक विद्यालयों को वैसिक रूप में परिवर्तित करने में व्यय किया जा रहा है उसे पूर्ण रूप से तो नहीं पर अधिकांश रूप में समाप्त कर देना श्रेयस्कर होगा। सर्वप्रथम अनिवार्य शिक्षा पर न कि वैसिक शिक्षा के रूप में अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिये। कुछ भारतीय शिक्षाविदों का मत है कि प्राथमिक शिक्षा की अवधि को ४ वर्ष रखके भी व्यय को कम किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया जर्मनी जापान मिस्र चीन और रूस ने प्राथमिक शिक्षा की अवधि को ४ वर्ष रखकर ही जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार किया।[3] दत्तई का सुझाव है कि अनिवार्य शिक्षा के व्यय को कम करने के लिये धनी व्यक्तियों के बच्चों से शुल्क लिया जाय और व्यक्तिगत प्राथमिक विद्यालयों को बच्चों से शुल्क लेने की अनुमति दे दी जाय। यदि इन सभी सुझावों को सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी जाए तो अनिवार्य शिक्षा की आर्थिक समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है।

७ समस्या—विद्यालय-स्थापना एवं विद्यालय भवन (Establishment & Buildings of Schools)

अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में एक अन्य कठिनाई विद्यालयों की स्थापना है। नगरों में तो नहीं परन्तु गाँवों में इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करना दुष्कर प्रतीत होता है। भारत ग्राम प्रधान देश है परन्तु हर किसी ग्राम में विद्यालय नहीं है। १९४१ की जन गणना के अनुसार भारत में

---

१ द्वितीय पंचवर्षीय योजना पृ० ४६८

2. Primary purpose of mass education is to banish illiteracy. The quality of education is a matter of importance that comes only after illiteracy has been abolished.

—Gokhale *Speeches* p. 65

3 Dinker Desai *Primary Education in India* pp. 31 32

४ १८ ०८८ ग्राम हैं। इनमें से ३ ००२० ग्राम ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है।[1] शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये लगभग ४ लाख ग्रामों में जिनमें ५०० से कम जनसंख्या वाले भी ग्राम सम्मिलित हैं प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना आवश्यक है। परन्तु इतने विद्यालयों के निर्माण के लिये धन एकत्रित करना सरल नहीं है। फिर ५०० से कम की जनसंख्या वाले ग्रामों में विद्यालय निर्मित करना अधिक बालकों की शिक्षा के लिये हितकर सिद्ध नहीं होगा। यह एक ऐसी समस्या है जिसने देश के प्रशासकों तथा शिक्षाविदों के समक्ष एक जटिल प्रश्न उपस्थित कर दिया है।

विद्यालय भवनों की एक अन्य समस्या है। आज हमारे देश में केवल ३० प्रतिशत विद्यालय भवन ही ऐसे हैं जिन्हें उपयुक्त कहा जा सकता है। शेष सभी विद्यालय किराये के मकानों, मन्दिरों, धनी व्यक्तियों के गृहों, अध्यापकों के निवास स्थानों आदि में चल रहे हैं। इनमें जगह का अभाव है और छात्रों के बैठने तथा खेलने के लिये उचित व्यवस्था नहीं है। अनेकों विद्यालय कोलाहलपूर्ण अथवा अवांछनीय वातावरण में स्थित हैं तथा उनके भवनों में धूप एवं वायु का प्रवेश न होने के कारण छात्रों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि शिक्षा को अनिवार्य करके छात्रों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय तो उन्हें शिक्षा कहाँ दी जाय? निःसन्देह उत्तर होगा कि नवीन भवनों का निर्माण किया जाय। पर इसके लिये धन जुटाना—जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं अत्यन्त कठिन है।

समाधान : कुछ सुझाव (Some Suggestions)

(१) ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की समस्या अति जटिल है। नये विद्यालयों के निर्माण के लिये धन का अभाव है। फिर अनेकों ग्राम दूर-दूर तथा छोटे हैं। यदि विद्यालयों के निर्माण के लिये धन प्राप्त हो सकता है तो उन्हें ऐसे ग्रामों में प्रथम निर्मित किया जाय जहाँ उनकी आवश्यकता अधिक है। जो ग्राम छोटे हैं उनके मध्य में विद्यालय निर्माण के लिये ऐसे ग्राम को चुना जाय जो सभी ग्रामों के बच्चों के लिये सुविधाजनक हो। परन्तु यदि धन उपलब्ध नहीं है तो अनिवार्य शिक्षा का कार्य इसलिये स्थगित नहीं कर देना चाहिये कि छात्रों के लिये विद्यालयों का निर्माण नहीं किया जा सकता है। बच्चों को जब शिक्षित ही किया जाना है तो मन्दिरों, मस्जिदों, पंचायतघरों

---

१ भारत १९६० पृ० ११ (१९६१ की जनगणना के अनुसार ये आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।)

सरायों, जमींदारों की चौपालों अथवा अन्य किसी उपयुक्त स्थान पर शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इंगलैण्ड में तो विद्यालयों के अभाव में बच्चों को रस के वृक्षों के नीचे बैठाकर शिक्षा दी जाती थी।[1] फिर प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति अथवा शान्तिनिकेतन की प्रणाली के अनुसार वृक्षों की छाया में बच्चे विद्यार्जन कर सकते हैं। आयरलैण्ड में तो कुछ समय पूर्व तक इसी पद्धति को अपनाया गया था।[2] भारत को भी विद्यालयों के निर्माण पर अपना ध्यान केन्द्रित न करके देश के भावी नागरिकों को ज्ञान के पथ पर अग्रसर करने का ध्येय अपनाना चाहिए।

(२) पाली विधि (Shift System) के प्रचलन द्वारा अध्यापकों तथा विद्यालय भवनों के अभाव पर पर्याप्त मात्रा में विजय प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि इस विधि को आदर्श रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है तथापि अध्यापकों एवं विद्यालय भवनों के अभाव की वर्तमान स्थिति में इसको अपनाना ही श्रेयस्कर होगा। पाली विधि के अनुसार एक ही भवन में विभिन्न छात्रों को दो अधिवेशनों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए बुलाया जा सकता है—प्रथम प्रातः ७.० बजे से ११.३० बजे तक और द्वितीय १ बजे से ५ बजे तक। पाली विधि को विश्व के अनेक देशों ने शिक्षा प्रसार की प्रारम्भिक अवस्था में अपनाया है। इन देशों में—जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान आदि हैं। आज भी इस प्रथा का प्रचलन आस्ट्रिया, न्यूजीलैण्ड, टर्की, मिस्र, चीन, लंका, नेदरलैंड आदि देशों में है।[3] भारत में इस प्रणाली का प्रचलन किया जाना चाहिए। यदि ऋतुओं, उत्सवों तथा स्थानीय आवश्यक कार्यों को ध्यान में रखकर विद्यालयों के अधिवेशनों का समय निश्चित कर दिया जाय तो इस प्रणाली से भारत के बच्चों में ज्ञान का प्रसार अति सरलता पूर्वक किया जा सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि शिक्षकों को कुछ अधिक कार्य करना पड़ेगा। पर यदि उनको कुछ अधिक वेतन दे दिया जायगा तो उनको अधिक कार्य करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।

(३) अनिवार्य शिक्षा के शीघ्र विस्तार के लिए कतिपय भारतीय शिक्षा विशेषज्ञों का मत है कि कक्षाओं में छात्रों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय। इस समय प्रायः शिक्षक को औसत रूप में एक कक्षा में ३३ छात्रों को शिक्षा देनी पड़ती है।[4] अतः पाश्चात्य देशों में प्रति शिक्षक को शिक्षण के लिए ३३

म नहीं अधिक छात्र थ । उदाहरणार्थ—१६२२ वर्ष इंगलैण्ड म प्रत्यक कक्षा म छात्रा की सख्या ६० तक थी और १६३२ तक इटला म भी यही सख्या थी। गाट मघ ने चीन म प्राथमिक विद्यालया की कक्षाओ क लिये भी ६० छात्रा की सिफारिश की थी। अत जिन भारतीय प्राथमिक विद्यालयों में एक अध्यापक एक ही कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा देता है वहाँ छात्रा की सख्या म निश्चय रूप से वृद्धि की जा सकती है। हाँ जिन विद्यालयों म एक अध्यापक एक स अधिक कक्षा को एक ही समय म शिक्षा देता है वहाँ इस योजना को क्रियान्वित करना उचित नहीं होगा।

८ समस्या—अनुपयुक्त पाठ्यक्रम (Unsuitable Curriculum)

प्राथमिक विद्यालय का पाठ्य क्रम नकारा तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनकूल नहीं है। इसम पुस्तकीय शिक्षा पर बल दिया जाता है और छात्र को अपनी रचनात्मक शक्ति का विकास करने तथा कार्य करके सीखने क सिद्धान्त की अवहेलना की जाती है। पाठ्य-क्रम मे इन दोषा का निराकरण करन क लिए सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करन का निश्चय किया है। इसम पाठ्य-क्रम के दोष तो अनिवार्य रूप से दूर हो जायेंगे परन्तु बेसिक शिक्षा की सम्पूर्ण योजना का सम्पूर्ण देश मे एक साथ न तो क्रियान्वित किया जा सकता है और न किया जा सका है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

प्राथमिक विद्यालयो का पाठ्यक्रम एक मार्गीय तथा अपरिवर्तनीय है। स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित न होने के कारण उसम किसी प्रकार की उपादेयता नहीं है। यह ठीक है कि सरकार बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कार्यान्वित करके शिक्षा को रोचक बनाने का प्रयास कर रही है परन्तु इस कार्य में अभी कोई समय लगेगा। अत उस समय तक क लिये स्थानीय आवश्यकताओ क अनुसार प्राथमिक विद्यालयो म किसी कला-कौशल की शिक्षा दी जाय। इससे बच्चो की शिक्षा म रुचि बढ़ेगी और व अपने अर्जित ज्ञान स कुछ लाभ भी उठा सकेंगे। यह आवश्यक नहीं है कि इस कौशल की शिक्षा देने क लिए कोई विद्वान् तथा प्रशिक्षित अध्यापक ही रखा जाय। इस कार्य के लिये किसी भी स्थानीय तथा अनुभवी व्यक्ति की सेवाओ स लाभ उठाया जा सकता है।

९ समस्या—अपव्यय एवं अवरोधन (Wastage and Stagnation)

प्राथमिक शिक्षा क स्तर पर सर्वाधिक अपव्यय (Wastage) एवं अवरोधन (Stagnation) है। प्रत्येक १०० छात्रा में स सन् १६५२ ५३ म

कक्षा १ में से केवल ४१ छात्र १९५५-५६ में कक्षा ४ में पहुँचे।[1] इस प्रकार ५७ प्रतिशत छात्र परीक्षाओं में असफल होने अथवा अपने अभिभावकों का काम करने तथा धनोपार्जन करके सहायता देने के लिये विद्यालयों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर गये। दुर्भाग्य से विद्यालयों की उपकरण हीनता, असन्तोषजनक स्थिति तथा आकर्षण रहित भवन—उनको सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रलोभित न कर सके। इस बात की परम आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा में 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन' को रोका जाय अन्यथा अनिवार्य शिक्षा-योजना अथवा शिक्षा प्रसार की अन्य किसी भी योजना का सफल होना असम्भव है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

अपव्यय एवं अवरोधन निवारण के कुछ उपाय अग्रलिखित हो सकते हैं —
(१) शिक्षा-व्यवस्था में सुधार किया जाय ( ) शिक्षण विधि को मनोरंजक बनाया जाय (३) उत्तम विद्यालय भवनों का निर्माण किया जाय (४) विद्यालय के अन्दर और बाहर के वातावरण में सुधार किया जाय (५) पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय (६) परीक्षा प्रणाली में सुधार किया जाय (७) छात्रों की स्वास्थ्य उन्नति की जाय (८) अभिभावकों को शिक्षित किया जाय, और (९) सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जाय।

(विस्तृत अध्ययन के लिये अपव्यय एवं अवरोधन अध्याय देखिये।) ५ ५१३ पर

१० समस्या—प्राकृतिक बाधायें (Natural Obstacles)

अनिवार्य शिक्षा के प्रसार में भौगोलिक कठिनाइयाँ अत्यन्त बाधक सिद्ध हो रही हैं। हिमाचल प्रदेश, काश्मीर, गढ़वाल और अल्मोड़ा आदि पर्वतीय क्षेत्रों में जनसंख्या कम होने के कारण ग्राम दूर दूर पर स्थित हैं। यही बात राजस्थान के रेतीले प्रदेश के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। फिर मध्य प्रदेश, मध्य भारत तथा दक्षिण में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो जंगलों से घिरे हुए हैं और जहाँ की जनसंख्या छोटे एवं सुदूर ग्रामों में बिखरी हुई है। उपरोक्त सभी प्रदेशों में आवागमन के साधनों का अभाव है और शीत, उष्णता अथवा भारी वर्षा—छात्रों के मार्गों में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित करते हैं। क्योंकि भारत के प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं है अतः इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके दूसरे ग्राम-विद्यालयों में ज्ञानार्जन करने के लिये जाना जिनका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है छात्रों एवं उनके अभिभावकों द्वारा बुद्धिमानी का काम नहीं समझा जाता है।

---

1 *Education in India* 1955-56 p 64

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

जिन प्राकृतिक बाधाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है उन पर भारत ऐसे विशाल देश में विजय प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। पर स्वतन्त्रता के उपरान्त ये बाधायें विस्मृति के गर्त में समाती जान पड़ने लगी हैं। पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत आवागमन के साधनों में श्लाघनीय वृद्धि हुई है। अनेकों सुदूर ग्रामों में सड़कों का निर्माण हो गया है। पर अब भी अनेकों स्थान ऐसे हैं जहाँ प्राकृतिक बाधायें बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा में अवरोध उपस्थित करती हैं। ऐसे स्थानों पर यदि वहीं के बच्चों की शिक्षा का भार किसी स्थानीय व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो उनके आवागमन का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

११ समस्या—सामाजिक कुरीतियाँ (Social Evils)

धर्मान्धता अन्धविश्वास रूढ़िवादिता अशिक्षा तथा प्राचीन परम्पराओं में आस्था रखने के परिणामस्वरूप भारत का कोई भी ऐसा कोना नहीं है जहाँ के निवासी नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओं से ग्रसित न हों। उदाहरणार्थ—बाल विवाह अस्पृश्यता पर्दा प्रथा धार्मिक सिद्धान्त आदि ऐसी कठोर बातें हैं जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में ऊँची दीवारें खड़ी कर दी हैं। बाल विवाह निषेध अधिनियम की चिन्ता न करके आज भी प्राचीन विचारों के अनेकों व्यक्ति बालकों तथा बालिकाओं का अल्प आयु में विवाह करके उन्हें शिक्षा से वंचित कर देते हैं। विधान द्वारा सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये जाने पर भी आज अनेकों हरिजन छात्रों को किसी न किसी बहाने से विद्यालयों में प्रवेश करने से निषेध कर दिया जाता है। आज भी अनेकों हिन्दुओं तथा मुसलमानों का दृढ़ विश्वास है कि बालिकाओं को या तो शिक्षा दी ही नहीं जानी चाहिए या यदि दी भी जाय तो अति न्यून। पर्दा प्रथा के कारण आज भी ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है जो प्राथमिक विद्यालयों में भी सह शिक्षा के विरोधी हैं। जब जनता का दृष्टिकोण ऐसा है तब शिक्षा को अनिवार्य बनाना निस्सन्देह एक गम्भीर समस्या है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

सामाजिक कुरीतियों के चंगुल में फँसे हुए भारत को मुक्ति दिलाने के लिये कुछ उपायों का सुझाव दिया जा सकता है। प्रथम शिक्षा का प्रसार किया जाय क्योंकि सामाजिक कुरीतियाँ अशिक्षा के कारण ही पल्लवित होती हैं। शिक्षा मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित करती है और उसकी तर्कशक्ति

प्रभाव करती है। ऐसी दशा मे सामाजिक कुरीतियो का उन्मूलन सरलता पूर्वक हो जायगा। द्वितीय सरकार और समाज सेवकों के द्वारा पत्रपत्रिकाओं का प्रदर्शन करके व्याख्यान देकर के और सामाजिक कुरीतियो की हानियो के उदाहरण देकर भरपूर प्रचार किया जाय। तृतीय शिक्षित नवयुवक और नव युवतियाँ यह बीड़ा उठा लें कि वे अपने घरों पड़ोसों सम्बन्धियों और परिचित व्यक्तियों को सामाजिक कुरीतियों का अनुसरण नहीं करने देंगे।

१२ समस्या—भाषा (Language)

अनिवार्य शिक्षा की अन्तिम समस्या भाषा की है। १९६१ की जनगणना के अनुसार देश में ८४५ भाषाएँ अथवा बोलियाँ बोली जाती हैं।[1] देश के प्रशासकों के समक्ष समस्या यह है कि इतनी विभिन्न भाषाएं बोलने वाले बच्चों को शिक्षा किस भाषा के माध्यम द्वारा दी जाय? भारतीय संविधान में जिन १४ भाषाओं का उल्लेख किया गया है वे ऐसी हैं जिनको शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है परन्तु ऐसी अनेक भाषाएं हैं जिनको इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—ऐसी अनेकों अनुसूचित तथा आदिम जातियाँ (Scheduled Castes and Scheduled Trib s) हैं जिनका न तो कोई साहित्य है और न कोई व्याकरण। फिर उनकी संख्या भी ७.७२ करोड़ है।[2] इनके अतिरिक्त ४० लाख निरधिसूचित आदिम जातीय लोग (Denotified Tribes) और हैं।[3] इन पिछड़ी हुई जातियों में अभी तक अनिवार्य शिक्षा का प्रसार बहुत ही कम हो पाया है।

समाधान—विशिष्ट विद्यालय (Special Schools)

इन जातियों में जो आदिम अनुसूचित तथा पिछड़ी हुई जातियाँ निवास करती हैं विशिष्ट स्कूलों की स्थापना आवश्यक है। स्वतन्त्र भारत में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। सरकार इन जातियों के क्षेत्रों में विशिष्ट स्कूल स्थापित कर रही है और उन्हें निःशुल्क शिक्षा छात्रवृत्तियाँ पुस्तकें, भोजन आदि की सुविधाएं दे रही है।[4] द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में

---

1 India 1962, p 23
2 Ibid p 129
3 Ibid
4 Ibid, p 135

आदिम जातीय क्षेत्रों में ३ १८७ और अनुसूचित जातियों के लिये ६ ००० स्कूल और छात्रावास स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया। तृतीय योजना में उनकी शिक्षा पर ४२ करोड़ रुपये व्यय करने का निश्चय किया गया है।[1] प्रयत्न सराहनीय हैं, परन्तु जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि अनुसूचित तथा आदिम जातियों की संख्या क्रमशः ५ १३ करोड़ तथा २ २९ करोड़ है तो हमें कुछ निराशा प्रतीत होने लगती है। शिक्षा द्वारा शताब्दियों से पद दलित इन जातियों की शिक्षा का भार केवल सरकार पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये अपितु जनता को भी इस पुनीत कार्य में सहयोग प्रदान करना चाहिये।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss the special difficulties that have stood in the way of the adoption of Compulsory Primary Education in India
2. What, in your opinion, are the major problems of Compulsory Primary Education in India ? What suggestions can you offer to tackle them ?
3. Describe the system of Compulsory Primary Education which has been adopted in your state
4. Discuss the causes of slow progress in the spread of Primary Education in India. How could these be removed ?

---

1 *Third Five-Year Plan*, p 702.

२५

माध्यमिक शिक्षा
(Secondary Education)

विषय-प्रवेश

कुछ समय पूर्व तक माध्यमिक शिक्षा को हमारी शिक्षा-व्यवस्था में सब से निर्बल कड़ी समझा जाता था। लगभग एक शताब्दी तक हमारे देश में शिक्षा विदों को माध्यमिक शिक्षा की असफलता के कारण सर्वाधिक क्षोभ था। इसी के फलस्वरूप समितियों और आयोगों की नियुक्तियाँ की गईं जिनसे कि वे इसके दोषों और निर्बलताओं का स्पष्टीकरण करें। १८५४ का वुड का घोषणा पत्र, १८८२ का हण्टर कमीशन, १९१७–१९ का कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, १९४४ की सार्जेन्ट योजना और १९४८–४९ का विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग—सभी इस बात से सहमत थे कि माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था का आधारभूत दोष यह था कि वह साहित्यिक था और विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए छात्रों को तैयार करती थी।

१९४८-४९ में विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग ने यह बात स्पष्ट कर दी कि माध्यमिक शिक्षा का पुनर्निर्माण किए बिना विश्वविद्यालय की शिक्षा में सुधार करना असम्भव है। इसी के फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा-आयोग की नियुक्ति हुई जिसने इस शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये जिनका

भारत-सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। (हम माध्यमिक शिक्षा आयोग का वर्णन पिछले अध्याय में कर चुके हैं।)

माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप (Pattern of Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा की शृङ्खला में बीच की कड़ी कहा जाता है। इस कड़ी के एक ओर प्राथमिक और दूसरी ओर उच्च शिक्षा है। माध्यमिक शिक्षा की सामान्य अवधि ७ वर्ष की है। इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है[1] —

(क) ११–१४ वय-वर्ग के बच्चों के लिए ४ वर्ष की निम्नतर माध्यमिक (Lower Secondary) या मिडिल या सीनियर बेसिक या जूनियर माध्यमिक शिक्षा।

(ख) १४ १७ वय-वर्ग के बच्चों के लिये ३ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) शिक्षा।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि विभिन्न राज्यों में दोनों स्तरों की शिक्षा की अवधि विभिन्न है। यह भी लिख देना असंगत न होगा कि कुछ राज्यों में निम्नतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा का अङ्ग है। कुछ राज्य अभी तक यह निश्चित नहीं कर पाये हैं कि निम्नतर माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा का अङ्ग है या उच्चतर शिक्षा का। कुछ राज्य ऐसे भी हैं जहाँ हाई स्कूलों के स्थान में हायर सैकेंडरी स्कूल हैं। इनका अध्ययन काल ४ वर्ष का है।

माध्यमिक शिक्षा का विकास (Growth of Secondary Education)

स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास अति द्रुत गति से हुआ है। इसकी पुष्टि निम्नांकित आँकड़ों से हो जाती है —

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार[2]

वर्ष	स्कूल संख्या	छात्र संख्या	व्यय (करोड़ रुपये)
१९४९ ५०	६ ६८२	१० ४५,४११	२०
१९५१ ५६	९ ५१५	१६ ०४ ८ ६	३१
१९५८ ५९	१४ ३२५	२४ ७८,११२	५२

1 M T Vyas Secondary Education in Administration of Education in India pp 195-196

2. Review of Education in India p 940

समस्यायें और उनके समाधान
(Problems & Their Solutions)

स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक शिक्षा का प्रगतिशील विस्तार हुआ है। इसमें सुधार करने के लिये प्रयास भी किये जा रहे हैं। पर खेद का विषय है कि अभी तक शिक्षा की संरचना में इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा को जोड़ने वाली यह कड़ी अभी तक निर्बल ही बनी हुई है। आज माध्यमिक शिक्षा में इतनी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं कि यदि उनका समाधान नहीं किया गया तो समग्र रूप से भारतीय शिक्षा का उत्थान असम्भव होगा। हम इन समस्याओं की ओर नीचे की पंक्तियों में संकेत कर रहे हैं।

१ समस्या—उद्देश्य विहीनता (Aimlessness)

हमारी माध्यमिक शिक्षा उद्देश्य विहीन है। यह कहना अनुचित न होगा कि स्वतन्त्र भारत में भी इस शिक्षा का उद्देश्य वही है जो परतन्त्र भारत में था। शिक्षा केवल इस उद्देश्य से प्राप्त की जाती है कि या तो कोई नौकरी मिल जाय या उच्च शिक्षा के किसी विद्यालय में प्रवेश। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य भी वही है जो माध्यमिक शिक्षा का है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये छात्र दिन रात पुस्तकों का अध्ययन करके अपने स्वास्थ्य और सुख का बलिदान करते हैं और उनके माता-पिता तथा संरक्षक अनेक यातनाओं को झेलते हुए भी उनके ऊपर धन व्यय करते हैं। पर जब अधिकांश छात्रों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफलता मिलती है तो उनमें हर्ष के स्थान में विषाद अधिक होता है।

समाधान—निश्चित उद्देश्य (Definite Aims)

माध्यमिक शिक्षा को सफल और सार्थक बनाने के लिये उसके उद्देश्यों का निर्धारित करना आवश्यक है। जब तक इस शिक्षा के निश्चित उद्देश्य नहीं होंगे तब तक इसकी उपयोगिता संशयपूर्ण रहेगी। पर प्रश्न यह है कि ये उद्देश्य होने क्या चाहिये? इसके लिये सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा की पूरक न रखकर एक स्वतन्त्र इकाई बना दिया जाय। तत्पश्चात् माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जायें —

१ शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त छात्रों को किसी कार्य के लिये कुशल बनाना।
२ उनको स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता प्रदान करना।
३ उनकी व्यावसायिक एवं उत्पादन शक्तियों में वृद्धि करना।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग (Secondary Education Commission) ने माध्यमिक शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं वे भी प्रशंसनीय हैं यथा—

१ लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास
२ व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि
३ व्यक्तित्व का विकास
४ नेतृत्व का विकास ।

२ समस्या—अनुपयुक्त पाठ्यक्रम (Unsuitable Curriculum)

माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम एक मार्गीय (Single Track) है । सभी विद्यार्थियों को एक पूर्व निर्धारित पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पड़ता है । छात्रों को अपनी रुचि एवं जिज्ञासा के अनुसार विषयों के चयन का अवसर नहीं प्राप्त होता है जिसका परिणाम यह होता है कि उनके मौलिक विचारों एवं मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता है । साथ ही पाठ्य-क्रम का विद्यार्थियों के वातावरण और वास्तविक एवं व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है फलतः जीवन-क्षेत्र में पदार्पण करने पर वे अपने को एक ऐसी विचित्र स्थिति में पाते हैं कि वे सामाजिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं ।[1]

समाधान—रोचक और विभिन्न पाठ्यक्रम (Interesting & Diversified Curriculum)

आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्य-क्रम का विस्तार किया जाय और उसमें विभिन्न उद्योगों व्यवसायों तथा कृषि सम्बन्धी विषयों का समावेश किया जाय और छात्रों को उनकी रुचियों के अनुसार विषयों को चुनने में विशेषज्ञों द्वारा सहायता दी जाय । इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम की विभिन्नता (Diversification of Courses) को लक्ष्य करते हुए निम्नांकित सुझाव दिये हैं —

१ पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये जिससे छात्रों की विभिन्न योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास किया जा सके ।

---

1 'The education given in our schools is isolated from life. The curriculum as formulated and as presented through the traditional methods of teaching does not give the students insight into the everyday world in which they are living. When they pass out of school they feel ill adjusted and cannot take their place confidently and competently in the community.' —*Report of the Secondary Education Commission* p 22

२ पाठ्य क्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिये जिससे कि उसे छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुकूल बनाया जा सके।

पाठ्य क्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

४ पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये जिससे छात्रों को न केवल कार्य करने अपितु अवकाश का सदुपयोग करने के लिए शिक्षित किया जा सके।

५ पाठ्य क्रम में ऐसे विषय नहीं होने चाहिये जिनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो अपितु पाठ्य क्रम के समस्त विषयों में अन्तः सम्बन्ध होना आवश्यक है।

३ समस्या—अनुशासनहीनता (Indiscipline)

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक प्रमुख समस्या है—अनुशासनहीनता। छात्रों पर अनुशासनहीन होने का आरोप लगाना अनुचित है। वस्तुतः शिक्षा प्रणाली, परीक्षा पद्धति, उद्देश्य विहीन शिक्षा आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनके फलस्वरूप छात्रों में अनुशासनहीनता की उत्पत्ति पर आश्चर्य नहीं किया जा सकता है। यह अनुशासनहीनता इतनी तीव्र गति से बढ़ रही है कि यदि इसका उपचार न किया गया तो छात्र वर्ग समाज के लिये न केवल कष्टदायक अपितु उस पर कलंक की एक ऐसी छाप लगा देगा जिसका दूर करना कठिन हो जायगा।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

हम ऊपर कह चुके हैं कि अनुशासनहीनता के लिये छात्रों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की ऐसी धारणा है साधारणतया वही लोग हैं जो उनके प्रति केवल अन्याय करते हैं। कारण यह है कि उन्होंने कभी शान्त मस्तिष्क से इस बात पर विचार ही नहीं किया है कि आखिर उनमें अनुशासनहीनता का प्रादुर्भाव हुआ क्यों? प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति अपने अनुशासन के लिए विख्यात है। मुस्लिम काल में भी अनुशासनहीनता के उदाहरण नहीं मिलते हैं। स्पष्ट है कि यह समस्या आधुनिक शिक्षा की देन है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक आन्दोलन इत्यादि भी अनुशासनहीनता के लिए कुछ सीमा तक उत्तरदायी हैं, परन्तु पूर्णतः नहीं। नित्य समाचार पत्रों का भी प्रभाव कम नहीं है छात्रों पर प्रभाव पड़ता है। फिर आदिर कहि मात्रा में छात्र अशान्त हैं न इस बात का विचार करना पड़ेगा है कि विद्यार्थी-समाज किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है। इन कारणों के

अतिरिक्त भद्दे चलचित्रों कामोद्दीपक फिल्मी गानों एवं जातीय पक्षपात ने भी छात्रों की अनुशासनहीनता में अत्यधिक योग प्रदान किया है। अतः यदि हम इस देशव्यापी अनुशासनहीनता का निराकरण करने के इच्छुक हैं तो हम उपर्युक्त सभी दोषों के निवारण की ओर समुचित ध्यान देना पड़ेगा। साथ ही छात्रों को जीवन में अनुशासन का महत्त्व बताकर उनके अन्तर में अनुशासन के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना को जाग्रत करना होगा। यह कार्य तभी सम्पन्न किया जा सकेगा जब सरकार जनता और अभिभावक दृढ़ निश्चय करके इस दिशा में एक साथ क्रियात्मक पग उठाएं।

४ समस्या— व्यक्तिगत स्कूलों की अवांछनीय वृद्धि (Undesirable Growth of Private Schools)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा प्रसार के नाम पर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि अवांछनीय होने के साथ-साथ छात्रों, अध्यापकों एवं अन्त में देश के लिये अभिशाप सिद्ध हुई है। इनमें से अधिकांश स्कूल किसी जाति विशेष राजनीतिक दल या सेठ साहूकार की निजी सम्पत्ति हैं जिनमें जातिवाद का ताण्डव नृत्य होता है जिन्हें राजनीतिक रंगमंच में परिणत कर दिया गया है और जो प्रबन्धकों की आय के निश्चित साधन हो गये हैं। अध्यापकों को अल्प वेतन पर नियुक्त किया जाता है उनके वेतन में से कटौती की जाती है और ग्रीष्मावकाश में उनसे त्याग पत्र ले लिया जाता है। ऐसे स्कूलों के अनुशासन शिक्षा-स्तर एवं शिक्षकों और छात्रों के चरित्र का अनुमान सरलता पूर्वक लगाया जा सकता है। स्कूल निरीक्षक भी ऐसे स्कूलों के प्रति या तो स्वयमेव उदासीन हो जाते हैं या कोई कड़ी कार्यवाही करने की इच्छा करने पर भी अपने को असमर्थ पाते हैं क्योंकि उनमें स्कूल प्रबन्धकों से लोहा लेने की शक्ति नहीं होती है।

समाधान—व्यक्तिगत स्कूलों की समाप्ति (Abolition of Private Schools)

व्यक्तिगत स्कूल माध्यमिक शिक्षा के नाम पर ऐसे कलंक बिन्दु हैं जिनको शीघ्रातिशीघ्र धो डालना आवश्यक है। यह कार्य करने की सामर्थ्य केवल सरकार में है और केवल शिक्षा का राष्ट्रीयकरण ही एकमात्र उपाय है। खेद का विषय है कि अभी तक अनेक राज्यों में इस ओर कोई कदम नहीं उठाया गया है और व्यक्तिगत स्कूल राज्य सरकारों से सहायता अनुदान लेकर उन्हीं की छत्रछाया में परिपोषित होकर माध्यमिक शिक्षा का गला घोट रहे हैं।

५ समस्या—शिक्षा का निम्न स्तर (Low Standard of Teaching)

माध्यमिक शिक्षा की एक अन्य समस्या यह है कि शिक्षा का स्तर निम्न है। इसके लिये मुख्य रूप से हमारी सरकार उत्तरदायी है क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार का ध्यान शिक्षा प्रसार पर ही केन्द्रित रहा है और उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर तनिक भी नहीं गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं। युद्धजनित मँहगाई के कारण सभी वस्तुओं के मूल्यों में कई गुना वृद्धि हो गई है परन्तु शिक्षकों का वेतन प्रायः वही है जो युद्ध से पूर्व था। सरकार शिक्षकों की दशा की ओर पूर्णतः उदासीन रही है जबकि अन्य विभागों में कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन और मँहगाई दी जा रही है। शिक्षकों को इतना वेतन नहीं मिलता है कि वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सकें। ऐसी दशा में उनकी कार्य क्षमता कम हो जाना और उनके द्वारा कार्य की उपेक्षा किया जाना स्वाभाविक है। फिर अनेक विद्यालय ऐसे हैं जिनके पास इतना भी धन नहीं है कि वे उपयुक्त भवन और पाठ्य सामग्री की व्यवस्था कर सकें। इन सभी बातों ने शिक्षा के स्तर पर अपना कुप्रभाव डाला है और उसका स्तर निम्न हो गया है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का कार्य सरल नहीं है। माध्यमिक शिक्षा आयोग के कथनानुसार शिक्षण की प्रावैगिक विधियों (Dynamic Methods of Teaching) का प्रयोग किया जाय। पर कहने और करने में आकाश और पाताल का अन्तर है। जिन राजकीय विद्यालयों पर सरकार करोड़ों रुपया व्यय कर रही है उनके शिक्षण का स्तर भी निम्न है। उनकी तुलना में अनेकों अन्य विद्यालयों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनका शिक्षण स्तर सराहनीय है। केवल धन व्यय करने से ही शिक्षा-स्तर के ऊपर उठने की कल्पना करना बालू पर दीवार बनाने के प्रयास के समान है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस ओर अपना पूर्ण ध्यान दे। पर किस प्रकार? ऐसे निरीक्षकों की नियुक्ति करके—जो विद्यालयों को इस कार्य में उचित सुझाव दें। इसके अतिरिक्त शिक्षकों को नवीनतम शिक्षण विधियों से परिचित रखने के लिए उन्हें समय-समय पर एक प्रशिक्षण विद्यालय में भेजा जाय या इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गोष्ठियाँ आयोजित किये जायें। यह भी आवश्यक है कि शिक्षण कार्य के लिए केवल उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाय। साथ ही उनको उत्तम कार्य के लिए समय-समय पर पुरस्कार भी दिया जाय।

६ समस्या—दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली (Defective System of Examination)

माध्यमिक परीक्षा प्रणाली मे एक नहीं अपितु अनेको दोष भरे हुए हैं। इस प्रणाली म जितने ही दोषो का उल्लेख किया जाय उतने ही कम हैं। वस्तुत यह भारत की साम्प्रदायिक सामाजिक एव राजनैतिक प्रणाली से भी अधिक बुरी है। मैट्रीकुलेशन' परीक्षा का सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर शासन है। एक विद्यालय और उसके शिक्षकों तथा छात्रो की श्रेष्ठता परीक्षा की कसौटी पर जाँची जाती है। वही विद्यालय उत्तम समझा जाता है जिसका परीक्षा-फल उत्तम होता है। ऐसी परिस्थितिया म अध्यापक उत्तम परीक्षाफल देने के लिए अनुचित साधना का प्रयोग करते हैं। विद्यार्थी ज्ञान के अर्जन से वास्तविक लाभ उठाने की अपेक्षा केवल पुस्तको को यन्त्रवत् रटते हैं जिससे उन्हे परीक्षा म अच्छे अङ्क प्राप्त हो। परिणाम यह होता है कि उनके मस्तिष्क तथा व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

समाधान—परीक्षा प्रणाली मे परिवतन (Change in Examination System)

परीक्षा ही छात्रा के ज्ञान और अध्यापको की कार्य-क्षमता की वास्तविक कसौटी नही है। अत यह आवश्यक है कि वर्तमान परीक्षा प्रणाली म इस प्रकार परिवर्तन किया जाय जिससे छात्र अर्जित ज्ञान से सामान्वित हो सकें और अध्यापको की कार्य-क्षमता को भी आँका जा सके। परीक्षा प्रणाली मे परिवतन के लिये माध्यमिक शिक्षा आयोग के जो निम्नलिखित सुझाव दिये हैं व स्तापनीय हैं —

१ बाह्य परीक्षाओ (External Examinations) की सख्या म कमी की जाय।

२ परीक्षा म पूछे जाने वाले प्रश्नो के ढग म इस प्रकार परिवतन किया जाय कि परीक्षा निबन्धात्मक ढग (Essay Type) की न रह जाय।

३ छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्याङ्कन करते समय आन्तरिक परीक्षाओ (Internal Examinations) के साथ-साथ नियतकालिक परीक्षाओं (Periodical Tests) और विद्यालय-अभिलेखो (School-Records) को भी उचित महत्व प्रदान किया जाय।

४ बाह्य तथा आन्तरिक परीक्षाओं में छात्रों के कार्य का मूल्यांकन अङ्कों में न किया जाकर प्रतीकात्मक (Symbolic) होना चाहिये।

५ प्रत्येक छात्र का एक विद्यालय अभिलेख रखा जाय जिसमें विभिन्न स्तरों में उसके द्वारा किये गये कार्यों एवं उनमें प्राप्त सफलता का उल्लेख हो।

• सेकण्डरी स्कूल का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त होने के उपरान्त ही केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।

७ समस्या सामुदायिक जीवन का अभाव (Absence of Community Life)

विद्यालयों में सुसंगठित सामुदायिक जीवन का सर्वथा अभाव है। कारण यह है कि खेल कूद, शारीरिक व्यायाम तथा विनोदात्मक एवं सामाजिक क्रियाओं का कोई भी आयोजन नहीं किया जाता है जिससे छात्रों में सम्पर्क स्थापित हो और उनमें घनिष्ठता बढ़े। इसके अतिरिक्त स्कूलों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का पूर्ण अभाव है। इस प्रकार सामान्यतः एक साधारण स्कूल एक फैक्टरी के समान होता है जिसका प्रमुख उद्देश्य—छात्रों को मैट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण कराना होता है। इसके अतिरिक्त भी स्कूलों के कुछ और कार्य हैं। उन्हें छात्रों को देश के भावी नागरिकों के रूप में तैयार करना है। अतः जब तक छात्रों को विद्यालयों में सुसंगठित सामुदायिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक वे देश के सुयोग्य एवं कर्तव्यनिष्ठ नागरिक नहीं बन सकेंगे।

समाधान—स्कूल सामुदायिक जीवन का केन्द्र (School A Centre of Community Life)

शिक्षा आधारभूत रूप से एक सामाजिक समस्या है। प्रत्येक स्कूल का यह करना व सोचना है कि वह युवकों का प्रशिक्षण तथा उनका पालन-पोषण इस प्रकार करे कि वे समाज के जिस समूह से सम्बन्ध रखते हैं उसके जीवन में प्रभावपूर्ण ढंग से भाग ले सकें। अन्य शब्दों में स्कूल को सामुदायिक जीवन के केन्द्र (Centre of Community Life) के रूप में अपना कार्य प्रदर्शित करना चाहिए। मुदालियर कमीशन ने उचित ही लिखा है "स्कूल एक पूर्ण समुदाय के अन्तर्गत एक छोटा समुदाय है, जिसमें वैसी ही दिलचस्पियाँ तथा व्यापार की विभिन्न प्रतिबिम्बित होते हैं जो राष्ट्रीय जीवन के

प्रतिबिम्बित होती है।"[1] वस्तुतः स्कूल सामुदायिक जीवन का एक आदर्श निचोड़ (An idealized epitome) होता है अपितु यह कहना अधिक उचित होगा कि स्कूल ऐसा होना चाहिए जिसमें समुदाय की समस्त मुख्य उपयोगी गतिविधियों के तत्त्व प्रतिबिम्बित हों।

यह तो निश्चित है कि व्यक्ति को (स्कूल में) प्रशिक्षित किया जाना चाहिए परन्तु बाहर के वृहत्तर समाज की आवश्यकताओं के प्रसंग में और कुछ हद तक उनके निमित्त ही उसे प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। और चूँकि समाज की ये जरूरतें हमेशा बदलते रहते हैं बढ़ते रहते हैं और उनमें सुधार होते रहते हैं इसलिये यह आवश्यक है कि स्कूल के बाहर के जीवन के साथ स्कूल का सजीव सम्बन्ध रहे और वह बदलते हुए तथा गतिशील वातावरण के लिए बच्चों को शिक्षा दे। राजनैतिक परिवर्तन के कारण हमारे समाज, हमारे समुदाय के तकाजे भी बदल गए हैं अतः यह अनुभव किया गया है कि देश के विद्यालयों और उनकी शिक्षा को उन तकाजों के अनुकूल बनाया जाय। स्कूलों को सामुदायिक जीवन से पृथक रखकर सम्भव इस बात का भय रहेगा कि एक जड़ औपचारिकता उन पर छा जाय और वर्तमान वास्तविकताओं का स्थान अतीत की प्रेतात्माएं ले लें। अतः सरकार ने घोषित किया है कि "हमारी समस्त शिक्षा संस्थाएँ सामुदायिक समकक्ष होंगी।"[3]

८ समस्या—अपव्यय एवं अवरोधन (Wastage and Stagnation)

माध्यमिक शिक्षा की एक अति जटिल समस्या है अपव्यय एवं अवरोधन। प्राथमिक स्तर के समान इस स्तर पर भी अपव्यय तथा अवरोधन शिक्षा के क्षेत्र को जर्जर किए हुए हैं। इनके कारण कितनी भीषण हानि हो रही है इसका कुछ अनुमान अधोलिखित तालिका से किया जा सकता है —

1 School is a small community within a large community and that the attitudes, values and modes of behaviour which have currency in national life are bound to be reflected in the schools —*Report of the Secondary Education Commission* p 127

२ डॉ० जाकिर हुसैन शिक्षा की पुनरंचना पृ० ६३।

3 All our institutions will be communities at work —Radio Broadcast by Dr Zakir Husain published in *The Future of Education A Symposium*

हाई स्कूल एवं उसके समान परीक्षाओं के परीक्षा फल

वर्ष	परीक्षा देने वाले (छात्र संख्या)	उत्तीर्ण होने वाले (छात्र संख्या)	उत्तीर्ण छात्रों का प्रतिशत
१९५१-५२	५८१४७०	२६१०५६	४४.७
१९५२-५३	७२४७६६	३[illegible]७६०	४६.[illegible]
१९५३-५४	८१[illegible]७०	३६७००२	४८.५
१९५४-५५	८३०००१	४[illegible]०१४	४८
१९५५-५६	९००७२६	४[illegible]४६८	४६.७

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

माध्यमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या का निराकरण निम्नलिखित विधियों को अपना कर किया जा सकता है (१) विद्यालयों में केवल प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति (२) व्यावसायिक शिक्षा-पद्धति का प्रयोग (३) शिक्षा के उपकरणों का बाहुल्य (४) विद्यालयों के आन्तरिक तथा बाह्य वातावरण में परिवर्तन (५) परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन (६) पाठ्यक्रम में परिवर्तन (७) हस्तशिल्प की शिक्षा (८) छात्रों के स्वास्थ्य में सुधार आदि।

६ समस्या—संगठन (Organization)

माध्यमिक शिक्षा के संगठन में एकरूपता के स्थान में अनेकरूपता दृष्टिगोचर होती है। भिन्न भिन्न राज्यों में माध्यमिक शिक्षा की अवधि विभिन्न है। वस्तुतः उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का प्रारम्भ मिडिल या निम्नतर माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद होने के लिए और [illegible] उच्चतर माध्यमिक शिक्षा ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में ३ वर्ष तक दी जाया करती थी। पर [illegible] एक या दो राज्यों में [illegible] और कहीं नहीं है। अधिकांश राज्यों में [illegible] और हाईस्कूल या हायर सेकेंडरी स्कूल का [illegible] एक साथ पाई जाती है। अभी तक सब हाईस्कूलों को हायर सेकेण्डरी स्कूलों में परिणत नहीं किया गया है। [illegible] हाईस्कूलों की शिक्षा की अवधि ३ वर्ष के स्थान में [illegible] वर्ष की है। ऐसा कई राज्यों में है जहाँ निम्न स्कूलों का पाठ्यक्रम ४ वर्ष का है। कुछ राज्य ऐसे हैं [illegible] हाईस्कूल के स्थान में उच्चतर माध्यमिक स्कूल हैं।

समाधान—माध्यमिक विद्यालयों की एकरूपता (Uniformity in Secondary Schools)

यह अति आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश के माध्यमिक विद्यालय एक समान हों जिसमें छात्रों को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के समय विद्यालयों में प्रवेश पाने में कठिनाई का सामना न करना पड़े। ऐसा करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग के सुझावों को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जाय। माध्यमिक शिक्षा केवल दो प्रकार के विद्यालयों में दी जानी चाहिए—(१) जूनियर माध्यमिक विद्यालय—जिनमें शिक्षा की अवधि ३ वर्ष की हो और (२) हायर माध्यमिक विद्यालय—जिनमें शिक्षा काल ४ वर्ष का हो। ऐसी दशा में इन्टरमीडिएट कक्षाओं का अंत करना अनिवार्य हो जायगा।

१० समस्या—माध्यमिक विद्यालयों का प्रबन्ध (Management of Secondary Schools)

आजकल हमारे देश में तीन प्रकार के माध्यमिक विद्यालय शिक्षा देने का कार्य कर रहे हैं—(१) राजकीय स्कूल, (२) निकाय स्कूल (District Board and Municipal Schools) और ( ) स्वसंचालित स्कूल (Schools run by Private Bodies)। इन विद्यालयों की संख्या नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाती है —

माध्यमिक विद्यालयों का विभाजन १९५८/५९[1]

प्रबन्ध	स्कूल संख्या	कुल विद्यालयों का प्रतिशत
१ राजकीय	६ ५७१	२०.२
२ निकाय स्कूल		
(i) जिला परिषद्	१ १५४	२८ १
(ii) नगरपालिका	१ २३६	३ ८
३ स्वसंचालित विद्यालय		
(i) सहायता प्राप्त	११ ११२	३५ ७
(ii) सहायता अप्राप्त	३ ६७१	१२ २
योग	३२ ३६८	१०० ००

1 Education in India 1955-56 Vol I p 122

पूर्वोद्धृत तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि स्वसंचालित विद्यालयों की अपेक्षा राजकीय विद्यालयों की संख्या बहुत कम है। इसका एक मात्र कारण यह है कि सरकार स्वयं शिक्षा पर धन व्यय न करके सहायता अनुदान के रूप में थोड़ा सा धन देकर व्यक्तिगत रूप से विद्यालयों की स्थापना को प्रोत्साहित करती है। राजकीय विद्यालयों की तुलना में परिषदों और निकायों के विद्यालयों की दशा भी शोचनीय है। माध्यमिक शिक्षा-आयोग का इन विद्यालयों के विषय में मत है, "यद्यपि हम इनकी कार्य-कुशलता के बारे में कोई अनुचित वक्तव्य नहीं देना चाहते हैं, पर हमारे पास यह सिद्ध करने के लिए काफी प्रमाण हैं कि इन विद्यालयों में सुधार करने की अत्यधिक आवश्यकता है।[1]

जहाँ तक स्वसंचालित विद्यालयों की बात है वे केवल दुकानदारी के सिद्धान्त पर चलाये जाते हैं और प्रबन्धकों की आय के निश्चित साधन हैं। इनसे माध्यमिक शिक्षा का अत्यन्त अहित हो रहा है। इस सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं —
दुर्भाग्यवश इस शिथिलता के कारण अनेक स्कूल शिक्षा-संस्थाओं के रूप में न चलाये जाकर व्यावसायिक उद्योगों के रूप में चलाये जाते हैं। अनेकों दशाओं में व्यक्ति अपनी निजी हैसियत में या व्यक्तियों के समूह बिना उचित भवन या उपकरण के प्रायः का मरती करके विद्यालयों को चलाने लगते हैं जिससे वे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि शिक्षा विभागों के पास विद्यार्थियों के हित के लिए उनको मान्यता देने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं होता है।[2]

---

1 Though we do not wish to make any unfair generalization about their efficiency we have had enough evidence to show that there is considerable need for the toning up of these institutions —*Report of the Secondary Education Commission* p 196

2 This laxity has unfortunately led to a state of affairs where schools are run more like commercial enterprises [illegible] no alternative but to recognise them for the sake of students."—*Report of the Secondary Education Commission* pp 197 195

इन सहायता प्राप्त स्वसचालित विद्यालयों से कही खराब दशा सहायता अनुदान न मिलने वाले स्कूलों की है।

समाधान—विद्यालयों का सरकारी प्रबन्ध (Government Management of Schools)

उपरोक्त समस्या का समाधान उसी दशा में हो सकता है जब सरकार कोई नियम बनाकर सभी गैर-सरकारी स्कूलों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर ले और उनके प्रबन्ध को अपने हाथ में ले ले। अन्यथा इनके कारण माध्यमिक शिक्षा की जो क्षति हो रही है वह दिन-दूनी रात चौगुनी होती चली जायगी और माध्यमिक शिक्षा-सुधार की सभी योजनाए विफल हो जायेंगी।

उपसंहार

हमने ऊपर माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं की ओर संकेत किया है। यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं है कि इन समस्याओं का शीघ्रातिशीघ्र उन्मूलन आवश्यक है। बिना ऐसा किए उच्च शिक्षा में सुधार और देश की प्रगति की आशा करना व्यर्थ है। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षा प्राप्त करके हमारे नवयुवक कदापि देश के योग्य नागरिक नहीं बन सकेंगे। विद्यालय ही वे स्थान हैं जहाँ छात्रों में चरित्र एवं देश के भावी नागरिकों का निर्माण होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हमारे विद्यालय और उनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा प्रणाली दोष रहित हो। हमारी शिक्षा प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा सबसे दुर्बल स्थान (Weakest Spot) है। हमें उसे सबसे शक्तिशाली स्थान बनाना है। तभी हम अन्य देशों के साथ दौड़ में आगे निकल सकेंगे। 'सारांश में हमारी माध्यमिक शिक्षा स्वतन्त्र भारत की आकांक्षाओं एव आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। इसे भारत के प्रत्येक नवयुवक को अपने देश का योग्य नागरिक बनाना चाहिए।'[1]

1 "In short our education must be brought into line with the aspirations and requirements of free India It should train every young Indian to be a worthy son of his motherland —*Seven Years of Freedom* (Ministry of Education, p 5

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Secondary Education is considered to be the weakest link in our educational system What are its major weaknesses and how are they to be removed ?

2 Comment upon the view that the present system of Secondary Education in India is the gift of the British regime and needs drastic changes What modification would you like to introduce to suit present needs ?

3 Secondary Education in India is said to be excessive in quantity and defective in quality Discuss the reforms that you would like to introduce in Secondary Education

4 What in your opinion are the problems of Secondary Education ? What measures do you suggest to overcome them ?

२६

उच्च शिक्षा

(Higher Education)

विषय प्रवेश

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है। इसका अनुमान नीचे की तालिका से सहज ही लगाया जा सकता है।

सामान्य उच्च शिक्षा की प्रगति[1]

वर्ष	कालेजों की संख्या	छात्रों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	व्यय (रुपया में)
१९४९-५०	४९७	२ ६८ ६२२	१३ ९९९	६ ५२ ३६ ९०४
१९५४-५५	६१७	५ २६,५७१	२२ ०८७	१० ९६ ४६ ९८३
१९५७-५८	८१७	६ ९९ ९९४	२७ ३०७	१४ ११ ५७ ७८४

1 *Review of Education in India* p 949

व्यावसायिक उच्च शिक्षा की प्रगति[1]

वर्ष	कालेजों की संख्या	छात्रों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	व्यय (रुपयों में)
१९४९-५०	१८६	७६,१०१	४,२५३	३,५६,६८,४८२
१९५४-५५	२९१	१,३४,७६७	७,४३६	६,३१,४०,३८०
१९५७-५८	४८९	१,८१,५६४	११,०४८	८,८४,८६,५८६

उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर कोई व्यक्ति यह कह देगा कि हमारे देश में उच्च शिक्षा का प्रसार अति त्वरित गति से हुआ है पर कोई भी गम्भीर विचार वाला व्यक्ति इसकी सराहना करने में संकोच का अनुभव करेगा। कारण यह कि उच्च शिक्षा का विकास देश की नवीन आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है। सरकार की नीति रही है उच्च शिक्षा के विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करना न कि इस शिक्षा को गणतन्त्र के नागरिकों के लिये उपयोगी बनाना। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा-सम्बन्धी ऐसी बहुत-सी समस्यायें हैं जिनको सुलझाने के लिए सरकार ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया है। हम इनमें से प्रमुख समस्याओं पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं।

समस्यायें और उनके समाधान
(Problems and Their Solutions)

१ समस्या—उद्देश्यविहीनता (Aimlessness)

उच्च शिक्षा की उद्देश्यविहीनता के विषय में मतभेद नहीं हो सकता है। आप यदि छात्रों या उनके अभिभावकों से पूछें कि (विद्यार्थी) किस उद्देश्य से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, तो आपको ९९% यही उत्तर मिलेगा कि— 'अभी तो अध्ययन कर रहे हैं।' या 'देखिए शिक्षा समाप्त करने के बाद कौन सी नौकरी मिलती है।' उच्च शिक्षा के कालेजों में अध्ययन करने वाले छात्र स्वर्णिम स्वप्नों के संसार में विचरण करते हैं और उनके माता-पिता बड़ी-बड़ी आशायें लगाकर उन पर अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा फूँकते हैं। पर जब वे बी० ए० या एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं और द्वार-द्वार पर नौकरी की खोज में टक्कर मारकर भी निराशा के गर्त में गिर पड़ते हैं तब वे स्वप्न लोक से

1 *Review of Education in India* p. 943

अवतीर्ण होकर यथार्थता के जगत में पदार्पण करते हैं और ठण्डी सांस लेकर सोचते हैं कि यदि उच्च शिक्षा पर इतना धन, समय और स्वास्थ्य नष्ट न किया होता तो अधिक उत्तम होता। पर जिस रास्ते को तय करके वे आगे निकल चुके हैं उससे वापिस आना असम्भव होता है। परिणाम होता है कहीं क्लर्की या स्टोरकीपरी करके अपने भाग्य को कोसना या ईश्वर में विश्वास करके उसमें सन्तुष्ट होना। साधारणतः होता भी यही है क्योंकि भारतीयों के समान भाग्य और भगवान् पर भरोसा करने वाले व्यक्ति जो अपने को सभ्य कहने का दावा कर सकते हैं बहुत कम हैं।

समाधान—उद्देश्यों में परिवर्तन (Change in Aims)

भारत की उच्च शिक्षा-संस्थाओं को अपने उद्देश्यों में परिवर्तन करना होगा। पर प्रश्न यह है कि ये उद्देश्य हों क्या? १८५२ में विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए न्यूमन (Newman) ने लिखा था— 'यदि विश्वविद्यालय की शिक्षा का कोई व्यावहारिक उद्देश्य है, तो मैं कह सकता हूँ कि यह समाज के उत्तम नागरिकों को प्रशिक्षित करना है।'[1] एक राष्ट्र के विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर वहाँ के निवासियों के बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर का मानदण्ड है। 'देश का वैभव विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित होता है। दूषित विश्वविद्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र को दूषित कर देते हैं।'[2] विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य न केवल बुद्धिमान नागरिकों का अपितु सुयोग्य व्यक्तियों का भी निर्माण करना है। 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों का भ्रमण करते समय इस बात का अनुभव किया कि सभी व्यक्ति राष्ट्रीय कल्याण के लिये विश्वविद्यालय शिक्षा के महत्व से अवगत थे परन्तु वे वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की अपर्याप्तता से क्षुब्ध थे। भावी नागरिकों का निर्माण करने वाले विश्वविद्यालय शिक्षा की प्राचीन पद्धति से आबद्ध नहीं रह सकते हैं। समाज की अभिवृद्धित जटिलता तथा परिवर्तनशीलता के कारण यह आवश्यक हो गया है कि यदि हम हमारे राष्ट्रीय जीवन में

---

1 *If a practical end must be assigned to a university course then I say it is training of good members of society.*
—Cardinal Newman *The Scope and Nature of University Education* Discourse 6

2 The prosperity of the country is linked up with the university. A vicious university is like a contaminated fountain which is bound to imperil the health of those who drink from it.
—R. K. Singh *Our Universities* p 9

प्रभावपूर्ण रूप से कार्य करना चाहते हैं, तो वे अपने उद्देश्यों तथा विधियों में परिवर्तन करें।[1]

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने उच्च शिक्षा के अनेकों उद्देश्य निर्धारित किये हैं। (इनका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।) ये उद्देश्य प्रशंसनीय हैं पर इनमें से अधिकांश आदर्शवाद पर आधारित हैं और उनकी न तो पूर्ण मात्रा प्राप्ति सन् १९४९ अब तक हो सकी है और न कभी हो सकती।

२ समस्या—अपव्यय (Wastage)

उच्च शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय है। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है "सार्वजनिक धन का प्रतिवर्ष महान् अपव्यय हो रहा है परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की गम्भीर हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है जितनी कि छात्रों और उनके अभिभावकों के समय, शक्ति और धन के नाश तथा उनकी आशाओं और अभिलाषाओं पर भयंकर तुषारापात के प्रति।"[2] विश्वविद्यालय शिक्षा में होने वाले अपव्यय का अनुमान निम्नांकित तालिका से लगाया जा सकता है —

---

1 "We were everywhere struck by a deep general awareness of the importance of higher education for national welfare [illegible] effectively in our national life —*Report of the University Education Commission* pp 5-6

2 A deplorable wastage of public funds goes on year after year but what is worse there is an unconcerned complacency about this serious loss of public funds on the one hand and waste of time energy and funds of students and their parents, besides terrible frustration of their hopes and aspirations on the other"—*Report of the University*

विभिन्न परीक्षाओं के फल (१९५५—५६)[1]

परीक्षा	सम्मिलित होने वाले छात्र	उत्तीर्ण होने वाले छात्र	प्रतिशत
इण्टर	३,०० ५२३	१ २१ ७३९	४०·५
बी०ए०	७९ ९२०	३७ ९९२	४७ ५
बी एस सी०	३२ ६६७	१५ ९९७	४९ ०
एम० ए०	१३ २१५	९ ३१३	७० ५
एम० एस-सी०	३ १४२	२,४५६	७८ २
व्यावसायिक विषय	४८,४५०	३५ ७७२	७३ ८

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

इस अपव्यय को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि केवल योग्य छात्रों को ही विश्वविद्यालय में प्रवेश दिया जाय। सार्जेण्ट रिपोर्ट के अनुसार हाई स्कूल परीक्षा में सफल होने वाले छात्रों में से १५ में से केवल १ को प्रवेश दिया जाय।[2] इसके अतिरिक्त पाठ्य क्रम में इस प्रकार सुधार किया जाय कि वह साहित्यिक न रहकर व्यावहारिक हो जाय अन्यथा अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या में कमी न हो सकेगी। परीक्षा प्रणाली में सुधार करना और अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के पद से हटाना भी आवश्यक है। तभी उच्च शिक्षा के अपव्यय को कम किया जा सकेगा।

२ समस्या—दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम (Faulty Curriculum)

हमारी उच्च शिक्षा-संस्थाओं के पाठ्य-क्रम एक नहीं अनेकों दोषों से परिपूर्ण हैं। अधिकांश कालिजों में वही घिसे पिटे विषय मिलते हैं। जिस स्थान के उत्साही अथवा धन-लोलुप व्यावसायिक विचारों के व्यक्तियों ने एक ईंट की दीवार खड़ी करके छत को फूँस या टीन से ढक लिया और इतिहास, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के शिक्षण की व्यवस्था कर ली, बस! उनको विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त हो गई। लीजिए उस स्थान पर उच्च शिक्षा का कितना सुन्दर प्रबन्ध हो गया। अब वहाँ के छात्रों को बाहर रहकर अध्ययन पर धन व्यय नहीं करना पड़ेगा। एवं यदि तर्क इस प्रकार का पाठ्य क्रम प्रस्तुत करके शिक्षा का विस्तार करना वस्तुतः प्रशंसनीय है। पर आज के भारत के लिए इस प्रकार का पाठ्य-क्रम छात्रों और देश के लिए हित

---

1. Education in India (1955-56), p 197
2. Sargent Report p 3..

की योग्यता से पूर्ण नहीं है। कारण यह है कि इस प्रकार का पाठ्य क्रम विभिन्न प्रकार के छात्रों की अभिरुचियों की पूर्ति नहीं कर पाता है। फलस्वरूप उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

इस समस्या का समाधान करने का उपाय है। हमारे विश्व विद्यालयों के पाठ्य-क्रम विभिन्न प्रकार के छात्रों की अभिरुचियों की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। फलस्वरूप उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इस दोष का निवारण करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि विश्व विद्यालयों के पाठ्य क्रमों में उसी प्रकार की विविधता आयोजित की जाय जैसी कि मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम के लिए निर्धारित की है। विश्वविद्यालयों के पाठ्य क्रम की समीक्षा होना आवश्यक है जिससे उनको परिवर्तनशील समाज की परिस्थितियों और उसकी समस्याओं की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जा सके। "शिक्षा प्रणालियों का निर्माण कुछ समय के लिए न कि सर्वैव के लिए किया जाता है। मानव को शिक्षा देने की कोई स्थायी विधियाँ नहीं हैं। जो पाठ्य क्रम वैदिक काल या पुनरुत्थान के युग में उपयुक्त था उसे २०वीं शताब्दी में बिना परिवर्तित किए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।"[1] अतः यह आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में यथाशीघ्र सुधार किया जाय।

४ समस्या—शिक्षा में विशिष्टीकरण (Specialisation in Education)

विश्वविद्यालय शिक्षा की एक अन्य समस्या यह है कि विभिन्न विषयों में विशिष्टीकरण पर बल दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्रों को किसी विशेष विषय में तो दक्षता प्राप्त हो जाती है परन्तु उनका दृष्टिकोण एकांगी रहता है और वे पूर्णतया शिष्ट व्यक्ति नहीं बन पाते हैं। रसेल ने उचित लिखा है "विशिष्टीकरण से एक प्रकार की संकीर्णता तथा अव्यवस्थितता होती है

---

1 Educational systems are built for a time and not for all tim There are no clan_eless ways of educatin- h man nature A curriculum which had vital ty in the Vedic period or the Renaissance cannot conti -e unaltered in the 20th Century —*Report of the University Education Commission* p 44.

जिसका परिणाम यह होता है कि विज्ञान के छात्रों को कला और कविता तथा सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का कोई ज्ञान नहीं होता है और साथ ही कला के विद्यार्थियों को इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि विज्ञान तथा वैज्ञानिक विधियों ने उस संसार को जिसमें वे निवास करते हैं किस प्रकार परिवर्तित कर दिया है।[1]

समाधान—सामान्य शिक्षा की व्यवस्था (Provision for General Education)

यह आवश्यक है कि ज्ञान की विभिन्न शाखाओं एवं अनुभवों में अन्तर्सम्बन्ध एवं सामंजस्य हो। जब तक छात्र ज्ञान तथा अनुभव की एकता का अनुभव नहीं करेंगे तब तक उनके मस्तिष्क का संतुलित विकास सम्भव नहीं होगा। विश्वविद्यालयों, कॉलिजों और माध्यमिक स्कूलों में कला एवं विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा (General Education) की भी व्यवस्था की जाय जिससे कला एवं साहित्य के छात्र विज्ञान के विषयों का और विज्ञान के छात्र कला एवं साहित्य के विषयों का ज्ञान अर्जित कर सकें। इस प्रकार सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा में सामंजस्य स्थापित करके संकुचित विशिष्टता (Specialization) को दूर किया जा सकेगा। साथ ही छात्रों के व्यक्तित्व का उपयुक्त विकास हो सकेगा और वे सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। सामान्य शिक्षा का पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-वस्तु विशिष्ट छात्रों के अनुरूप होने चाहिए। इस का विषय है कि 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने सुझाव दिया है सामान्य शिक्षा को विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में स्थान दिया जाय।

५ समस्या मार्ग-प्रदर्शन एवं समुपदेशन का अभाव (Want of Guidance and Counselling)

हमारी उच्च शिक्षा संस्थाओं में छात्रों का पथ प्रदर्शन करने और उनको परामर्श देने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके अभाव में छात्र स्वयं अपनी इच्छा से या किसी अनुभवहीन व्यक्ति के परामर्श से पाठ्य-क्रम के विषयों का

---

1 'There is a certain narrow unimaginative type of specialisation which results in the science students being complacently ignorant of art and poetry and art students having no appreciation of how science and the scientific technique have transformed the world in which they are living'—K. G. Saiyidain: Education, Culture and Social Order, p. 163.

चयन करते हैं। परिणाम यह होता है कि अनेक छात्र उन विषयों का चुनाव कर लेते हैं जो या तो उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल होते हैं या जिनका अध्ययन करने की उनमें क्षमता नहीं होती है। जब उन्हें इस बात का ज्ञान होता है तब इतना विलम्ब हो जाता है कि वे अपने को कुछ करने में असमर्थ पाते हैं। फलतः उन्हें छात्र जीवन में असफलता और इस असफलता के परिणामस्वरूप व्यावहारिक जीवन में निराशा का सामना करना पड़ता है।

समाधान—मार्ग प्रदर्शन एवं समुपदेशन की व्यवस्था (Provision for Guidance and Counselling)

इस बात की आवश्यकता है कि उच्च शिक्षा के विद्यालयों में आदि से लेकर अन्त तक छात्रों को अनुभवी तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों का पथ-प्रदर्शन एवं परामर्श प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में जो व्यवस्था मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए की है वैसी ही व्यवस्था विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा के विद्यालयों के छात्रों के लिए भी की जानी चाहिए।

६ समस्या—शिक्षा का निम्न स्तर (Low Standard of Teaching)

हमारे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर पर्याप्त निम्न है। आयंगर ने उचित ही लिखा है—"हमारे ज्ञान और शिक्षण का स्तर पहले तो कभी भी ऊँचा नहीं था, परन्तु अब यह अति तीव्रता से नीचे की ओर जा रहा है।"[1] इसके अनेक कारण प्रस्तुत किये जाते हैं। यह बात सुविदित है कि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों पर कार्य का भार अत्यधिक है। फलस्वरूप वे अपने व्याख्यानों को पूर्ण रूप से तैयार करने के लिए समय नहीं निकाल पाते हैं। कक्षाओं में इतने अधिक छात्र होते हैं कि उनमें और अध्यापकों में व्यक्तिगत सम्पर्क असम्भव होता है। ट्यूटोरियल पद्धति, विचार-गोष्ठियों और पुस्तकालय में अध्ययन करने की प्रथा का पूर्ण अभाव है। फिर, अध्यापकों का वेतन इतना न्यून है कि उन्हें अपने कार्य में रुचि लेने की कोई इच्छा ही नहीं होती है। साथ ही छात्रों को प्रतिदिन इतने घंटे कक्षाओं में अध्ययन करना पड़ता है कि कुछ घंटों के पश्चात् रोचक व्याख्यान भी उनके लिये भारस्वरूप प्रतीत होने लगता है।

---

1 "Our standards whether in scholarship or teaching, never very high or exacting, are now fast racing to the bottom." —K.R.S. Iyengar: *A New Deal for Our Universities*, p. 29

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

अध्यापन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये अनेक सुझाव दिये जा सकते हैं जिनमें से प्रमुख हैं—अध्यापकों की वेतन-वृद्धि, उनके द्वारा सप्ताह में १८ घंटे अध्यापन-कार्य, उनके सेवा प्रतिबन्धों में सुधार, ट्यूटोरियल कक्षाओं की व्यवस्था, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं का सुसंगठन एवं विमर्श-गोष्ठियों को प्रोत्साहन।

७. समस्या—शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी (English as Medium of Instruction)

हमारे देश को स्वतन्त्र हुए आज १८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर अब भी उच्च शिक्षा के विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के पद पर अंग्रेजी भाषा प्रतिष्ठित है। हमारी दीर्घकालीन दासता ने हम में अंग्रेजी के प्रति इतना मोह उत्पन्न कर दिया है कि हम अब भी उसका आंचल पकड़े हुए हैं। परन्तु इससे हमारे नवयुवकों का कितना अहित हो रहा है, इस बात को हमने कभी शान्त मस्तिष्क से नहीं विचारा है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कथन था—"विदेशी माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को क्षीण कर दिया है। इसने व्यक्तियों की आयु कम कर दी है। इसने उनको जनसाधारण से पृथक कर दिया है। इसने शिक्षा को आवश्यक रूप से मँहगा बना दिया है।"[1]

समाधान—शिक्षा का माध्यम संघीय भाषा (Federal Language as Medium of Instruction)

यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अंग्रेजी को शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा के माध्यम के पद से हटा दिया जाय। विश्वविद्यालय आयोग ने सुझाव दिया है कि प्रादेशिक भाषा या संघीय भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। अधिक उपयुक्त यह होगा कि संघीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय जिससे देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने और अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षा देने में सुविधा हो।

८. समस्या—दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective System of Examination)

हमारे विश्वविद्यालयों की परीक्षा-प्रणाली अनेक दोषों से युक्त है। आज तक जितनी भी समितियाँ एवं आयोग नियुक्त किये गए हैं उन सब ने इन

---

1 "The imposition of a foreign medium has sapped the energy of the nation. It has shortened the lives of the people. It has estranged them from the masses. It has made education unnecessarily expensive."

छात्रों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। १९०२ के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का कथन था— भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा का सबसे महान् दोष यह है कि शिक्षण परीक्षा के आधीन है न कि परीक्षा शिक्षण के।[1] १९४९ के विश्वविद्यालय आयोग का मत था— यदि हम विश्वविद्यालय शिक्षा के केवल एक विषय में सुधार का सुझाव दें, तो वह परीक्षाओं के सम्बन्ध में होना चाहिए।[2]

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

परीक्षा प्रणाली के सुधार के लिए कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं —वैज्ञानिक पद्धतियों को परीक्षा-पद्धति में क्रियान्वित करना, छात्रों का प्रगति-परीक्षाओं द्वारा परीक्षण करना, वस्तुगत प्रगति-परीक्षाओं का कुलक तैयार करना और प्रथम द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लिए क्रमशः ७० ५५ और ४० प्रतिशत अंक निर्धारित करना।

९ समस्या—अनुशासनहीनता (*Indiscipline*)

माध्यमिक शिक्षा के समान उच्च शिक्षा के स्तर पर भी छात्रों में अनुशासनहीनता की समस्या है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो० एन० के० सिद्धान्त ने उच्च शिक्षा संस्थाओं के छात्रों की अनुशासनहीनता के अलग विभिन्न प्रकार के कार्यों का उल्लेख किया है[3] यथा—

१ धन-सम्बन्धी अनियमितता (Financial Irregularity)
२ साधारण दुर्व्यवहार (Minor Misconduct)
३ उच्छृंखल व्यवहार (Disorderly Conduct)
४ यौन-सम्बन्धी दुर्व्यवहार (Sex Misconduct)
५ चोरी और सेंधमारी (Theft and Burglary)
६ अधिकारों का दुरुपयोग (Misuse of Privileges)
७ परीक्षा में धूर्तता (Cheating in Examination)

---

1 The greatest evil from which university education in India suffers is that teaching is subordinated to examination and not examination to teaching. —*Report of the Indian University Commission*

2 If we are to suggest one single reform in university education it should be that of examination. —*Report of the University Education Commission*, p. 3[illegible]5

3 N. K. Sidhanta: *The Problem of Discipline in Indian Universities*, p. 4

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उच्च शिक्षा के केन्द्रों में अनुशासनहीनता की समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। 'उच्च शिक्षा के केन्द्रों में अनुशासन बनाये रखने की समस्या प्रतिदिन अधिक महत्त्वपूर्ण होती जा रही है।'[1]

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

अनुशासनहीनता की समस्या का उन्मूलन करने के लिये प्रोफेसर सिद्धान्त ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये हैं जो निम्नलिखित हैं[2] —

१ प्रत्येक उच्च शिक्षा के केन्द्र में अनुशासनहीनता के प्रकार के आँकड़े रखे जायें।

२ अपराध करने वाले छात्र के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन और जहाँ उसने पहिले अध्ययन किया है वहाँ के अभिलेखों का अध्ययन किया जाए।

३ प्रत्येक अपराध के कारण की खोज की जाय।

४ अपराधी छात्र से एक विशेषज्ञ के द्वारा साक्षात्कार किया जाय और वह छात्र से अपराध की गम्भीरता और उसके द्वारा होने वाली क्षति पर विचार विमर्श करके उसको यह समझाने का प्रयत्न करे कि उसका कार्य उचित नहीं है।

उपरोक्त सुझाव तो उत्तम हैं ही पर इनके अतिरिक्त कुछ और उपायों को भी काम में लाया जा सकता है यथा—खेलकूद, छात्रावासों में सामुदायिक जीवन, भोजनालयों का छात्रों द्वारा प्रबन्ध, वाद-विवाद और गोष्ठियाँ। पर इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि इन कार्यों में शिक्षक अग्रणी हों।[3]

१० समस्या—छात्र-समितियाँ (Student Societies)

उच्च शिक्षा-संस्थाओं में छात्र समितियों की समस्या अति प्रबल है। इस सम्बन्ध में वी० के० आर० वी० राव (V K R V Rao) ने अपने विचार

1 'The problem of maintaining discipline in the seats of higher education is assuming greater importance every day' —Indian University Administration p 98

2. N K. Sidhanta op cit pp 6-7

3 The best way of solving the problem of indiscipline is to divert the activities of young students into healthy channels including sports games co-operative living in hostels self management of messes debates and symposia However the lead in all these matters should be given by the teachers themselves —Indian University Administration, p 98

इस प्रकार व्यक्त किये हैं 'छात्र समितियों के प्रश्न पर मैं अपने सहयोगियों के विचार अपने विचार के अनुकूल बनाने के लिये विशेष रूप से चिन्तित हूँ। हमारे विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की समितियों की अति विशाल संख्या है जिनमें से अनेकों सम्बद्ध नहीं हैं। हम यह नहीं जानते हैं कि उनको अपने धन कहाँ से मिलते हैं या वे उनको किस प्रकार व्यय करती हैं। मैं कह सकता हूँ कि कभी-कभी चिन्तित कर देने वाले विनाशक विदेशी फंड उनको मिल जाते हैं। मेरा विचार है कि अनेकों ऐसी समितियों की उपस्थिति के कारण ही छात्र राजनीतिज्ञों का निर्माण होता है।'[1]

इन छात्र समितियों से जो हानियाँ होती हैं वे सर्वविदित हैं। छात्र कभी-कभी कॉलेज के प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करते हैं। यदि कॉलेज के प्रिंसिपल या प्रबन्धक कोई ऐसा कार्य करते हैं जो उनकी इच्छा के प्रतिकूल होता है तो वे उसका विरोध करते हैं। इतना ही नहीं, वे चाहते हैं कि कॉलेजों में अध्यापकों की नियुक्तियाँ, उनके अध्यापन कार्य एवं कॉलेज से सम्बन्धित सभी बातों का प्रतिपादन उनके परामर्श से किया जाय। ऐसी दशा में ये समितियाँ कॉलेज के लिए अभिशाप सिद्ध होती हैं।

समाधान—छात्र-समितियों का पंजीकरण (Registration of Student Societies)

भारतीय शिक्षाविद् छात्र-समितियों के विरोधी नहीं हैं। इसके विपरीत वे चाहते हैं कि इस प्रकार की समितियों का संगठन किया जाय क्योंकि ये उनको अपनी मानसिक शक्तियों के प्रदर्शन का अवसर देती हैं, उनमें नेतृत्व के गुणों का विकास करती हैं और उनके सामाजिक सम्बन्धों का विकास करती हैं। पर प्रायः ये समितियाँ अनुचित दिशा में कार्य करने लगती हैं। उदाहरणार्थ—उनके सदस्य किन्हीं राजदूतों से सम्पर्क स्थापित करते हैं कि न [illegible]

1 'There is the question of student societies on which I am particularly anxious to canvass the opinion of my colleagues. We have a large number of societies in our universities of which many are not even registered. We do not know how they get their funds nor how they disburse them. Sometimes if I may say so foreign funds of a disturbing large magnitude get involved. Indeed talking of student politicians I think they emerge because of the existence of many such organisations.' —Indian University Administration, V. K. R. V. Rao's Speech on Problems Affecting University Students, pp. 104-105.

योजनायें बनाते हैं और विदेशों से धन प्राप्त करते हैं। इन सब बातों का छात्र-समुदाय पर अति दूषित प्रभाव पड़ता है। अतः इनको रोका जाना आवश्यक है।[1] इसके लिये वी० के० आर० वी० राव (V K R V Rao) का सुझाव है कि सब विश्वविद्यालय या कॉलेज-समितियों के लिये एक कानून बना दिया जिसके अनुसार उन्हें अपना पंजीकरण करवाना अनिवार्य हो जाय, और जिससे वे अपने सभासदों के निर्वाचन के समय कुछ नियमों का पालन करें और अपने आय-व्यय तथा अन्य कार्यों को लेख-बद्ध करें।[2]

उपसंहार

उपरिलिखित प्रायः सभी समस्याओं की ओर विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग का ध्यान आकर्षित हुआ है और उसने उनके समाधान के लिये अपने प्रतिवेदन में अनेक उपचारों का प्रस्ताव किया है जिनमें से अधिकांश को सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया गया है। हमें आशा है कि उच्च शिक्षा अपनी वर्तमान समस्याओं से मुक्त होकर भारत के नवयुवकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के साथ-साथ उनकी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्तियों को भी विकसित करके उन्हें देश के योग्य नागरिक बनायेगी।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What are the present developments in Higher Education in India? Write a critical essay giving your views on the reorganization of Higher Education
2. Summarise briefly the problems of Higher Education and suggest their remedies

1. Unfortunately we have in our universities certain very undesirable elements many of whom are in contact with embassies, [illegible] money from outside sou[illegible] effect on the student c[illegible]ed —*Indian University Administration* V K R V Rao's Speech on Problems Affecting University Students p 105
2. "I should like to suggest that legislation be introduced for the registration of all university or college societies to ensure that they observe certain rules for elections methods of keeping accounts and similar other things —*Ibid* p 105

२७

समाज (प्रौढ़) शिक्षा

(Social Adult Education)

प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा का इतिहास

(History of Adult or Social Education)

समाज शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डालने से पूर्व हमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि १९४९ से—जिसे हम समाज शिक्षा कहते हैं उसे उस समय से पूर्व 'प्रौढ़ शिक्षा' की संज्ञा दी जाती थी।

बीसवीं शताब्दी के उषा काल में भारतीयों ने एक नवीन युग में प्रवेश किया था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने जन जन के अन्तर में स्वदेश प्रेम की भावना को प्रस्फुटित कर दिया था। देश के कर्मठ नेताओं ने ब्रिटिश सरकार से राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की थी। कुछ महान् व्यक्ति जो देश के प्रत्येक कोने में शिक्षा का प्रसार करने के लिये चिन्तन कर रहे थे। उन्होंने न केवल बच्चों अपितु प्रौढ़ों को भी ज्ञान से आलोकित करने का निश्चय किया था। फलस्वरूप १९१० से ही यत्र-तत्र प्रौढ़ शिक्षा के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हो गए थे। परन्तु १९२१ तक प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए किसी निश्चित योजना को कार्यान्वित नहीं किया गया था। इसी आधार पर हम प्रौढ़ शिक्षा के इतिहास का सिंहावलोकन करेंगे।

१९२१ से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा

१९२१ से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा के लिये किये गये प्रयास प्राय नगण्य थे। निस्सन्देह कुछ रात्रि विद्यालयों का देश के विभिन्न भागों में निर्माण किया गया था परन्तु इनका उद्देश्य—फैक्टियों आदि में कार्य करने वाले उन बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना था जिन्हें दिन में अध्ययन करने के लिए समय नहीं मिलता था। कुछ वयस्क भी इनमें शिक्षा ग्रहण करते थे परन्तु विद्यालयों का प्रमुख ध्येय—उन्हें शिक्षा देना नहीं था।

'भारतीय शिक्षा-आयोग' (Indian Education Commission) की रिपोर्ट के अनुसार बम्बई प्रान्त में १८८१-८२ में १३४ वर्नाक्यूलर रात्रि विद्यालय थे। इनके अतिरिक्त 'दिवा विद्यालयों' (Day Schools) से सम्बद्ध २२६ रात्रि विद्यालय थे। इन वयस्क विद्यालयों में साधारण लिखना पढ़ना और अकगणित की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों की लोकप्रियता एव माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। इनकी सफलता देखकर आयोग ने सिफारिश की, कि देश में सभी सम्भव स्थानों पर रात्रि विद्यालयों का सचालन किया जाय। परन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया और वयस्क साक्षरता की प्रगति न हो सकी।

१९०१-०२ में केवल मद्रास बम्बई और बगाल में रात्रि विद्यालय सचालित थे जिनमें प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध था। परन्तु सरकार की उदासी के फल स्वरूप ये परिपल्लवित न हो सके और १९१७ तक इनकी सख्या में निरन्तर ह्रास होता चला गया।

१९१९ के 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) द्वारा भारतीयों को अति विशाल जनसंख्या में मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया। अब प्रौढ़ शिक्षा में जन-साधारण की रुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था क्योंकि यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के अभाव में भारतीय जनता मताधिकार का उचित उपयोग नहीं कर सकेंगे। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप देश में वयस्क साक्षरता के लिए क्रियात्मक पग उठाये गये। सरकार ने भी आर्थिक सहायता देकर इस पुनीत कार्य में योग दिया। परिणामत सयुक्त प्रान्त पंजाब बम्बई मध्य प्रान्त बगाल और मद्रास में रात्रि विद्यालयों तथा रात्रि-कक्षाओं का आयोजन किया गया।

१९२१ से १९२७ तक

इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी—प्रौढ़ शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना। इसका श्रेय भारतीय मत्रियों को था जिन्होंने भारतीय शिक्षा के

इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। यद्यपि इनके प्रयास अनियमित एवं अपर्याप्त थे, फिर भी उन्होंने अपने देशवासियों और सरकार को इस दिशा में कार्य करने के लिए अनुप्राणित किया। उन्हें शिक्षा प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता थी।

१९२१ में 'भारत-सरकार-अधिनियम' कार्यान्वित कर दिया गया और हस्तान्तरित विषयों को जनप्रिय मन्त्रियों के हाथों में सौंप दिया गया। शिक्षा भी एक हस्तान्तरित विषय था। भारतीय मन्त्रियों ने प्रौढ़ शिक्षा की समस्या में अत्यधिक रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप भारत के विभिन्न प्रान्तों में अक्षर-साक्षरता को लोकप्रिय बनाने के लिए अनवरत परिश्रम किया जाने लगा। परन्तु प्रौढ़ शिक्षा ने सफलता के सोपान पर अपना अभियान प्रारम्भ किया ही था कि १९२७ में विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। धनाभाव में अक्षर-साक्षरता के कार्य से सरकार और जनता—दोनों ने मुँह मोड़ लिया। फलतः प्रौढ़ विद्यालयों की संख्या क्षीण होती चली गई। १९३७ में इस प्रकार के पुरुष विद्यालयों की संख्या २०१६ और स्त्री विद्यालयों की ११ रह गई।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १९३७ तक प्रौढ़ शिक्षा के लिये जो चेष्टायें की गईं उनका कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। परन्तु यह बात सर्वमान्य है कि इन चेष्टाओं ने प्रौढ़ शिक्षा की नींव डाल दी और उसी नींव पर उपयुक्त परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने पर प्रौढ़ शिक्षा के भवन का निर्माण किया गया।

१९३७ से १९४७ तक

१९३७ में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के हाथ में स्वायत्त शासन की बागडोर आ जाने से जन शिक्षा के भाग्य ने पलटा खाया। शिक्षा प्रसार के अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने प्रौढ़ शिक्षा की समस्या पर पूर्ण ध्यान दिया। यह देखकर केन्द्रीय सरकार ने भी १९३९ में प्रौढ़ शिक्षा-समिति की नियुक्ति करके प्रथम बार प्रौढ़ शिक्षा में अपनी रुचि प्रकट की।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने विभिन्न प्रान्तों में प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए क्या प्रयत्न किये उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

आसाम—इस प्रान्त में कांग्रेसी सरकार ने साक्षरता प्रसार का कार्य शिक्षा-विभाग को सौंप दिया। इस विभाग ने स्कूलों तथा कालेजों के छात्रों की सहायता से साक्षरता एवं नागरिकता के सम्बन्ध में शिक्षा की व्यवस्था की।

बंगाल—इस प्रांत में सरकार ने ग्राम-समाओं द्वारा संचालित प्रौढ़ पाठशालाओं को विकसित करके तथा आर्थिक सहायता देकर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की।

बिहार—इस प्रान्त में प्रौढ़ शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ। यहाँ अपना गृह साक्षर बनाओ—(Make your home literate) नामक आन्दोलन प्रारम्भ किया गया और हजारों ग्रामों में पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले गये।

बम्बई—यहाँ १६३७ में एक प्रांतीय प्रौढ़ शिक्षा-परिषद् संगठित की गई जिसके तत्वावधान में बम्बई नगर में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया गया। यह योजना इतनी अधिक सफल हुई कि बम्बई नगर के वयस्कों को साक्षर बनाने के उद्देश्य से 'बम्बई नगर वयस्क शिक्षा-समिति' का निर्माण किया गया।

१६३८ में बम्बई सरकार ने एक 'एड हक एजूकेशन एडवाइजरी बोर्ड (Ad Hoc Education Advisory Board) नियुक्त किया। इस बोर्ड ने एस आर० भगत (S R Bhagat) की अध्यक्षता में निरक्षरता निवारण के लिये प्रशंसनीय कार्य किया।

उड़ीसा—इस प्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के काल में वयस्क शिक्षा का कार्य अति तीव्र गति से आगे बढ़ा परन्तु मंत्रियों के पद त्याग करते ही इस कार्य का प्रवाह मन्द होकर क्षीण होता चला गया।

पंजाब—इस प्रान्त में गैर-सरकारी मन्त्रिमण्डल होने के कारण प्रौढ़ साक्षरता का कार्य कम किया गया। परन्तु फिर भी सरकार ने वयस्कों में हजारों पुस्तकों का बिना कोई मूल्य लिये वितरण किया।

उत्तर प्रदेश—इस प्रान्त के कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार में स्तुत्य योग प्रदान किया। स्थान-स्थान पर प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये गये और वयस्कों के लिए पुस्तकों का प्रबन्ध किया गया।

१६४७ से १६६५ तक

स्वतन्त्र भारत में प्रौढ़ शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। १६४६ में 'प्रौढ़ शिक्षा' (Adult Education) को 'समाज शिक्षा' (Social Education) का नाम देकर उसके रूप का अभिवर्धन तथा परिवर्तन किया गया। यह निश्चय किया गया कि निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाने के साथ साथ नागरिकता की शिक्षा भी प्रदान की जाय। इस प्रकार समाज शिक्षा के

अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा के दृष्टिकोण को अति व्यापक एवं विस्तृत बना दिया गया।

द्वादश-सूत्रीय योजना—निरक्षर वयस्कों में नागरिकता के गुणों का विकास करने, उन्हें अपने कर्तव्य तथा अधिकारों के प्रति जागरूक करने और उनमें ज्ञान का प्रसार करने के लिये माननीय केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री ने ११ मई १९४८ को आयोजित किये गये प्रान्त-सम्मेलन के समक्ष अपनी द्वादश-सूत्रीय योजना प्रस्तुत की।

प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्रियों का सम्मेलन—फरवरी १९४९ में दिल्ली में प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें द्वादश-सूत्रीय योजना पर विचार विनिमय किया गया। तदुपरान्त यह कार्य-क्रम बनाया गया कि ३ वर्ष की अवधि में १२ से ५० वर्ष तक की अवस्था वाले निरक्षर व्यक्तियों में से कम से कम ५० प्रतिशत को साक्षर बना दिया जाय। परन्तु केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस कार्य क्रम को कार्यान्वित न किया जा सका।

पंचमुखी कार्य-क्रम—समाज शिक्षा के अन्तर्गत एक पंचमुखी कार्य क्रम बनाया गया है जिसके उद्देश्य हैं—(१) साक्षरता प्रसार (२) स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमों के ज्ञान का प्रसार (३) वयस्क व्यक्तियों के आर्थिक स्तर की उन्नति (४) नागरिकता की भावना, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जनता को जागरूकता और (५) समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना—इस योजना में समाज शिक्षा के लिए ७.५ करोड़ रुपए की स्वीकृति दी गई। अनेकों राज्यों ने सामाजिक सेवा-कार्य की व्यवस्था की और कुछ ने तो अति उपयोगी कार्य भी किया। सार्वजनिक रूप से विभिन्न प्रकार के कार्य में समाज शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला उदाहरणार्थ—ग्राम पंचायतों, सहकारी समितियों, एवं व्यावसायिक संघों द्वारा किये गये कार्य।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—समाज शिक्षा की योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा प्रणालियों में प्रस्तावित सुधारों को कार्यान्वित करने के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर समाज शिक्षा की कक्षाओं का विस्तार किया गया। राज्य-सरकारों ने साक्षरता एवं समाज शिक्षा कार्यों के [illegible] सदस्य शिक्षा कार्यकर्ताओं एवं [illegible] शिक्षा को व्यवस्था [illegible] की।

द्वितीय योजना में समाज शिक्षा के लिये ४ करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई थी। इसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपया राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा समाज शिक्षा पर व्यय किया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—तृतीय योजना में भारत-सरकार ने सामाजिक शिक्षा का विस्तार करने का आयोजन किया है। अतः सरकार ने निश्चय किया है कि सामाजिक शिक्षा तथा व्यस्क साक्षरता का विकास शिक्षा-संस्थाओं विशेष रूप से ग्रामों के स्कूलों, पंचायतों एवं स्वयंसेवी संगठनों से मिल-जुलकर की जाने वाली विस्तार कार्यवाइयों के रूप में किया जाना चाहिये।

तृतीय योजना में समाज शिक्षा के लिये ६ करोड़ रुपये की धन राशि निर्धारित की गई है।

नवीनतम कार्य—उच्च कर्मचारियों को समाज शिक्षा का प्रशिक्षण देने तथा प्रमुख समस्याओं पर उपयुक्त अनुसंधान करने के लिये दिल्ली में एक 'राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा केन्द्र' की स्थापना की गई है।

केन्द्रीय चलचित्र संग्रहालय में शिक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर ४६७४ चलचित्र आदि हैं जो संग्रहालय की सदस्य शिक्षा-संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं। १०४[illegible] शिक्षा-संस्थान एवं सामाजिक संगठन इस संग्रहालय के सदस्य हैं। श्रव्य दृश्य शिक्षा फोल्डर एवं त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है।

केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारें श्रव्य-दृश्य कार्यकर्ताओं की प्रशिक्षण गोष्ठियों का भी आयोजन करती रहती हैं। एक केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य संस्था स्थापित की जा चुकी है। यह संस्था प्रशिक्षण, उत्पादन तथा अनुसंधान-केन्द्र के रूप में कार्य करने के साथ-साथ श्रव्य दृश्य शिक्षा सम्बन्धी जानकारी भी उपलब्ध करती है।

प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा का स्थान एवं महत्त्व (Place & Importance of Adult or Social Education)

डॉ० [illegible] ने लिखा है, "हम राष्ट्रीय जीवन के एक ऐसे नवीन युग में प्रवेश कर रहे हैं जो सम्भवतः आगामी अनेक शताब्दियों के लिये हमारे देश की भावी रूप रेखा को निर्धारित कर देगा। हमारे राष्ट्रीय जीवन को [illegible] का पर्याय भी विनाश [illegible] और हम [illegible] और [illegible] यदि आज [illegible]

स्पष्ट मत्य का दाहरान की अनुमति दें तो मैं कहूँगा कि केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए 'उत्तम जीवन' (Good Life) का आश्वासन नहीं दे सकता है। हम भली प्रकार जानते हैं कि अनेक राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हुए भी अन्य शृङ्खलाओं में आबद्ध हैं जो उन्हें 'उत्तम जीवन' की ओर अग्रसर नहीं होने देती हैं क्योंकि इस प्रकार का जीवन कठिन परिश्रम तथा समाजोपयोगी कार्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में जब तक जनता निरन्तर सतर्कता (Eternal Vigilance) के रूप में अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने के लिए तैयार न हो, तब तक वह इस स्वतन्त्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकती है और इस सतर्कता के लिए उचित नागरिक तथा सामाजिक शिक्षा की आवश्यकता है। यदि हमारा लक्ष्य ऊँचा है और हम अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के सहारे सामाजिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक समानता के लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं तो स्पष्टतः हम जनसाधारण के लिए कहीं अधिक उच्च स्तर की शिक्षा की आवश्यकता होगी। नहीं तो सदैव इस बात का भय रहेगा कि चतुर परन्तु वर्तमान दल अथवा व्यक्ति अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथाकथित स्वतन्त्रता का अनुचित लाभ उठाएँगे। इसी बात को मैं तत्काल तथा बड़े पैमाने पर प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) का आन्दोलन प्रारम्भ करने के राजनीतिक औचित्य का आधार कहूँगा।'[1]

इन शब्दों में शिक्षा-मन्त्रालय सचिव ने राष्ट्रीय जीवन में 'समाज शिक्षा' के स्थान तथा महत्त्व को अंकित किया है। [illegible] राजनीतिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए निरन्तर सतर्कता की और सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जनसाधारण की उच्च शिक्षा को आवश्यक शर्तें बताया है एवं इन शर्तों को पूरा करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा के आन्दोलन पर बल दिया है। भारत में प्रौढ़ शिक्षा का यह आन्दोलन किस प्रकार किया जा रहा है, [illegible] के विकास की दिशा क्या है, इन प्रयत्नों के मार्ग में कौन-सी कठिनाइयाँ हैं, इन कठिनाइयों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है?—इन्हीं तथा इन प्रश्नों पर [illegible] पर विचार करना ही प्रस्तुत पाठ की विषय-वस्तु है। परन्तु इन समस्याओं के प्रस्तुतीकरण से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा तथा समाज शिक्षा शब्दों के अर्थ के स्पष्टीकरण करना अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

---

1 K. G. Saiyidain [illegible] 'F[illegible] & Re[illegible]' [illegible]
pp. 2[illegible]-91

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition of Adult Education)

'प्रौढ़ शिक्षा' के अर्थ की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। जहाँ कि प्रौढ़ शिक्षा शब्द से व्यक्त होता है इसका अर्थ है—निरक्षर प्रौढ़ों को पढ़ना सिखाना अर्थात् मुद्रित लिखित चिह्नों को उनकी ध्वनि तथा अर्थ के रूप में पहिचानना सिखाना। परन्तु वास्तविकता में प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। इसको स्पष्ट करते हुए एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है "प्रौढ़ शिक्षा में मोटे तौर पर वह सभी औपचारिक शिक्षा सम्मिलित है जो प्रौढ़ों को दी जाती है। भारत में प्रौढ़ शिक्षा के दो पहलू हैं (१) प्रौढ़ साक्षरता अर्थात् उन प्रौढ़ों की शिक्षा—जिनको विद्यालयों में कभी भी किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है और (२) साक्षर प्रौढ़ों की अनवरत शिक्षा।"[1] सयदन के मतानुसार "प्रौढ़ शिक्षा में राजनीतिक और नागरिक तथा नैतिक शिक्षाएं भी सम्मिलित हैं।"[2]

प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा
(New Concept of Adult Education)

स्वतन्त्रता प्राप्ति से बहुत समय पूर्व ही भारत में प्रौढ़ शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त देश के नेताओं ने राष्ट्रीय जीवन में प्रौढ़ शिक्षा के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। उन्हें यह पूर्ण रूप से आभास हो गया कि यदि इस महान् तथा प्राचीन देश को जीवित रहना है तो इस देश के निरक्षर वयस्कों को केवल साक्षर ही नहीं बनाना है, अपितु उनका बौद्धिक सांस्कृतिक सामाजिक तथा नैतिक उत्थान भी करना है। इसी विचारधारा से अनुप्राणित होकर देश के राजनीतिक कर्णधारों ने प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) को एक नवीन रूप प्रदान करके उसको अधिक व्यापक बनाया और उसको 'समाज शिक्षा' (Social Education)

---

1 "Adult education may be defined very broadly so as to include all instruction formal or informal imparted to adults In India adult education has two aspects (i) Adult literacy i e education of those adults who never had any schooling and (ii) Continuation education of the literate."—S N Mukerji Education in India—To-day and To-morrow PP 344-45

2. "Adult education includes political and civic as well as moral education."—K. G Saiyidain op cit P 241

का नया नाम पहिनाया। जनवरी १९४९ में इलाहाबाद में होने वाले केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education) के पन्द्रहवें अधिवेशन में भाषण देते हुए मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने प्रौढ़ शिक्षा के प्रति भारत-सरकार के नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य केवल वयस्कों को साक्षर बनाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु इसके अन्तर्गत उस शिक्षा को भी सम्मिलित कर देना चाहिए जो भारत के प्रत्येक नागरिक को लोकतांत्रिक व्यवस्था का विवेकपूर्ण सदस्य बना दे। उसी समय से प्रौढ़ शिक्षा की धारणा में परिवर्तन हुआ और उसे 'समाज शिक्षा' के नाम से पुकारा जाने लगा।

प्रौढ़ शिक्षा तथा समाज शिक्षा में अन्तर

(Defference Between Adult & Social Education)

प्रौढ़ शिक्षा तथा समाज शिक्षा के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है : प्रौढ़ शिक्षा की रूपरेखा में आज बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। साक्षरता के अत्यन्त छोटे दायरे से निकल कर वह सामाजिक शिक्षा का व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है। पहिले उसका आयोजन केवल औपचारिक था और व्यक्ति को साक्षर बनाकर और उसके लिए थोड़ा बहुत पढ़ने लिखने का प्रबन्ध कर यह मान लिया जाता था कि शिक्षा समाप्त हो गई। अब उसका लक्ष्य प्रौढ़ों को इस प्रकार की शिक्षा देना हो गया है जिससे वे व्यक्ति के रूप में और समाज के एक अङ्ग के रूप में अपना प्रभाव व्यक्त करते हुए उत्तर उत्तर परिश्रम से अधिक सम्पन्न और पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।[1]

समाज शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning & Definition of Social Education)

समाज शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की—"समाज शिक्षा से हमारा तात्पर्य है—पूर्ण मानव की शिक्षा। यह उसको साक्षरता प्रदान करती जिससे कि विश्व का ज्ञान उसे उपलब्ध हो सके। यह उसको बतलाती कि वह अपने वातावरण ... करने में अनुकूलन किस प्रकार करे और जिन प्राकृतिक दशाओं में वह निवास करता है उनका सर्वोत्तम प्रयोग किस प्रकार करे। इसका अभिप्राय उन ...

1 मनोहर प्रभाकर ... 'समाज शिक्षा के ... निर्माण ... ... समाज सुधार'— सफलतापूर्वक ... साहित्य निर्माण ... ... १९५८ शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश पृ० ५१।

कला कौशल तथा उत्पादन की विधियों की शिक्षा देना है, जिससे कि वह अधिक उत्तम आर्थिक स्थिति को प्राप्त कर सके। इसका उद्देश्य उसे व्यक्ति तथा समाज—दोनों के लिए स्वास्थ्य विज्ञान के प्राथमिक सिद्धान्तों की शिक्षा देना भी है जिससे कि हमारा गृहस्थ जीवन स्वस्थ तथा समृद्ध हो सके। इस शिक्षा को उसे नागरिकता का पाठ पढ़ाना चाहिए जिससे कि उसे संसार की बातों का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय और वह अपनी सरकार को उन निर्णयों के निर्माण में सहायता दे सके जो शान्ति तथा प्रगति में योग प्रदान करें।[1]

समाज शिक्षा की परिभाषा करते हुए हुमायूं कबीर ने लिखा है "समाज शिक्षा को अध्ययन के एक प्रकार के पाठ्य-क्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य—व्यक्तियों में नागरिकता की चेतना का उदय और उनमें सामाजिक समन्वय की उन्नति करना है। समाज शिक्षा निरक्षर वयस्कों में साक्षरता का प्रसार करके ही सन्तुष्ट नहीं होती है अपितु जन साधारण में शिक्षित मस्तिष्क के निर्माण को अपना लक्ष्य बनाती है। स्वाभाविक उपलब्धि के रूप में समाज शिक्षा व्यक्तियों में व्यक्तिगत तथा समाज के सदस्यों के रूप में नागरिकता के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की तीव्र भावना का समावेश करने का प्रयास करती है।"[2]

---

1. By Social Education we mean an education for the complete man. It will give him literacy so that knowledge of the world may become accessible to him. It will teach him how to harmonise himself with his environment and make the best use of the physical conditions in which he subsists. It is intended to teach him improved crafts and modes of production so that he can achieve economic betterment. It also aims at teaching him the rudiments of hygiene both for the individual and the community so that our domestic life may be healthy and prosperous. The last but not the least this education should give him training in citizenship so that he obtains some insight into the affairs of the world and can help his Government to take decisions which will make for peace and progress. —*Abul Kalam Azad's Inaugural Address to the UNESCO Seminar on Rural Adult Education held in December 1949 in Mysore*

2. "Social Education may be defined as a course of study directed towards the production of consciousness of citizenship among the people and the promotion of social solidarity among them. It is not content with the introduction of literacy among the grown up illiterates but aims at the production of an educated mind among the

पूर्वोल्लिखित परिभाषाओं के आधार पर हम समाज शिक्षा के अर्थ को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं —

'समाज शिक्षा एक नियन्त्रित अनुभव है जो व्यक्तियों की सामूहिक कार्यों में भाग लेने की क्षमता में वृद्धि करता है। समाज शिक्षा नागरिकता का उचित मूल्यांकन करने की चेतना एवं भावना को जन्म देती है व्यक्तियों के कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का स्पष्टीकरण करती है और यह शिक्षा देती है कि वे अपने सामित साधनों पर अवलम्बित होते हुए भी किसी विधि का अनुसरण करके अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

समाज शिक्षा का पचमुखी कार्यक्रम
(Five Point Programme of Social Education)

भारत-सरकार द्वारा समाज शिक्षा की समान धारणा के अन्तर्गत न केवल साक्षरता के महत्व को स्वीकार किया गया है अपितु यह भी स्वीकार किया गया है कि वयस्क की विभिन्न अभिरुचियों का विकास करने का प्रयास किया जाय। अत सरकार ने समाज शिक्षा के निम्नांकित 'पचमुखी कार्यक्रम' का निर्माण किया है[1] —

१ साक्षरता का प्रसार।
२ स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों की शिक्षा।
वयस्कों की आर्थिक उन्नति के लिए उद्योग धन्धों की शिक्षा।
४ वयस्कों में अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति पर्याप्त जागरूकता के साथ साथ नागरिकता की भावना का विकास।
५ व्यक्ति एव समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल मनोरंजन के स्वस्थ साधनों की व्यवस्था।

समाज शिक्षा का यह पचमुखी कार्यक्रम अति विस्तृत तथा व्यापक है। इसके अन्तर्गत न केवल व्यक्ति को साक्षर ही बनाया जायगा, अपितु उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास भी किया जायगा और इस प्रकार उसके जीवन का सर्वांगीण विकास किया जायगा जिससे वास्तविक मानवता विकसित हो कर अपनी पूर्णता पर पहुँच सके।

masses As a natural corollary it seeks to inculcate in them a lively sense of rights and duties of citizenship both as individuals and members of the community."
—Humayun Kabir: [illegible]

1 [illegible] 1955 p 110

समाज शिक्षा के लक्ष्य
(Aims of Social Education)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही यह अनुभव किया जाने लगा कि भारत में लोकतन्त्र की स्थापना तथा स्थिरता के लिए जनता को शिक्षित किया जाना अति आवश्यक है। अत स्वतन्त्र भारत के नवनिर्मित तथा प्रथम शिक्षा-मन्त्रालय ने वयस्कों की शिक्षा को अपने कार्य-क्रम में प्रमुख स्थान दिया। अत १९४६ में डा० मोहनलाल सक्सेना की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया और उसे वयस्क शिक्षा के प्रसार पर परामर्श देने का आदेश दिया गया। समिति ने वयस्क शिक्षा के उद्देश्यों को अति सकुचित पाकर सरकार को यह परामर्श दिया कि इस शिक्षा को 'समाज शिक्षा' की सज्ञा दे दी जाय। सरकार द्वारा समिति का यह परामर्श स्वीकार कर लिया गया। इस समिति ने समाज शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए —

१ नागरिकों को उनके अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करना और उनमें समाज-सेवा की भावना का विकास करना।

२ उनमें जनतन्त्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा उन्हें जनतन्त्रीय सरकार की शासन विधि की शिक्षा देना।

३ उनको देश तथा विश्व के समक्ष उपस्थित समस्याओं से अवगत कराना।

४ उनमें इतिहास भूगोल तथा सांस्कृतिक शिक्षा के द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न करना।

५ उनको गायन नृत्य कविता तथा नाटक के द्वारा सांस्कृतिक परिचय तथा आनन्द के अवसर प्रदान करना।

६ उनको सामूहिक वाद विवाद तथा पठन-पाठन के माध्यम से विशिष्ट नैतिक मूल्यों से अवगत कराना।

७ उनको लिखने-पढने तथा साधारण गणित का उपयुक्त ज्ञान प्रदान करना एव ज्ञान के प्रसार के प्रति प्रोत्साहन देना।

८ उनको दस्तकारी का आवश्यक प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने अवकाश का अपनी आर्थिक प्रगति के लिए उपयोग करने की शिक्षा देना।

९ उनमें पुस्तकालयों विचार-गोष्ठियों, शिक्षा-समितियों तथा जनता महाविद्यालयों द्वारा शिक्षा के प्रेम को बनाये रखना।

१० उनमें सहयोग की भावना का विकास करना।

समाज शिक्षा के उद्देश्य
(Purposes of Social Education)

समाज शिक्षा के उद्देश्यों का सरकार द्वारा दो स्पष्ट वर्गों में विभाजन किया गया है—(अ) व्यक्तिगत (Individual) तथा (ब) समाजगत (Social)।[1]

(अ) व्यक्तिगत उद्देश्य
(Individual Purposes)

वयस्क शिक्षा का प्रारम्भ १९वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। यह वह समय था जब वैज्ञानिक आविष्कारों तथा अनुसंधानों के कारण जीवन की जटिलताओं में अभिवृद्धि होने लगी थी। इन जटिलताओं ने निरक्षर वयस्कों के समक्ष विशेष रूप से उनके जो नगरों में निवास करते थे एक ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी जिसका सामना करने के लिए उन्होंने अपने को असमर्थ पाया। ऐसे अवसर पर सरकार ने वयस्क शिक्षा की योजना का कार्य क्रम निश्चित करके उनको संकट से उबारने के लिए एक नई दिशा में सक्रिय पग उठाया। समय की गति के साथ वयस्क शिक्षा की धारणा अधिक ही अधिक व्यापक होती चली गई और आज समाज शिक्षा के रूप में वह वयस्कों के मानसिक विकास तथा आर्थिक क्षमता में वृद्धि करके एवं उनको उत्तम सांस्कृतिक जीवन व्यतीत करने की सुविधा प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने की चेष्टा करती है। अतः व्यक्तिगत दृष्टिकोण से समाज शिक्षा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करती है —

१ वयस्कों का मानसिक (Mental) विकास

जो वयस्क अपनी पारिवारिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं ग्रहण कर सके हैं उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था करके उनका मानसिक विकास करना।

२ वयस्कों की व्यावसायिक (Professional) क्षमता का विकास

वयस्कों की व्यावसायिक क्षमता का विकास करने के लिए नागरिक क्षेत्रों में व्यावसायिक तथा टेक्निकल शिक्षा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं कुटीर उद्योग धन्धों की व्यवस्था करना।

३ वयस्कों का शारीरिक (Physical) विकास

वयस्कों का शारीरिक विकास करने के लिए स्वास्थ्य के व्यावहारिक सिद्धान्तों, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, वातावरण को स्वच्छ रखने के उपायों, विभिन्न रोगों से बचाव

---

1 Teachers Handbook of Social Education p 21

वाले प्रमुख रोगों को रोकने और पोषक आहार की समस्याओं को हल करने के लिए प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करना।

४ वयस्कों की सामाजिक कुशलता (Social Skill) का विकास

वयस्कों की सामाजिक कुशलता का विकास करने के लिये उन्हें अपने साथियों के मध्य निवास करने जीवन में प्रगति करने पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने और आधुनिक जटिल समाज में अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की शिक्षा प्रदान करना।

५ वयस्कों का सांस्कृतिक (Cultural) विकास

वयस्कों का सांस्कृतिक विकास करने के लिये तथा उन्हें अपने देश के प्राचीन तथा प्रचलित सांस्कृतिक कार्यों से अवगत कराने के लिये मनोरंजन नृत्य तथा लोक-नृत्य गीत तथा लोक-गीत व्याख्यान भाषणों आदि की उपयुक्त व्यवस्था करना।

६ वयस्कों का आत्म विकास (Self-development)

वयस्कों का आत्म विकास करने के लिये उनकी परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति, जीवन सिद्धान्तों के निर्माण अथवा किसी कला के अनुसरण के लिये सुविधा प्रदान करना।

(ब) समाजगत उद्देश्य
(Social Purposes)

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि वयस्क शिक्षा की प्राचीन धारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है और उसको समाज शिक्षा की संज्ञा दे दी गई है। यद्यपि समाज शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति करना है परन्तु इसके साथ ही उसे समाज का प्रतिमान तथा लाभप्रद सदस्य भी बनाना है जिससे कि न केवल उसका अपितु उसके सहयोग से समाज का भी उत्थान हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समाज शिक्षा— व्यक्तियों के समक्ष विभिन्न समूहों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को प्रस्तुत करती है। यह उनको विचार करने की विधियों तथा समूह में सामाज्य समस्याओं के समाधान की शिक्षा देती है। यह उनको इस बात की सम्यक् की शिक्षा देती है कि व समूह महान् परिवार अर्थात् भारत और उससे भी महान् परिवार अर्थात् विश्व का निर्माण करते हैं किस प्रकार परस्पर आबद्ध हैं और

उनके समग्र भारत के भाग्य निर्माण तथा विश्व-सेवा के लिए अनवरत प्रयास एवं कार्य करने का आदर्श उपस्थित करती है।'[1]

इस व्याख्या के आधार पर समाजगत दृष्टिकोण से समाज-शिक्षा के निम्नांकित चार उद्देश्य हैं —

१ सामाजिक एकता का विकास (Promoting Social Cohesion)

आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता है—व्यक्तियों के हितों का पारस्परिक संघर्ष। समाज को इस संघर्ष से सुरक्षित रखने के लिए सामान्य बंधनों के निर्माण की आवश्यकता होती है। यह न केवल वर्गों के पारस्परिक द्वेषों को दूर करने के लिए अपितु व्यक्तियों तथा व्यक्तियों और समूहों तथा समूहों के मध्य निरन्तर बढ़ती हुई पृथकता को जो हमारे नागरिक तथा हमारे ग्रामीण समाज की भी एक विशेष समस्या है, समाप्त करने के लिए भी आवश्यक है। किसी विद्वान् ने इस पृथकता को एकाकीपन (Solitude) कहकर परिभाषित किया है। इस प्रकार की 'एकाकीपन' विभिन्न भाषा भाषी समूहों, धार्मिक समूहों, सामाजिक तथा व्यवसाय समूहों, जातियों तथा उपजातियों, प्रशिक्षित तथा सामान्य व्यक्तियों, पूंजीपतियों तथा श्रमिकों, नगरवासियों तथा किसानों, युवकों तथा वृद्धों, धनी तथा निर्धन व्यक्तियों के मध्य विद्यमान है। समाज-शिक्षा का उद्देश्य है—इस एकाकीपन को यथासम्भव कम करना और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करना जिसमें देश के समस्त राष्ट्रीय तत्त्व भाग ले सकें।'[2]

२ राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति (Conservation & Improvement of National Resources)

समाज-शिक्षा व्यक्तियों का ध्यान इस बात पर दिलाती है कि वे भारत की प्रकृति द्वारा दिए गए उपहारों तथा यहाँ के निवासियों की देन आदि स्वयं किसी

---

1 It places before the people the needs and problems of various groups. It teaches them the way of thinking and solving the common problems in groups. It teaches them to see how these groups are knit together to form the great family that is India and the greater family that is world and holds before them the ideal of sustained effort and work as their offering to the destiny of India and the service of the world. —Teachers' Handbook of Social Education, pp. 21-22.

2 It is the purpose of Social Education to reduce these [illegible] as far as possible and to create a common culture in which all national elements can participate. —Ibid, p. 22.

सहायता से हम देश के समस्त प्राणियों के लिए जीवन के एक उचित स्तर का निर्माण करना सम्भव है। ये साधन दो प्रकार के हैं—(१) भौतिक तथा (२) मानवीय।

पिछड़े हुए राष्ट्रों के समक्ष एक कठिनतम कार्य है—अपने प्राकृतिक साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति। उदाहरणार्थ—भारत में हमारे समक्ष हमारी भूमि तथा वनों के क्षय की समस्याएं हैं। यह आवश्यक है कि हमारे देश का प्रत्येक नागरिक इन समस्याओं से अवगत हो और वह न केवल उनकी सुरक्षा अपितु उनकी उन्नति में भी अपना योग प्रदान करे।

प्राकृतिक साधनों से अधिक महत्वपूर्ण मानवीय साधन हैं। हमारे विद्यालयों तथा शिक्षा की उच्च संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे इन मानवीय साधनों की उन्नति करें। हमारे देश की अधिकांश जनता को विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है और इसलिए वे साहित्यिक तथा अन्य आवश्यक योग्यताओं का विकास नहीं कर सके हैं। यही कारण है कि समाज शिक्षा ने हमारे देश के निवासियों को साक्षरता तथा उत्पादक योग्यताओं के समान आधारभूत कुशलताओं की शिक्षा प्रदान करने का भार अपने ऊपर लिया है।

लेनिन (Lenin) का मत था कि निरक्षर जनता के आधार पर समाजवाद (Socialism) का निर्माण केवल इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि एक निरक्षर मनुष्य राजनीति के क्षेत्र से बाहर होता है। यही बात किसी भी वास्तविक जनतान्त्रिक समाज के सम्बन्ध में कही जा सकती है। एक अशिक्षित व्यक्ति में दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क की वह विशालता नहीं होती है जो स्वस्थ राजनीतिक जीवन के विकास के लिए आवश्यक है।

अन्त में हमारी एक प्रमुख आवश्यकता है—व्यक्तियों की उत्पादन-शक्ति में वृद्धि करना और इस कार्य को तब तक सम्पन्न नहीं किया जा सकता है जब तक जनता अशिक्षित है। साक्षरता तथा शिक्षा के अभाव में उत्पादन में एक निश्चित सीमा तक वृद्धि की जा सकती है उसके आगे नहीं।

३ सहकारी समुदायों तथा संस्थाओं का संगठन (Building Co operative Groups and Institutions)

विभिन्न समूहों का तनावों को कम करना और राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति प्रारम्भिक कार्य हैं। समाज शिक्षा को मनुष्यों को ऐसी कुशलताओं की शिक्षा देनी है जो ऐसे समूहों के निर्माण के लिए आवश्यक है

जो इन साधनों का समी के हित के लिए प्रयोग करने के लिये योग्य तथा इच्छुक हों।'¹ इन कुशलताओं के अन्तर्गत तीन बातों का समावेश है —
(१) समूहों के समक्ष उपस्थित समस्याओं का सामूहिक अध्ययन, (२) उनका समाधान करने के लिये सामूहिक तथा सहकारी कार्य और (३) इन कार्यों के परिणामों का सामूहिक मूल्यांकन।

अतः समाज शिक्षा का लक्ष्य है — उन विधियों का निर्माण करना जिनसे उपरिलिखित समूहों का निर्माण इस प्रकार किया जाय (अ) व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता तथा सम्मान से वंचित न हो सकें (ब) जिससे नेता लोग बिना बल का प्रयोग किए समूहों का नेतृत्व कर सकें (स) जिससे अधिकतम व्यक्तिगत सुख का सामाजिक प्रगति से सामञ्जस्य स्थापित किया जा सके, (द) जिससे उन आधारभूत संस्थाओं की स्थापना की जा सके जो व्यक्ति के कल्याण का सबके कल्याण के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक हैं और (य) जिससे प्रत्येक व्यक्ति इन संस्थाओं के विकास तथा स्थायित्व में योग दे सके।'

४ सामाजिक आदर्श का समावेश (Inculcating Social Ideology)

समाज शिक्षा का एक प्रधान कार्य है— लोगों को अपने व्यक्तिगत कल्याण को अपने समूह अपने समाज और अपने देश के कल्याण के लिए अर्पित करने और इस कार्य को प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए उद्यत करना।² इस दृष्टिकोण को एक प्रसिद्ध अंग्रेज कवि के इन शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है यदि इंगलैण्ड जीवित है तो मर कौन सकता है, यदि इंगलैण्ड का मरण होता है तो जीवित कौन है।³ समाज के जीवन में महानतम व्यक्ति का काम भी सीमित होता है। फिर भी उसके जीवन का मूल्य इस बात में आँका जाता है कि उसने मानव जाति की प्रगति में क्या योग प्रदान किया है।

---

1 Social Education has to lead on to teach men the skills which are necessary for building up groups qualified and willing to use these resources for the good of all.
—Teachers Handbook of Social Education, p 23

2. One of the most important functions of Social Education is to prepare the people to subordinate their private welfare to the welfare of their group, their community and their country and to do this joyfully."—Teachers Handbook of Social Education, p 23

3 Who dies if England lives who lives if England dies"

समाज शिक्षा का लक्ष्य है—निम्नतम भारतीय में इस भावना का समावेश कर देना कि वह मानव-जाति की प्रगति में योग प्रदान करने के कार्य को अपना आदर्श समझे।

समाज शिक्षा की आवश्यकता
(Need of Social Education)

समाज शिक्षा के उपरिवर्णित उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का निर्धारण किसी आकस्मिक घटना के परिणामस्वरूप न होकर, व्यक्ति समाज तथा देश की कतिपय आवश्यकताओं पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त किया गया है। इन्हीं आवश्यकताओं के फलस्वरूप समाज शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया गया। हम इनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

१ अशिक्षित वयस्कों की आवश्यकता (Need of Illiterate Adults)

हमारे देश में अभी तक अनिवार्य शिक्षा का पूर्णरूप से प्रसार नहीं हो पाया है। फलस्वरूप अनेक बच्चे शिक्षा के लाभ से वंचित रह जाते हैं। वयस्क होने पर भी उन्हें लिखने पढ़ने तथा सामान्य गणित का कोई ज्ञान नहीं होता है, जिससे उनका मानसिक विकास सदैव के लिए अवरुद्ध हो जाता है। उनका स्थान समाज में निम्न स्तर होता है और शिक्षित व्यक्तियों द्वारा उनका अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है। भारतीय संविधान ने देश के सभी नागरिकों को समानता तथा स्वतन्त्रता के समान अधिकार प्रदान किये हैं परन्तु अशिक्षित वयस्क उनका उपभोग नहीं कर पाते हैं। अशिक्षित वयस्कों की इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समाज शिक्षा की व्यवस्था की गई है जिसका प्रमुख उद्देश्य निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाना है।

२ अर्द्ध शिक्षित वयस्कों की आवश्यकता (Need of Half Literates)

भारत में अनेकों वयस्क एसे भी हैं, जिन्हें बाल्यकाल में आर्थिक कठिनाई तथा अन्य किसी कारणवश अपनी शिक्षा को स्थगित करना पड़ा था। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन अर्द्ध शिक्षित वयस्कों को शिक्षित करके उनके मानसिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया जाय जिससे कि वे देश के उत्तम नागरिक बन सकें और साथ ही अपने व्यवसाय में अधिक सफल हो सकें।

३ पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता (Need of Complete Education)

विद्यालयों तथा उच्च शिक्षा संस्थाओं में जो शिक्षा प्रदान की जाती है उसको पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह व्यक्तियों को जीवन के समस्त क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता नहीं प्रदान करती है। हमारे

विद्यालयों की शिक्षा के प्रमुख दोष ये हैं कि वह स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन तथा अवकाश के सदुपयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का शिक्षण नहीं देती है। जीवन में प्रवेश करने पर व्यक्ति अनुभव करता है कि उसे इस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। समाज शिक्षा व्यक्तियों की इस आवश्यकता को पूर्ण करती है।

४ मनोरंजन की आवश्यकता (Need of Recreation)

आधुनिक युग में अन्य देशवासियों के समान भारतीयों की आवश्यकता में भी वृद्धि हो गई है। वे इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक किसी न किसी विधि से धन का अर्जन करने में व्यस्त रहते हैं। दिन भर के कठिन परिश्रम के उपरान्त व्यक्तियों में किसी न किसी मनोरंजन द्वारा स्वयं को आनन्दित करने की इच्छा का उदय होना स्वाभाविक है। जहाँ तक नगरों का प्रश्न है वहाँ मनोरंजन के साधनों का अभाव नहीं खटकता है परन्तु ग्रामों में उनका सर्वथा अभाव है। समाज शिक्षा ने ग्राम वासियों के लिए विविध प्रकार के मनोरंजनों की व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर लिया है।

५ राजनैतिक आवश्यकता (Political Need)

आज का समय हमारे देश के लिए पुनर्नियोजन एवं पुनर्निर्माण का उत्थान एवं विकास का समय है। हमने अपने देश में धर्म निरपेक्ष कल्याणकारी प्रजातन्त्र की स्थापना की है। हम उसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना है किन्तु यह सब तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि उसकी आधारशिला ही सुदृढ़ एवं शक्तिशाली न हो। और यह आधार शिला है—इस देश की वह समस्त जनता जिसके ऊपर कि आज राज्य-सरकारों का सुयोग्य निर्वाचन निर्भर है तथा समूचे राष्ट्र के मंगलमय भविष्य का निर्धारण अवलम्बित है। इस उद्देश्य के लिए आवश्यक है—उस शिक्षा का प्रसार प्रचार करने वाली जन जन की उपयुक्त शिक्षा एवं उपयुक्त साहित्य। अतएव जिस प्रकार हम अपने बालक बालिकाओं तथा युवक-युवतियों की शिक्षा हेतु उनके निमित्त साहित्य की आवश्यकता एवं साहित्य के व्यवस्थित निर्माण पर बल देते हैं उसी प्रकार हमें अपने प्रौढ़ भाई-बहिनों की शिक्षा-दीक्षा और उनके लिए उपयुक्त एवं व्यवस्थित विधि से साहित्य के सृजन की चिन्ता भी करनी होगी।[1] वस्तुतः

1 राष्ट्रीय शिक्षा-मंत्रणा कमीशन रिपोर्ट "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माणगोष्ठी की सम्मति" के आधार पर—शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश १९५८।

इस चिन्ता का भार समाज शिक्षा ने पूर्ण रूप से अपने ऊपर ले लिया है।

६ सामाजिक आवश्यकता (Social Need)

समाज तुलनात्मक दृष्टि से सब से अधिक स्थायी समूह है जो कि सामान्य स्वार्थ सामान्य भू भाग सामान्य प्रकार का रहन-सहन और सामान्य पारस्परिक सहयोग या अपनत्व की भावना रखता है।"[1] समाज की इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि समाज का एक आवश्यक तत्व सहयोग है। समाज का सम्पूर्ण ढाँचा सहयोग की नींव पर ही खड़ा है। इस सहयोग से ही समाज की रक्षा हो सकती है और उसका निर्माण हो सकता है। समाज में जितनी भी संस्थायें समितियाँ और संगठन होते हैं उन सभी का अस्तित्व सहयोग पर निर्भर है। सहयोग प्राप्त करके ही ये समाज को प्रगतिशील बनाने में सफल हो सकते हैं। भारतीय समाज में सहयोग की भावना पूर्ण रूप से अनुपस्थित है। विभिन्न समूहों संस्थाओं और वर्गों में महान् संघर्ष है जातीय तथा धार्मिक द्वन्द्व हैं फलस्वरूप हमारा समाज जड़ तक हिल गया है। ऐसे समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की आवश्यकता का अनुभव करके ही समाज शिक्षा के कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जा रहा है।

७ आर्थिक आवश्यकता (Economic Need)

भारत की अधिकांश जनता निर्धन है। नगर-निवासियों की अपेक्षा ग्राम वासियों की दशा अधिक दयनीय है। उन्हें तन ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र और पेट भरने के लिये पर्याप्त भोजन भी नहीं नसीब होता है। हमारे देश के मस्तक पर निर्धनता की जो कलंक कालिमा लगी हुई है उसको बिना धोए हम प्रगति शील कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। इसी विचार से उत्प्रेरित होकर भारत सरकार ने करोड़ों निर्धन देशवासियों की आर्थिक उन्नति की ओर ध्यान दिया है और इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर समाज शिक्षा द्वारा उनको विविध प्रकार के कार्यों में प्रशिक्षित करके उनके आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने का निश्चय किया है।

८ देश की आवश्यकता (Need of the Country)

यदि एक देश के व्यक्ति शिक्षित नहीं हैं तो उस देश की क्रियात्मक शक्ति का पूर्ण रूप से उपयोग किया जाना सम्भव नहीं है। शक्ति-सम्पन्न तथा शक्ति

---

1 Society is the lar est relatively permanent group (of human beir s) who share common interests common territory a common mode of life and a common esprit de corps or belongingness"—J Gillin The Ways of Men p 340

के पूर्ण उपभोग के लिए शिक्षा की महान् आवश्यकता है। एक अशिक्षित व्यक्ति को इस बात का ध्यान नहीं होता है कि उसमें कौन सी शक्तियाँ निहित हैं और वह उनका उपयोग किस प्रकार कर सकता है। भारत के सम्बन्ध में यह बात अक्षरशः सत्य है। इस विशाल देश की जन-शक्ति का उचित उपयोग नहीं हो रहा है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर समाज शिक्षा का आयोजन किया गया है।

समाज शिक्षा द्वारा हमारे देशवासियों तथा देश का जो कल्याण होगा उसको हुमायूँ कबीर के इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है "शिक्षित श्रमिक अधिक उत्पादन में भाग देंगे और इस प्रकार उद्योग तथा व्यवसाय दोनों की अधिक उन्नति होगी। यह उन्नति केवल व्यवसाय तक ही सीमित नहीं रहेगी। अधिक शिक्षा के फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होगी और आवश्यक समाज-सेवाओं का विस्तार होगा। केवल शिक्षा ही हमारे देशवासियों के जीवन के स्तर में उन्नति करने के लिए वास्तविक आधार का निर्माण कर सकती है। शिक्षा ही मस्तिष्क तथा चरित्र के प्रशिक्षण की जिससे व्यक्ति अपने अवकाश का निर्माणकारी प्रयोग कर सकेंगे आवश्यक शर्त है। इस प्रकार केवल समाज शिक्षा ही वह आधार है जिस पर स्वतन्त्र भारत कल्याणकारी राज्य का निर्माण कर सकता है जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा सामाजिक सुरक्षा की माँग को स्वीकार करेगा।"[1]

समस्याएँ और उनके समाधान

(Problems and their Solutions)

समाज शिक्षा की समस्याएँ शिक्षा के अन्य अंगों की समस्याओं से अधिक जटिल और अधिक सरल भी हैं। वे अधिक जटिल इसलिये हैं क्योंकि समाज

---

1 Educated workers would make for increased production and thus make for increased prosperity for both industry and trade. The benefits would not, however, be confined to business alone. Increased education would lead to an addition in the national wealth and create the basis for an expansion of necessary social services. Education alone can create the material basis for an improvement in the standard of life of our people. It is also the necessary condition for the training of mind and character which will permit the people to make a creative use of their leisure. Social education is thus the foundation on which alone free India can build up a Welfare State which will recognise the claims of both individual freedom and social security. —Humayun Kabir, op. cit., p. 95

शिक्षा का उद्देश्य—उन वयस्क पुरुषों तथा स्त्रियों को शिक्षित करना है जो शिक्षा प्राप्त करने की आयु को पार कर चुके हैं। ये अधिक सरल इसलिए हैं क्योंकि हम इनको साक्षर की अपेक्षा कम शिक्षा देनी है।

भारत में समाज शिक्षा की समस्याएं प्रगतिशील देशों की समस्याओं से भिन्न हैं। अन्य देशों में उन वयस्कों के लिये शिक्षा की योजनाएं कार्यान्वित की जाती हैं जो अपने बाल्यकाल में अनिवार्य शिक्षा से लाभ उठाकर कुछ शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं। भारत में मुख्य रूप से उन वयस्कों को शिक्षित किया जाना है जो किसी प्रकार की भी शिक्षा प्राप्त न करने के कारण पूर्ण रूप से निरक्षर हैं। इसके अतिरिक्त भारत में जो एक विचित्र विशेषता पाई जाती है वह यह है कि यहाँ के वयस्क निरक्षर होते हुए भी अशिक्षित नहीं हैं। 'यद्यपि भारतीय ग्रामवासी निरक्षर है पर इसलिये वह अशिक्षित नहीं है। वह एक अर्थ में शिक्षित है। उसकी स्मृति विलक्षण है जिसमें उसने अपने देश के प्राचीन ज्ञान का संचय कर रखा है।'[1]

उपर्युक्त तथ्यों की उपस्थिति के परिणाम स्वरूप समाज शिक्षा के क्षेत्र में कतिपय असाधारण समस्याओं का परिगणन किया जा सकता है जिनका संक्षिप्त वर्णन और समाधान निम्नांकित है —

१ समस्या—निरक्षरता (Illiteracy)

संसार के सबसे घनी जनसंख्या वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या ४३ ६४ २४ ४२९ थी।[2] इस विशाल जनसंख्या में केवल २३ ७ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत ३३ ९ और स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत १२ ८ है।[3] नागरिक क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में यह साक्षरता बहुत कम है।[4]

इन आँकड़ों से सिद्ध हो जाता है कि हमारे देश में ७६ ३ प्रतिशत व्यक्ति अज्ञानता के अन्धकार में अपना मार्ग टटोल रहे हैं। इस अज्ञानता की उपस्थिति में किसी प्रकार की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक प्रगति की आशा

---

1 Although the Indian villager is illiterate he is not therefore uneducated He is educated in a sense He has a tremendous memory in which he carries a vast amount of folk lore —N A Toothi *The Vaishnavas of Gujarat* p 180

2 *India* 1962, p 10

3 *First Year Book of Education* p 913

4 द्वितीय पंचवर्षीय योजना पृ० ४८२।

करना—धातु की दीवारों पर गगन चुम्बी अट्टालिका का निर्माण करने के समान है। इस विशाल जनसंख्या को किस प्रकार शिक्षा के आलोक में लाया जाय, यह एक ऐसी जटिल समस्या है जो किसी भी देश के कुशल राजनीतिज्ञों तथा प्रकाण्ड विद्वानों के होश गुम कर सकती है। इस समस्या का यथार्थ चित्र पी० एन० चटर्जी (P N Chatterjee) के इन शब्दों को पढ़कर हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है "विश्व के निरक्षर वयस्कों की सम्पूर्ण संख्या के आधे से अधिक भारत में निवास करते हैं। उनको ज्ञान के प्रकाश में ला सकने का कार्य अति विशाल है।"[1]

समाधान—निरक्षरता का उन्मूलन (Liquidation of Illiteracy)

यद्यपि ७६ ३ प्रतिशत वयस्कों की निरक्षरता का उन्मूलन कोई सरल कार्य नहीं है फिर भी कुछ उपायों का सहारा लेकर सफलता प्राप्त की जा सकती है। हम इस समस्या पर विजय तभी प्राप्त कर सकते हैं जब कि हम उनको संस्कृति तथा मानवता के उच्च शिखर पर आसीन करने के स्वर्णिम स्वप्न को देखना बन्द कर दें और इस बात के लिए कटिबद्ध हो जायें कि हम कम से कम समय में उनको साक्षर बनाना है। साथ ही हमें केवल उनके अक्षर ज्ञान पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए न कि उनके लिखने तथा साधारण गणित की योग्यता पर। लिखने-पढ़ने और साधारण गणित के आधारभूत तत्वों में भी पढ़ने का स्थान सर्वोपरि है।[2] वयस्कों में पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करने के लिये हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी ऐसी विधि का प्रयोग करें जो वर्णनिक दृष्टि से पूर्ण हो अपितु हम ऐसी विधि को अपनाना चाहिए जिससे शीघ्र ही उत्तम परिणाम प्राप्त हो सकें।

इस प्रकार की एक विधि का आविष्कार अमरीका के एक मिशनरी डाक्टर फ्रैंक लाबाक (D Frank Laubach) ने फिलिपाइन द्वीप-समूह के मोरो जाति (Moros) के लोगों को शिक्षित करने के लिए अपनाया थी। उन्होंने कुछ ऐसे चित्र चार्ट बनाए थे कि जिनमें प्रत्येक प्रकार लिए जाते थे। फिर उन्होंने कुछ शब्द और चित्र और उनकी सहायता से अक्षर का निर्माण किया। इस प्रकार उन्होंने चार्टों की सहायता से प्रत्येक शब्द के दो एक दिन में ३ ० अक्षरों

---

1 More than half the total number of adult illiterates in the world live in India. The work of bringing some light to them is one of tremendous magnitude.

2. Reading is the first common element even among the three R's.—Quoted from Dr Edwin Embree's address at the Regional Literacy Conference held at Washington on 27 & 30 October 1935

का ज्ञान करा दिया। प्रत्येक वयस्क को जिसने पढ़ना सीख लिया था पाठ लेकर अपने परिवार के सदस्यों तथा पड़ोसियों को पढ़ाने के लिये भेजा गया। पाँच वर्ष में 'लानाव' (Lanao) प्रान्त के १५०००० वयस्कों में से ७०००० को न केवल पढ़ने अपितु लिखने का भी ज्ञान करा दिया गया।[1]

डा० लॉबक ने १९३५, १९३७ तथा १९३८ में भारत पधार कर मराठी तेलगू बंगला हिन्दी, तमिल और गुजराती भाषाओं की अपनी विधि के द्वारा शिक्षा देने के मार्ग का प्रदर्शन किया। पंजाब में मोगा के मिशनरियों ने इस विधि को अपना कर पर्याप्त सफलता प्राप्त की। दुःख है कि इस विधि का परीक्षण भारत के अन्य भागों में नहीं किया गया। हमें विश्वास है कि यदि भारत सरकार डा० लॉबक द्वारा निर्मित विधि का अनुसरण करे, तो अल्प समय में ही भारत के जन-जन को साक्षर बनाया जा सकता है।

अभी तक सरकार ने वयस्कों की शिक्षा के प्रसार की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया है। सैयदेन (Saiyidain) ने उचित ही लिखा है "जो कुछ हम अभी तक नहीं कर पाए हैं उसमें सबसे पहले तो यह स्पष्ट सत्य हमारे सामने है कि मात्रा की दृष्टि से अभी तक जो कुछ किया गया है वह बहुत ही थोड़ा है। हमारे लगभग ८५% देशवासी न तो छपी हुई पुस्तक का एक भी पृष्ठ पढ़ सकते हैं न वे मतदान की पर्ची पर समझदारी के साथ निशान लगा सकते हैं और न ही रोजमर्रा के छोटे-छोटे हिसाब लगा सकते हैं। अगर संसार का एक ऐसा मानचित्र बनाया जाय जिसमें साक्षरता की स्थिति दिखाई जाय और पृथ्वी के निरक्षर इलाकों को काला रंगा जाय तो भारत उस मानचित्र में एक अन्धकार पूर्ण महाद्वीप जैसा दिखाई देगा और यह हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है।"[2] स्पष्ट रूप से निरक्षरता का उन्मूलन करने का दायित्व सरकार पर है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार या तो डा० लॉबक की सफल विधि को अपना कर अथवा किसी अन्य उपाय को अपनाकर देश की जनता को निरक्षरता के गर्त से निकाले।

२ समस्या—पाठ्य-क्रम (Curriculum)

समाज शिक्षा की दूसरी समस्या है—पाठ्य-क्रम की। वयस्कों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम न होने के कारण समाज शिक्षा के कार्य में भारी अड़चन पड़ रही है। अभी तक इस बात पर सहमति नहीं हो सकी है कि वयस्कों के

---

1 T N Siqu[illegible] \f[illegible] n Ind in Educati n P 162

२ के० जी० सैयदेन शिक्षा की पुनर्रचना पृ० १५४।

लिए किस प्रकार का पाठ्य क्रम सबसे अधिक उपयोगी होगा। जिस पाठ्य क्रम का बालकों की शिक्षा के लिए प्रयोग किया जाता है उसे प्रौढ़ों के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनकी अभिरुचियाँ आवश्यकतायें और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण नितान्त भिन्न हैं। फिर समस्त प्रौढ़ों के लिये भी समान पाठ्य-क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनमें कुछ बिल्कुल निरक्षर हैं जिनके लिए प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान की व्यवस्था आवश्यक है, कुछ अर्द्ध शिक्षित हैं जिनके लिए कुछ विशिष्ट विषयों के शिक्षण की आवश्यकता है और कुछ नवसाक्षर (Neo literate) प्रौढ़ हैं जो पढ़ना-लिखना जानते हैं तथा जिनमें नागरिकता की भावना का विकास करने के लिये सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।'[1]

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त पाठ्य क्रम के निर्धारण में एक कठिनाई यह भी है कि वयस्कों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए पाठ्य क्रम का उद्देश्य— केवल प्रौढ़ों को बौद्धिक ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिये अपितु उन्हें किसी कला या कौशल का भी प्रशिक्षण देना चाहिए जिससे कि वे अवकाश का सदुपयोग कर सकें और धन का भी उपार्जन कर सकें।

पाठ्य-क्रम के निर्माण में अन्तिम कठिनाई यह है कि वयस्कों में सभी आयु के पुरुष और स्त्रियाँ हैं। हमारे देश में इन वयस्कों तथा युवकों को भी प्रौढ़ों की श्रेणी में रखा जाता है जिनकी आयु १२ से १८ वर्ष की है। मोटे तौर पर वय के अनुसार प्रौढ़ों का इस क्रम में रखा जाता है —(१) १२ वर्ष से १८ वय तक के प्रौढ़ (२) १८ वर्ष से ४५ वर्ष तक के प्रौढ़ और (३) ४५ वय से अधिक आयु के प्रौढ़। स्पष्ट है कि इन तीनों वय वर्ग के प्रौढ़ों की मानसिक रुचियाँ, बौद्धिक-स्तर, आवश्यकतायें एवं क्षमताओं में अन्तर होगा। अतः सभी के लिए समान पाठ्य क्रम निर्धारित किया जाना उचित न होगा।

इन सब कठिनाइयों के कारण ही इस पाठ्यक्रम के निर्माण कार्य को एक कठिन समस्या का रूप दे दिया है।

समाधान—उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण (Construction of Suitable Curriculum)

उपयुक्त पाठ्य क्रम का निर्धारण [illegible] प्रौढ़ और [illegible] [illegible]

---

१ [illegible]

करने के उपरान्त ही किया जा सकता है क्योंकि समाज शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता का प्रसार करना ही नहीं है अपितु वयस्कों का सर्वांगीण विकास भी करना है। अतः पाठ्य क्रम में उन समस्त विषयों को स्थान देना होगा जिनसे कि उनका राजनैतिक आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास भी हो सके। विषयों का निर्धारित करते समय वयस्कों की अभिरुचियों मानसिक प्रवृत्तियों बौद्धिक स्तरों तथा पर्यावरण की आवश्यकताओं के अनुकूल एक नहीं अपितु अनेक पाठ्य क्रमों का संगठन करना पड़ेगा जिससे कि सभी वर्गों के वयस्कों के जीवन का पूर्ण विकास किया जा सके। यद्यपि पाठ्य-क्रम विभिन्न होने पर उनके विषय साधारणतः समान होंगे और वयस्कों के बौद्धिक विकास के आधार पर उनका अलग गहन अथवा विस्तृत अध्ययन आवश्यक होगा।

उपरिकथित तत्वों को ध्यान में रखकर किस प्रकार पाठ्य-क्रम का निर्माण किया जाय और उनमें किन विषयों को स्थान दिया जाय यहाँ इस बात पर विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा।

उचित तो यह होगा कि पाठ्य-क्रम के निर्माणकर्ता किसी ऐसे देश के पाठ्य-क्रम को अपना आदर्श मान लें जिसमें निवास करने वाले वयस्क प्रायः उन्हीं परिस्थितियों में हों जिनमें भारतीय हैं। इस दृष्टि से दो देशों के पाठ्य क्रमों को आदर्श रूप में स्वीकार किया जा सकता है—डेनमार्क और चीन।

डेनमार्क के 'पीपुल्स हाई स्कूल' (People's High School in Denmark) का पाठ्य-क्रम भारत के लिये उपयुक्त होगा क्योंकि हमारा देश डेनमार्क के समान एक निर्धन तथा कृषि प्रधान देश है। यहाँ पुरुषों को शीत ऋतु के पाँच मासों में और स्त्रियों को ग्रीष्म ऋतु के तीन मासों में शिक्षा दी जाती है। अध्ययन समाप्त करने पर उन्हें किसी परीक्षा में सम्मिलित नहीं होना पड़ता है। प्रत्येक कक्षा में अध्यापन का कार्य किसी परम्परागत गीत से प्रारम्भ होता है। इस गीत का प्रमुख उद्देश्य—वयस्कों को राष्ट्रीय आदर्शों की ओर प्रेरित करना होता है। प्रथम कक्ष में इतिहास का शिक्षण व्यावहारिक ढंग से किया जाता है। इस विषय का शिक्षण करते समय छात्रों को कथाओं तथा देश की परम्पराओं का उल्लेख किया जाता है। दूसरे कक्ष में व्यायाम की व्यवस्था होती है। तीसरे कक्ष में विद्यार्थी शिक्षक से प्रश्न पूछते हैं और वह उनके उत्तर देता है। मध्याह्न के भोजन के उपरान्त छात्र गण आराम करते हैं। तदुपरान्त साहित्य पौराणिक कथाओं और प्राकृतिक विज्ञान

पर भाषण दिये जाते हैं। फिर सामूहिक अध्ययन, मातृभाषा पर वाद-विवाद, निबन्ध रचना और गणित का शिक्षण दिया जाता है।[1]

चीन का पाठ्य-क्रम भारत के लिये और भी अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि दोनों देशों की आवश्यकतायें तथा कठिनाइयाँ समान हैं। उस देश के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत जिन विषयों को स्थान दिया गया है वे हैं: सामान्य ज्ञान, पढ़ना, लिखना, नागरिक शास्त्र, गणित, संगीत, चित्रकला, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य विज्ञान, कृषि, दस्तकारी, वाणिज्य, व्यापार, राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र और सामाजिक न्याय। इनके अतिरिक्त प्रौढ़ विद्यालयों में स्वशासन, वृक्षारोपण, सड़क निर्माण, बाँध निर्माण, नहरों, समितियों की स्थापना तथा व्यायाम की भी शिक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रकार चीन में प्रौढ़ शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बद्ध तथा उसको पूर्ण करने वाली ही नहीं हो गई है अपितु सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान का साधन भी हो गई है।[2] प्रौढ़ शिक्षा का ऐसा पाठ्य-क्रम भारत के लिये भी हितकर सिद्ध हो सकता है।

यदि किन्हीं कारणों वश हमारे देश के नेता तथा शिक्षाविद् प्रभाव एवं चीन के पाठ्य-क्रमों को आदर्श मानकर भारतीय प्रौढ़ों के लिये पाठ्य-क्रम का संगठन करने के लिये उद्यत नहीं हैं तो हम अन्य उपयुक्त पाठ्य-क्रम का सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यहाँ यह कहना ऐसा आवश्यक है कि केवल साक्षरता को पाठ्य-क्रम का ध्येय निर्धारित न किया जाय। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भ, यह केवल एक साधन है—जिसके द्वारा मनुष्यों तथा स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है।[3]

प्रौढ़ शिक्षा के पाठ्य-क्रम में सर्वप्रथम स्थान पढ़ने और लिखने को दिया जाय। जब प्रौढ़ इनका पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध कर लें तब उनके लिए मातृभाषा, गणित, इतिहास, नागरिकशास्त्र अथवा भूगोल, कृषि, पशुपालन, सामान्य विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, साहित्य, प्रारम्भिक चिकित्सा तथा व्यायाम की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार इन

1. T. N. Siqueira, Op. cit., pp. 164-165.
2. "Adult education in China has thus become not only a continuation and completion of elementary education but also a means of social and national regeneration." —T. N. Siqueira, Op. cit., p. 166.
3. "Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby men and women can be educated." —Mahatma Gandhi's Article in the Harijan, 31 July 1937.

विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों की भी शिक्षा दी जाय। वयस्कों के सामर्थ्य सुनिश्चित व्यक्तियों द्वारा प्रौढ़ विद्यालयों में वयस्कों के व्यवसायों तथा उनके लिए लाभप्रद विषयों पर व्याख्यानों की आयोजना की जाय। प्रत्येक वयस्क को किसी कला कौशल में अवश्य प्रशिक्षित कर दिया जाय जिससे कि वह उसको अपना आय-वृद्धि का साधन बना सके।

३ समस्या—शिक्षण पद्धति (Method of Teaching)

वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण पद्धति का निर्धारण भी कुछ कम जटिल समस्या नहीं है। इसका कारण यह है कि जीवन तथा समाज के प्रति वयस्कों का दृष्टिकोण समान नहीं होता है। इस बात में वे बच्चों से भिन्न होते हैं। अल्प आयु में दृष्टिकोण का विकास अधिक न होने के कारण प्राय सभी बच्चों के लिए समान शिक्षण-पद्धति का अनुसरण किया जा सकता है। वयस्कों के लिए ऐसा करना न तो सम्भव ही है और न उचित ही। वयस्कों में अहम् की भावना पर्याप्त रूप से विकसित हो जाती है। वे अधिक सामाजिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। उनके अपने कुछ सिद्धान्त होते हैं उनकी अपनी आदतें होती हैं जिनके विरुद्ध वे काम नहीं करना चाहते हैं। इन सभी बातों के कारण प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का सरलता पूर्वक निश्चय करना सम्भव नहीं है। यदि शिक्षण-पद्धति में कोई भी ऐसा तत्व है जो उनको अरुचिकर प्रतीत होता है अथवा जो उनकी अहम् की भावना स्वतन्त्रता सिद्धान्तों तथा आदतों से टकराता है तो शिक्षण-पद्धति का असफल होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि अभी तक किसी एक पद्धति को वयस्कों के लिए निश्चित नहीं किया जा सका है।

समाधान—उपयुक्त शिक्षण-पद्धति (Suitable Method of Teaching)

वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण पद्धति का निर्धारण करने के लिए उनके मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन किया जाना आवश्यक है। शिक्षण-पद्धति ऐसी हो जो उन्हें रुचिकर प्रतीत हो तथा उनको शिक्षा ग्रहण करने के लिए आकर्षित कर सके। हमारे देश के शिक्षा विशारद इस दिशा में यथेष्ट रूप से सक्रिय हैं और उन्होंने कुछ उपयुक्त शिक्षण-पद्धतियों को भी खोज निकाला है। हम इनका तथा कुछ अन्य पद्धतियों का विवरण निम्नांकित पंक्तियों में दे रहे हैं

(१) वर्ण परिचय पद्धति—इस पद्धति में सबसे पहिले अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है। हमारे प्राथमिक विद्यालयों में इसी पद्धति का प्रचलन है।

(२) वाक्य-पद्धति—इस पद्धति में पहिले दो शब्दों का ज्ञान एवं साथ कराया जाता है और फिर उनको संयुक्त करके विभिन्न वाक्यों का रूप दिया

जाता है, उदाहरणार्थ— 'आ' और 'मा' शब्द ले लीजिए। इनसे बनने वाले वाक्य इस प्रकार हो सकते हैं— आ मा, मा आ, आ मा आ, आ मामा, मामा आ, आ मामा आ।'

(३) लॉबेक (Laubach) की पद्धति—लॉबेक नामक एक अमरीकी मिशनरी ने विश्व के समक्ष एक नवीन वाचन-पद्धति प्रस्तुत की है। इसमें साधारण बोल-चाल के कुछ शब्दों को लेकर चार्टों की सहायता से सम्पूर्ण वाक्यों की शिक्षा दी जाती है। —(देखिए निरक्षरता का उन्मूलन)

(४) कहानी-पद्धति—इस पद्धति को निकालने का श्रेय श्री [illegible] को है। इसमें अक्षरों की बनावट पर कुछ कहानियाँ सिखाकर अक्षर-ज्ञान कराया जाता है।

(५) सरल स्वर-पद्धति—यह पद्धति भी पश्चिम की है। इसमें गीतों की प्रधानता दी गई है। पहिले उनको गाया जाता है और फिर चार्ट में देखकर उनको पहिचाना और याद किया जाता है। उदाहरणार्थ— कलम से पढ़ेंगे, कलम से लिखेंगे, कलम से सियेंगे, कलम से बढ़ेंगे।

सभी इन पद्धतियों के समर्थक हैं और सभी इन पद्धतियों को प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त बताते हैं। परन्तु इनमें से किसी भी पद्धति को अपनाते समय यह आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं के अक्षरों को कुछ सरल बना दिया जाय जिससे कि अक्षरों को शीघ्र पहिचानने, समझने और लिखने में सुविधा हो। एक अन्य सुझाव यह भी है कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन अक्षरों का प्रयोग किया जाय। इससे हमारे देश के निवासी अपनी भाषाओं के साथ-साथ भारतीय भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और भाषाओं की विभिन्नता के कारण देश की एकता में जो बाधा उपस्थित हो रही है उसका भी अन्त हो जाएगा। कमाल अतातुर्क (Kemal Ataturk) ने टर्की में रोमन अक्षरों का प्रयोग करके अपने देशवासियों की अशिक्षता का निवारण किया था तथा उनको एकता के सूत्र में आबद्ध किया था।

४ समस्या—अध्यापकों का अभाव (Dearth of Teachers)

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्ताओं की [illegible] समाज शिक्षा के विस्तार के मार्ग में बाधक हुए हैं। प्रौढ़ शिक्षालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों का अभाव है। जिन अध्यापकों को इन विद्यालयों में नियुक्त किया जाता है वे [illegible] प्राथमिक शिक्षण के लिए [illegible] [illegible]

प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त शिक्षण पद्धतियों में अप्रशिक्षित होते हैं। वे समाज शिक्षा के उद्देश्यों, सम्यक् आवश्यक साहित्य तथा शिक्षा के उपयोगी साधनों से अवगत नहीं होते हैं। अतः जब उनको प्रौढ़ शिक्षा का भार सौंप दिया जाता है, तब वे उसका सुचारु-पूर्वक संचालन करने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं। फलस्वरूप वयस्क शिक्षा का प्रवाह निर्बाध गति से नहीं हो पाता है।

वयस्क विद्यालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों के अभाव की समस्या तो है ही, पर इससे भी गुरुतर समस्या यह है कि अध्यापिकाओं की वांछित संख्या उपलब्ध नहीं है। निरक्षर वयस्कों की अधिकांश संख्या भारतीय ग्रामों में निवास करती है। शिक्षकों को ग्रामों में जीवन की आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि, आवास, मनोरंजन व साधनों आदि की कठिनाइयों का सदैव सामना करना पड़ता है। अतः वे ग्रामों में स्थित प्रौढ़ विद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के लिए उद्यत नहीं होते हैं। इन विद्यालयों में अध्यापिकाओं का और भी अधिक अभाव है क्योंकि वे अपने निवास स्थानों से दूर अपरिचित स्त्रियों के मध्य में जिन्हें वे स्वयं शिक्षित होने के कारण असभ्य और गँवार समझती हैं अपने जीवन तथा समय को नष्ट नहीं करना चाहती हैं।

समाधान—अध्यापकों की पूर्ति (Supply of Teachers)

आवश्यक योग्यताओं-युक्त अध्यापकों की वांछित संख्या प्राप्त करने की समस्या वस्तुतः कठिन है पर निरन्तर तथा दृढ़ प्रयास द्वारा इस समस्या पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य यह है कि प्रौढ़ विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले अध्यापकों को प्रौढ़ शिक्षा की विधियों और प्रौढ़ों के मनोविज्ञान में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित किया जाय। इसके अतिरिक्त ग्रामों के प्रौढ़ विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले शिक्षकों को कृषि-पशुपालन, कुटीर उद्योगों, प्रारम्भिक चिकित्सा, स्वास्थ्य विज्ञान, कताई और बुनाई का समुचित ज्ञान करा दिया जाय ताकि ग्रामीण वयस्क उस ज्ञान से लाभान्वित किये जा सकें।

प्रौढ़ विद्यालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों की पूर्ति करने में समय लगेगा। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जब तक उपयुक्त शिक्षकों की आवश्यक संख्या उपलब्ध न हो जाए तब तक समाज शिक्षा के कार्य को स्थगित कर दिया जाए। ऐसा करना अन्याय और देश के लिये हितकर न होगा। अतः इस अन्तकालीन समय में स्वयं सेवकों को प्रौढ़ विद्यालयों में अध्यापन-कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाए। महात्मा गांधी के पथ प्रदर्शन में चम्पारन जिले के ग्रामीण बच्चों को शिक्षा देने का कार्य स्वयं सेवकों द्वारा सुचारु रूप से सम्पन्न

किया गया था।[1] उस आदर्श को प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिये भी अपनाया जा सकता है। यदि शिक्षा-संस्थाओं के अध्यापक तथा विद्यार्थी, कार्यालयों के कर्मचारी, एन० सी० सी० तथा ए० सी० सी० के सदस्य, बालचर तथा बालचारिकायें और अन्य निःस्वार्थ समाज-सेवी राष्ट्रपिता और उनके स्वयं सेवकों के उदाहरण से अनुप्राणित होकर 'हर एक पढ़ाय एक' (Each one Teach one) को अपना सिद्धान्त बना लें तो प्रौढ़ विद्यार्थियों के लिये अन्तरिम काल में शिक्षक भी उपलब्ध हो जायेंगे और अज्ञानान्धकार की जो धारा सम्पर्कों के मध्य से होकर प्रवाहित हो रही है उसका रूप भी सरलता पूर्वक परिवर्तित किया जा सकेगा।

५ समस्या—उपयुक्त साहित्य (Suitable Literature)

समाज शिक्षा का उत्तरदायित्व केवल वयस्कों को साक्षर बनाकर ही समाप्त नहीं हो जाता है। प्रौढ़ों को केवल लिखना पढ़ना तथा साधारण गणित की शिक्षा दे देना ही पर्याप्त नहीं है। यदि इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे लिखना पढ़ना करने का कार्य समाप्त कर दें तो वे कुछ समय के पश्चात् फिर निरक्षर हो जायेंगे। अतः यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक ज्ञान उपलब्ध करने के बाद भी नवसाक्षरों के लिये साहित्य हो। 'यदि हमारी समस्त जनता पढ़ना लिखना और जोड़-बाकी तथा गुणा भाग के सरल सवाल लगाना सीख भी ले तो उससे क्या फायदा होगा? इससे समाचार पत्रों में तथा सार्वजनिक मंच पर लफ्फाजी करने वालों को उन्हें बेवकूफ बनाने का उतना ही ज्यादा मसाला और मिल जायगा। इससे न तो उनका मानसिक स्तर ऊंचा होगा न उनकी रुचियों में सुधार होगा और न उनका जीवन ही समृद्ध बनेगा। उनकी सहानुभूति या समझ या सामाजिक चेतना में कोई गहराई नहीं पैदा होगी।'[2] इसलिए नवसाक्षरों के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो उनमें चीजों को परखने की क्षमता, आत्मविश्वास, शक्ति तथा सामाजिक भावना का विकास करने में सहायक हो 'जिससे कि वे रुचि के क्षेत्र में उत्कृष्ट तथा निकृष्ट के बीच, ज्ञान के क्षेत्र में सच और झूठ के बीच और आचरण के क्षेत्र में भले और बुरे के बीच अन्तर कर सकें।'[3] इस प्रकार के साहित्य का निर्माण एक समस्या है।

---

१ महात्मा गांधी: सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय) पृ० ३०१-३०८।

२ के० जी० सैयदैन: शिक्षा की पुनर्रचना, पृ० २११।

३ वही।

समाधान—उपयुक्त साहित्य का निर्माण (Production of Suitable Literature)

उपयुक्त साहित्य के अभाव के कारण समाज शिक्षा का कार्य साक्षरता के स्तर पर और अपने व्यापक अर्थ में अति मन्द गति से चल रहा है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि ऐसी पुस्तकों, चार्टों, समाचार-पत्रों, मासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाओं, चित्रों आदि की व्यवस्था की जाय, जो वयस्कों की रुचि के अनुकूल हों।[1] इस कार्य को विद्वान् लेखकों की सहायता से पूरा किया जा सकता है। इस हेतु उन्हें वयस्कों के लिए उपयुक्त पुस्तकों तथा पुस्तिकाओं की रचना करने के लिए प्रत्येक सम्भव विधि से प्रोत्साहित किया जाय। चित्र पूर्ण समाचार-पत्र एवं पत्रिकायें प्रकाशित की जायें। एक ऐसी मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाय जिसमें खेल, स्वास्थ्य, कृषि तथा विश्व के सम्बन्धित समाचार हों, क्योंकि नवसाक्षरों के लिये इस प्रकार की पत्रिका की अत्यधिक आवश्यकता है। हमारे देश की प्राय सभी राज्य-सरकारें इस दिशा में क्रियाशील हैं।[2]

प्रौढ़ों तथा नवसाक्षरों के लिए साहित्य निर्माण के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण गोष्ठी की आख्या[3] में कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं। उसमें उल्लेख किया गया है कि इस साहित्य का निर्माण करते समय पाँच बातों का ध्यान रखा जाय—(१) समाज शिक्षा के उद्देश्य (२) आयु भेद (३) लिंग भेद (४) क्षेत्र भेद और (५) माँग तथा आवश्यकता।

६ समस्या—शिक्षा के साधन (Agencies of Education)

समाज शिक्षा के साधनों से तात्पर्य है—वे समूह अथवा संस्थाएं जो समाज शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रखती हैं, उन्हें ज्ञान प्रदान करती

1 The work of Social Education is greatly handicapped both—at its literacy stage and in its wider sense—by the paucity of suitable reading materials, graded to appeal to the adults. There is urgent need for producing large number of booklets, folders, charts, journals, news papers, wall papers and other illustrated materials which will capture the adults interest. —K. G. Saiyidain, *Proceedings of the 19th Meeting of the Central Advisory Board of Education in India*, Appendix C (d)

2 *Teachers Handbook of Social Education*, p. 18

3 *Report of the Literary Workshop in the Production of Literature for Neo-Literates*, 1958

है तथा उनकी आवश्यकताओं को संतुष्ट करती है।[1] प्रौढ़ शिक्षा के इन साधनों के चयन में विशेष सतर्कता की आवश्यकता है क्योंकि यदि ये साधन वयस्कों को ज्ञान के प्रति आकृष्ट करने में असफल रहते हैं तो वे पूर्णतया निरर्थक हो जाते हैं। इन साधनों का विवेकपूर्ण चयन सरल कार्य नहीं है। यही कारण है कि प्रौढ़ मनोविज्ञान में दक्ष व्यक्ति साधनों की समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हैं।

समाधान—शिक्षा के उपयुक्त साधन (Proper Agencies of Education)

प्रौढ़ों को ज्ञान प्रदान करने के लिये विविध प्रकार के उपयुक्त साधनों के सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की नवसाक्षर उपयोगी साहित्य निर्माण गोष्ठी' ने जो सुझाव दिए हैं वे अग्रांकित हैं—(१) वर्णन प्रधान गद्य (२) काव्य लोकगीत एवं कविताएँ (३) नाटक प्रहसन एवं संवाद, (४) कथा-कहानी (५) पत्र तथा डायरी (६) विनोद वार्ता तथा (७) वाचन।

उपर्युक्त शिक्षा-साधनों की उपादेयता पर तर्क नहीं की जा सकती है परन्तु हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि इन साधनों का प्रमुख उद्देश्य—केवल वयस्कों का बौद्धिक विकास करना है। यदि समाज शिक्षा का कार्य यहीं तक सीमित रहेगा तो वयस्कों के जीवन का सर्वांगीण विकास करना सम्भव नहीं होगा और सर्वांगीण विकास करना ही समाज शिक्षा का प्रधान लक्ष्य है। अतः वयस्कों को शिक्षा देने के लिए अन्य साधनों को भी प्रयोग करना होगा। इनमें से जो पर्याप्त रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकते हैं वे अधोलिखित हैं—श्रव्य-दृश्य साधन (Audio-Visual Aids) यथा रेडियो सिनेमा ग्रामोफोन आदि, सांस्कृतिक मेले तथा नृत्य सांगीतिक तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ प्रदर्शनियाँ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग को विशेष रूप से अपनाया है।

७. समस्या—धनाभाव (Lack of Funds)

१९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में १० वर्ष से अधिक आयु के प्रौढ़ों की संख्या लगभग २१.६ करोड़ है। इनमें प्रौढ़ों को साक्षर बनाने में

---

1 "By agencies of social education is meant the bodies or institutions which deliver the goods which connect the consumers of social education and satisfy their needs."
—*Teachers Handbook of Social Education*, p. 64

2. *India* 1962, p 70

कितने धन की आवश्यकता होगी इसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। मान लीजिए कि एक अध्यापक ३० प्रौढ़ों को ६ मास में साक्षर बना सकता है। इस प्रकार वह ६० प्रौढ़ों को १ वर्ष में पढ़ना लिखना सिखा सकता है। इस हिसाब से २१.६ करोड़ वयस्कों को १ वर्ष में साक्षर बनाने के लिए ३५ लाख से अधिक अध्यापकों तथा प्रौढ़ विद्यालयों की आवश्यकता होगी। यदि एक प्रौढ़ विद्यालय का कम से कम व्यय २५० रुपया वार्षिक मान लिया जाय, तो ३५ लाख प्रौढ़ विद्यालयों के लिए ८७५ करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। १९६०-६१ में भारत की राष्ट्रीय आय १४,२०० करोड़ रुपये आँकी गई थी।[1] उपर्युक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए धन की उपलब्धि एक महान् समस्या है।

समाधान—धनाभाव : एक बहाना (Lack of Funds : A Pretence)

प्रायः यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि हमारे निर्धन देश के पास निरक्षर वयस्कों की २१.६ करोड़ की विशाल संख्या को साक्षर बनाने के लिए धन उपलब्ध नहीं हो सकता है। के० जी० सैयदैन इस तर्क को निरस्कृत करते हुए लिखते हैं, "वास्तव में केवल एक ही प्रकार की दरिद्रता होती है जिसका कोई इलाज नहीं होता है और वह होती है— उत्साह की दरिद्रता। यदि हम गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करें तो अन्य सभी प्रकार की दरिद्रतायें दूर की जा सकती हैं। यह एक बहुत पिटी-पिटी बात है फिर भी मैं उसे दोहराना चाहूँगा कि इसी निर्धन देश ने एक एक युद्ध के लिए जिसे छेड़ने में उसका कोई हाथ नहीं था करोड़ों रुपये खर्च कर दिये थे। इन परिस्थितियों को देखते हुए इस बात का क्या कारण हो सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी जो शान्ति और मानवीय गुणों का मूल आधार है इतना ही बड़ा प्रयास न किया जा सके? मेरा विश्वास है कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बड़ी-बड़ी समस्याओं को संकुचित वित्तीय दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिये। मेरी राय में समस्या पर विचार करने का सही तरीका यह नहीं है कि हम एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था का या एक अच्छी स्वास्थ्य नीति बनाने का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते बल्कि हमें इस तरह सोचना चाहिये कि इन कार्यों के बिना क्या हमारा काम चल सकता है? यदि इस बात को स्वीकार किया जाता है कि कोई भी देश बहुत बड़ी हद तक अशिक्षित और आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दरिद्र नहीं रह सकता है तो

---

1 *India* 1962, p 161

इसके लिये धन जुटाना सरकार, वित्त विभाग और राष्ट्रीय अध्यक्ष की योजना बनाने वालों की जिम्मेदारी है।"[1]

८. समस्या—उत्तरदायित्व (Responsibility)

समाज शिक्षा की एक प्रमुख समस्या यह है कि समाज-शिक्षा का उत्तरदायित्व किस पर होना चाहिये—केन्द्रीय सरकार पर, राज्य-सरकारों पर, शिक्षा विभागों पर, जिला परिषदों पर अथवा सार्वजनिक शिक्षा-संस्थाओं पर? केन्द्रीय सरकार ने इस उत्तरदायित्व को राज्य-सरकारों पर रखा है और इस प्रकार करने का समाज शिक्षा के भार से मुक्त रहने का प्रयास किया है। पर इससे समाज शिक्षा की महान् समस्या का समाधान होना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

समाधान—संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility)

समाज शिक्षा की महान् समस्या का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों अथवा किसी अन्य संस्था पर नहीं रखा जा सकता है। इसका उत्तरदायित्व तो राज्य, विभिन्न संस्थाओं तथा इस देश के निवासियों को संयुक्त रूप से अपने ऊपर लेना पड़ेगा—तभी इस समस्या का समाधान किया जा सकेगा। स्पष्ट रूप से यह एक ऐसा उत्तरदायित्व है जिसे न तो शिक्षा विभाग ही पूर्ण कर सकता है और न सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था ही। इसके लिये सरकारी एवं गैर सरकारी सभी संस्थाओं तथा सद्भावना और सामाजिक चेतना रखने वाले उन सभी व्यक्तियों के मध्य जो भारत का कल्याण चाहते हैं, अति घनिष्ठ एवं हार्दिक सहयोग आवश्यक है। अभी हमारे समक्ष इतना और इतने विभिन्न प्रकार का कार्य करने को पड़ा है कि जो भी इस सेवा-दल में सम्मिलित होना चाहे, उसके लिये स्थान है—छात्र, शिक्षक, धनी व्यक्ति, राजनैतिक नेता, मजदूर, श्रमिक, शिल्पी, व्यावसायिक कार्य करने वाले मनुष्य—सभी के लिए।[2]

---

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना" पृ० १८९-१९०।
2. "It is obviously a responsibility which neither the Education Department nor the Government machinery as a whole can take on by itself. It needs the closest and most cordial co-operation of all agencies, official and non-official and of all individuals of goodwill and social sense who are interested in the welfare of India. There is so much work to be done and it is of such varied kinds that there is room for everyone who cares to join the cavalcade of service—students, teachers, men of leisure, political leaders, writers, labourers, craftsmen, professional men—everybody."
—K. G. Saiyidain : cf. Ch., p. 247

उपरिलिखित विषय-वस्तु का पर्यवेक्षण करके हम निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि समाज शिक्षा की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समाज शिक्षा के प्रसार के प्रति ढीला ढाला या संकुचित दृष्टिकोण वाला रवैया न अपनाकर उत्साह और आशावादिता की लहर के सहारे अपने उद्देश्य को पूर्ण करने का प्रयास करें।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Trace briefly the history of Social Education Movement in India and indicate the more important phases through which it has passed

2. Discuss the need and importance of suitable literature for neo-literates in India

3 What should be the main aims of Social Education in a secular democratic society ? Discuss with special reference to India

4 Discuss the causes of the slow growth of Social Education in India and give suggestions to remove them

5 Define Social Education What are the main causes that have hindered its progress ?

6 Social Education is the *Panacea* for all social ills What curriculum would you prescribe for Social Education to fulfil this purpose ?

7 What do you understand by 'Adult Education ? Discuss its need in India

8 Discuss the need and importance of Social Education in the national life of India

9 *Give a brief account of the purposes and agencies of* Social Education

10 Why was the term Adult Education changed to Social Education ? What is the significance of this change ?

२८

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा
(Technical and Vocational Education)

विषय-प्रवेश

शिक्षा के अन्तर्गत प्रौद्योगिकीय विषयों का समावेश आधुनिक युग की देन है। प्राचीन तथा मध्यकालीन युगों में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का सामान्य (General) एवं सांस्कारिक (Liberal) शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं था। भौतिक विज्ञानों तथा प्राविधिक ज्ञान में [illegible] वर्षों में आश्चर्यजनक आविष्कार होने के परिणामस्वरूप संसार का रूप परिवर्तित हो गया है।[1] व्यावहारिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी—आधुनिक सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ हैं और इनकी प्रगति ने मानव जीवन की दशाओं को परिवर्तित कर दिया है और

---

1 "The strides which discoveries in physical sciences and technology have taken within the last two hundred years have changed the face of the world."—Quoted from Dr Rajendra Prasad's Speech at the Joint Meeting of the Inter University Board of India and the Executive Council of the Association of the Universities of the British Common-Wealth on December 21, 1951 at the Delhi University.

ऐसा प्रतीत होता है कि ये मानव जीवन के स्वामी और आशा हो गये हैं। अत इस परिवर्तन को देखते हुए स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि शिक्षा को भी परिवर्तित कर देना चाहिये [1] और उसमें विज्ञान तथा प्राविधिक विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। इस विचार का सभी देशों में अनुमोदन किया गया है। यही कारण है कि आज सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में प्राविधिक विषयों को विद्यालयों के पाठ्य क्रमों में स्थान दिया जा रहा है।

भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता
(Need of Technical & Vocational Education in India)

हम ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं कि आधुनिक युग में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि शिक्षा के पाठ्य क्रमों में प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों का समावेश किया जाय। इसका प्रधान कारण यह है कि प्राविधिक शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है। यह आवश्यकता क्या है? इसी पर हम यहाँ विचार करेंगे।

हुमायूँ कबीर (Humayun Kabir) का मत है कि किसी देश अथवा राष्ट्र की सम्पन्नता का आधार—विज्ञान तथा प्राविधिक शिक्षा है। यदि देश में यह शिक्षा सफलतापूर्वक प्रदान की जा रही है और यदि इस शिक्षा की प्रगति हो रही है तो राष्ट्र की उन्नति अवश्य होगी। संयुक्त राज्य अमरिका, सोवियत रूस, जर्मनी और जापान के उदाहरण हमारे समक्ष हैं। लगभग १०० वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका एक पिछड़ा हुआ देश था परन्तु प्राविधिक शिक्षा की उन्नति के कारण आज वह इतना धनी हो गया है कि संसार के अनेक देश उसके ऋणी हैं। १९१८ में जारशाही का अन्त करके रूस में गणतन्त्र की स्थापना की गई। उस समय रूस की गणना संसार के प्रगतिशील देशों में नहीं थी परन्तु आज वह संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली देश माना जाता है। इसका कारण केवल यही है कि वहाँ प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनी तथा जापान को अति

---

1 "Applied Science and Technology are the most characteristic features of modern civilization and their development has transformed the conditions of human life and appears to have become its mistress and hope. An obvious conclusion is that in keeping with this transformation education should be transformed."—Sir Richard Livingstone, *Some Tasks for Education* p. 6.

महान् हानि पहुँची परन्तु प्राविधिक शिक्षा के कारण आज वे पुनः अपनी पूर्व स्थिति को बहुत कुछ प्राप्त कर चुके हैं।[1]

आधुनिक युग में एक राष्ट्र की सम्पन्नता के चार आधार माने गये हैं— पूँजी, कच्चा माल, खनिज पदार्थ तथा प्राविधिक शिक्षा। हम यह स्वीकार करते हैं कि भारत में पूँजी का अभाव है क्योंकि हमारे विदेशी शासकों ने अपनी अर्थनीति की छाया में हमारे देश का पूर्ण रूप से शोषण किया और यहाँ के प्राकृतिक साधनों को अपने लम्बे शासन काल में निरन्तर निचोड़ा। परिणामतः भारत में दुर्भिक्षों का तांता-सा लग गया और भारतीय जनता निर्धनता के गर्त में डूब गई। परन्तु भारत में कच्चे माल और खनिज पदार्थों का अभाव नहीं है। हमारे देश की पृथ्वी के गर्भ में अब भी लोहा, मैंगनीज, तेल, पोटाश, ताँबा, बॉक्साइट, अभ्रक, इल्मेनाइट आदि के भण्डार छिपे हुए हैं। इनके अतिरिक्त विद्युत् के अमूल्य साधन भी हैं। परन्तु इनका प्रयोग तभी किया जा सकता है जब देश में प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों तथा विज्ञानों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति हों। दुर्भाग्यवश हमारा देश अभी इस शिक्षा में पर्याप्त प्रगति नहीं कर पाया है, यद्यपि हमारी राष्ट्रीय सरकार इस कार्य में संलग्न है। प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में प्रशंसनीय उन्नति हुई है और यदि इसी गति से प्रगति होती रही तो आगामी कुछ ही वर्षों में देश का आर्थिक विकास हो जायगा और निर्धनता का अन्त हो जायगा।

यद्यपि स्वतन्त्र भारत के लिये प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा नवीन प्रतीत होती है परन्तु यदि हम प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो हमको ज्ञात होगा कि प्राविधिक क्षेत्र में भारत उन्नति के अति उच्च शिखर पर था। इस क्षेत्र में अवनति के क्या कारण थे और किन कारणों वश आज फिर हमारा देश इस शिक्षा में अग्रसर हो रहा है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिये हमें प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालना पड़ेगा।

प्राचीन भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

प्राचीन काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का भारत में समुचित विस्तार था, परन्तु यह शिक्षा विद्यालयों में नहीं प्रदान की जाती थी। विभिन्न

---

1 "Need For Scientific and Technical Education"—Article by Humayun Kabir in The Leader, Republic Day Supplement, 1959.

जातियों के व्यक्तियों के लिये विभिन्न कार्य एवं व्यवसाय निश्चित थे। इनमें से कुछ व्यक्ति विविध प्रकार के शिल्पों का ज्ञान रखते थे और वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इन्हीं के द्वारा उन शिल्पों में अपने पुत्रों तथा शिष्यों को शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार वैदिक युग में सूती और ऊनी वस्त्र, रंगसाजी, कसीदाकारी आदि का कार्य किया जाता था। इस युग में सुनार, धातुकार, चर्मकार और कुम्भकार का उल्लेख मिलता है। ये लोग विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र, आभूषण, धनुष की प्रत्यंचाएं आदि वस्तुएं बनाते थे।[1]

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का उपरोक्त क्रम वैदिक काल से राजपूत काल तक यथावत् चलता रहा और भारत ने प्राविधिक क्षेत्र में अति उन्नति की। राजपूत युग तक विभिन्न शिल्पों के साहित्य में आशातीत वृद्धि हुई।

मुस्लिम काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

भारत में मुस्लिम काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का वही रूप था जो प्राचीन काल में था। इस क्षेत्र में मुस्लिम शासकों विशेष रूप से मुगल सम्राटों के संरक्षण के कारण भारतीयों ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में विशेष प्रगति की। मुगल शासक भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे। अतः उन्होंने ललित-कलाओं और सुख ऐश्वर्य की अनेक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया। सजावट के साधन कमख्वाब, मलमल, दरियाँ तथा कालीन ऐसी विलास की सुन्दर सामग्री के उत्पादन को उच्च संरक्षण प्राप्त हुआ। इस युग का सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय—सूती वस्त्रों का बनाना था। इस व्यवसाय में सम्पूर्ण देश मग्न सा था। उस समय केवल इसी देश से वस्त्र उत्तमाशा अन्तरीप व पूर्व मध्य-यूरोप, चीन, मलाया, जावा आदि देशों को भेजा जाता था। सूती वस्त्र के अतिरिक्त रेशमी कपड़े, जलपोश और गालीचे भी बनाया जाता था।[2]

मुगल-काल में इन प्रमुख व्यवसायों के अतिरिक्त अनेक हस्तकला-कौशल भी थीं। विविध किस्म की दरियाँ, टट्टू, शमादान, मनी-काम, ममरान, जरदोजी, गगन-गामदी की डाली, सन्दूकचियाँ जो हाथी-दाँत तथा लकड़ी की बन होती थी तथा ऐसी अन्य वस्तुयें प्रचुर मात्रा में बनाई जाती थीं।

---

१ ए० एन० पुरी — भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास पृ० ९१-९२।

२ वही पृ० १७६—१८०।

अंग्रेजी राज्य में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

भारतीय उद्योगों का विनाश

भारत में परम्परागत रूप में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा देने की जो प्रणाली चल रही थी और जिसके फलस्वरूप यहाँ के उद्योग धन्धे अपने उत्कर्ष पर थे उसका गला स्वार्थी अंग्रेजों ने घोंट दिया। परिणामतः यहाँ के समस्त उद्योग धन्धे चौपट हो गये। अंग्रेजों ने व्यापारियों के रूप में १६११ में मछलीपट्टम में अपना प्रथम कारखाना स्थापित किया। प्लासी के युद्ध की विजय के उपरान्त १७५७ में उनको राजनैतिक शक्ति प्राप्त हुई। उस समय से लेकर १९४७ तक उन्होंने भारत पर प्रत्यक्ष शासन किया। इस काल के पूर्व और अन्त में इस देश और इसके निवासियों की क्या दशा थी, इसका अनुमान सहज ही अधोलिखित दो उद्धरणों से लगाया जा सकता है। सन् १७०० के भारत का वर्णन करते हुए फ्रांसीसी यात्री बर्नियर (Bernier) लिखता है: "यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होती है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता है।" २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की दशा का वर्णन विलियम डिग्बी (William Digby) ने इन शब्दों में किया है: "बीसवीं सदी के शुरू में करीब १० करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता है। इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती है।" इस अधःपतन का कारण था— अंग्रेजों का अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत की प्राचीन ग्राम-व्यवस्था, शिक्षा-प्रणाली, हजारों और लाखों पाठशालाओं और हजारों साल के उन्नत उद्योग-धन्धों का नाश कर डालना।[1]

इन उद्योग धन्धों में सबसे बड़ा, [illegible] व्यवसाय था और उनके उपरान्त अन्य प्राचीन उद्योगों को यथा-अवसर [illegible] गया। इस प्रकार भारत को कारखानों के [illegible] अथवा [illegible] बना लिया गया।[2] परिणाम यह हुआ कि भारत के [illegible] और उनमें से अधिकांश खेती के काम में लग गए। इसका वर्णन करते हुए भारत के

1. सुन्दरलाल: भारत में अंग्रेजी राज (प्रथम खण्ड) पृ० [illegible]।
2. Jawaharlal Nehru: The Discovery of India (194[illegible] Edition) p. 351

अग्रज गवर्नर जनरल लार्ड बेंटिक (Lord Bentinck) ने १८३४ में अपनी रिपोर्ट में लिखा — "व्यवसाय के इतिहास में ऐसे दुर्भाग्य का अन्य उदाहरण कठिनाई से मिलता है। जुलाहों की हड्डियों ने भारत के मैदानों को सफेद कर दिया है।"[1] ऐसी दशा में भारत में जो प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा पिता द्वारा पुत्र को अनेक पीढ़ियों से प्रदान की जा रही थी उसका सदैव के लिये अन्त हो जाना स्वाभाविक था। यह दशा अति दीर्घकाल तक चलती रही। उसके उपरान्त स्थिति में धीरे धीरे कुछ परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। इसका अध्ययन हम सुविधा के लिये निम्नलिखित कालों में करेंगे —

१८८० से १८८२ तक

यद्यपि इस काल में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा था तथापि उस देश के शासकों ने अपने दास भारत में इस शिक्षा का प्रचार आवश्यक नहीं समझा। इसकी ओर सरकार का ध्यान सर्वप्रथम १८७७-७८ के दुर्भिक्ष-आयोग (Famine Commission) द्वारा आकर्षित किया गया। फिर भी सरकार ने इस शिक्षा की अवहेलना ही की। हाँ मिशनरियों ने कुछ कार्य अवश्य किया। उन्होंने थोड़े से औद्योगिक स्कूल स्थापित किये जिनमें भारतीय ईसाई बालकों को जीविकोपार्जन के लिये बढ़ई और लुहार के कार्यों की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु इन स्कूलों को औद्योगिक स्कूल न कहकर दस्तकारी के स्कूल (Craft School) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

१८८२ से १९०२ तक

भारत सरकार प्रारम्भ से ही प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की विरोधी थी। अंग्रेज शासकों का विचार था कि यदि भारत में इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई तो देश का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हो जायगा और इससे इंगलैण्ड के उद्योगों को आघात पहुँचेगा। इसके विपरीत भारत के राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास था कि देश की निर्धनता को दूर करने के लिये प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा अति आवश्यक है। कांग्रेस ने १८८७ में होने वाले अपने तीसरे अधिवेशन में सरकार से इस शिक्षा की माँग की और अन्य अधिवेशनों में इस माँग को दोहराती रही।[2] परन्तु निज स्वार्थ लिप्त भारत की अंग्रेजी

---

1 The misery hardly finds a parallel in the history of commerce The bones of the cotton weavers are bleaching the plains of India.

2. Madan Mohan Malviya in *Report of the Indian Industrial Commission 1916-18* P 2 0

सरकार इस माँग को निरन्तर टुकराती रही। १६०२ में सम्पूर्ण भारत में केवल ८० प्राविधिक तथा औद्योगिक स्कूल थे। इनमें से कुछ ही औद्योगिक विद्यालय कहलाने के अधिकारी थे।

१६०२ से १६२१ तक

इस काल में भी भारत सरकार ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया। हाँ, इतना अवश्य किया कि 'भारतीय शिक्षा आयोग (Indian Education Commission) की सिफारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तों में हाई स्कूल के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को स्थान दे दिया गया।

१६२१ से १६३७ तक

हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सरकार से निरन्तर प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की माँग कर रही थी, परन्तु सरकार ने इस माँग का स्वागत नहीं किया था। हाँ, इतना अवश्य किया था कि प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ दी जाने लगी थीं। १६०४ से १६१७ तक ११° छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। सरकार के इस कार्य से जनता को सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि प्राविधिक शिक्षा के अभिलाषी सभी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ नहीं प्राप्त होती थीं। इसके अतिरिक्त वे बहुत कम थीं और उनमें व्यय भी अधिक होता था। १६१७ में मारिसन समिति (Morrison Committee) ने सुझाव दिया कि ये छात्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उन विद्यार्थियों को दी जायें—जो वस्त्र (Textile) खनिजकर्म (Mining) कुम्भकार (Pottery) चर्म संस्कार (Tanning) माचिस (Mat hes) कांच धोबी पेन्सिल और कागज के उद्योगों में कार्य करना चाहते हों[1], परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

१६२१ में प्रान्तों में स्व-शासन की स्थापना से उत्तरदायी जनता ने व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा की माँग को प्रबल किया। यह कहा जाने लगा कि इस शिक्षा की व्यवस्था भारत में ही की जाय। सरकार ने इसका निर्णय करने का कार्य लार्ड लिटन (Lytton) की अध्यक्षता में एक 'लिटन समिति'[2] को सौंप दिया। इसने विदेशों में अध्ययन करने वाले भारतीय छात्रों की कठिनाइयों का अध्ययन किया और उनको दूर करने के लिए अनेकों सुझाव दिये। समिति

1. Bhagwan Dayal : The Development of Modern Indian Education, p. 43.
2. Committee on Indian Students in England 1921-22.

का स्थान महत्त्वपूर्ण सुझाव यह था कि भारत में औद्योगिक प्राविधिक तथा औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण किया जाय और उनमें उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। भारतीयों को अपने देश में ही यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के विभिन्न अंगों का शीघ्र-अति शीघ्र विकास किया जाय।[1]

इस सिफारिश के फलस्वरूप भारत में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया वे इस प्रकार हैं —(१) हारकोर्ट बटलर टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर ( ) कॉलेज आफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी जादवपुर और (३) गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ टेक्नोलॉजी मद्रास। १९३७ में सम्पूर्ण भारत में ५३५ औद्योगिक प्राविधिक तथा औद्योगिक विद्यालय थे।

१९३७ से १९४७ तक

अब तक प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की अवहेलना की गई थी, परन्तु इस अवधि में इसका अत्यधिक प्रसार हुआ। इसके तीन प्रमुख कारण थे —(१) विश्वयुद्ध के कारण ऐसे व्यक्तियों की माँग में वृद्धि होगई थी जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। (२) युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने के लिये भारत में नवीन उद्योगों की स्थापना हो गई थी और उनमें प्राविधिक शिक्षा प्राप्त मनुष्यों की आवश्यकता थी। (३) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा बनाई गई युद्धोत्तर विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये प्राविधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की माँग बढ़ी। अतः प्राविधिक शिक्षा का विस्तार होना स्वाभाविक था। परन्तु उसको सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि १९४१-४२ में केवल २१४ स्नातक प्राविधिक शिक्षा और २० स्नातक रासायनिक औद्योगिकी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[2]

स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक-शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं परतन्त्र भारत में शिक्षा का प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा था और व विदेशी सरकार से इस शिक्षा की निरन्तर माँग कर रहे थे। इसके फलस्वरूप शिक्षा पर प्राविधिक प्रभाव पड़ा था परन्तु उस और अन्य ही

1 The Report of the Committee on Indian Students in England Para 64

2. Oxford Pamphlets on Indian Affairs No 15 p 54

कहा जा सकता है। स्वतन्त्र भारत में इस प्रभाव में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका सब प्रधान कारण है—प्राविधिक शिक्षा के प्रति [illegible] तथा विद्यार्थियों का परिवर्तित दृष्टिकोण। यह दृष्टिकोण क्यों परिवर्तित हो रहा है इसको और हम निम्नांकित पंक्तियों में स्पष्ट कर रहे हैं।

१— विकास एक ऐसी प्रक्रिया है—जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समाज के साधनों का अधिकाधिक सफलतापूर्वक उपयोग करना होता है। ये साधन कुछ प्रकृति के द्वारा दिये हुए होते हैं परन्तु इनको नवीन यान्त्रिक उपायों और ज्ञान के प्रयोग द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है और कर लिया जाता है। इस दृष्टि से यान्त्रिक उपायों और ज्ञान का मुख्य पूँजी का निर्माण करना भी अधिक है। किसी भी अल्प उन्नतिशील अर्थ-व्यवस्था में प्रकृति द्वारा दिए हुए साधनों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और उनको उत्पन्न करने के लिये नवीन यान्त्रिक विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। भारत में इन साधनों की खोज और इनका उपयोग प्रारम्भिक अवस्था में है। आवश्यक यान्त्रिक विधियों का ज्ञान भी अधूरा है। इस कारण ज्ञात साधनों का उपयोग करने के लिये भी उन पर यान्त्रिक विधियों का प्रयोग करना सरल नहीं है। रहन सहन के स्तर को निरन्तर और अधिक ऊँचा उठाने के लिये न केवल ज्ञात साधनों के अधिक सरल उपयोगी का अपितु ज्ञात यान्त्रिक विधियों के भी अधिक उत्तम प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसके लिए नए-नए साधनों की निरन्तर खोज करते रहना और नवीन उत्पादन विधियों का विकास करते रहना आवश्यक होता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि देश का आर्थिक विकास अधिक सीमा तक करने के लिये किस तरह वस्तु का उत्पादन और श्रम अधिक है वह उत्पादन की प्रक्रियाओं में आधुनिक प्राविधिक विधियों का प्रयोग करने के लिए समाज की इच्छा और तत्परता है। इस क्षेत्र में नवीन प्रगति प्राप्त हो रही है और उसका प्रयोग न केवल उत्पादन परिवहन एवं अन्य कार्यों के सम्पन्न के लिए अपितु आर्थिक तथा सामाजिक संगठन में स्पष्ट परिवर्तन करने में भी महत्वपूर्ण है। विकास में प्राप्त इस ज्ञान का कारण प्राविधिक शिक्षा में तकनीकी उन्नति में कर सकना होता है और इस आन्तरिक उन्नति का कारण—विविध प्रकार के आधुनिक और नवीन यान्त्रिक प्रविधियाँ होती हैं। यदि इन प्रविधियों [illegible] परिवर्तन हो [illegible] विधियों में उन्नति करने मात्र से विकास की गति तेज हो सकती है। जिन देशों में औद्योगिक जीवन का प्रारम्भ विकास से होता है वे कुछ समय में ही [illegible] है। [illegible] के

का सबसे महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि भारत में प्रौद्योगिक, प्राविधिक तथा औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण किया जाय और उनमें उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। भारतीयों को अपने देश में ही यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के विभिन्न अंगों का शीघ्र अति शीघ्र विकास किया जाय।[1]

इस सिफारिश के फलस्वरूप भारत में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया वे इस प्रकार हैं —(१) हारकोर्ट बटलर टेक्नॉलॉजिकल इन्स्टीट्यूट कानपुर ( ) कॉलेज आफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नॉलॉजी जादवपुर, और (३) गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ टेक्नॉलॉजी मद्रास। १९३७ में सम्पूर्ण भारत में ५३५ प्रौद्योगिक प्राविधिक तथा औद्योगिक विद्यालय थे।

१९३७ से १९४७ तक

अब तक प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की अवहेलना की गई थी, परन्तु इस अवधि में इसका अत्यधिक प्रसार हुआ। इसके तीन प्रमुख कारण थे —(१) विश्वयुद्ध के कारण ऐसे व्यक्तियों की माँग में वृद्धि होगई थी जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। (२) युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने के लिए भारत में नवीन उद्योगों की स्थापना हो गई थी और उनमें प्राविधिक शिक्षा प्राप्त मनुष्यों की आवश्यकता थी। (३) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा बनाई गई युद्धोत्तर विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए प्राविधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की माँग बढ़ी। अतः प्राविधिक शिक्षा का विस्तार होना स्वाभाविक था। परन्तु उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि १९४१ ४२ में केवल (४ स्नातक प्राविधिक शिक्षा और २० स्नातक रासायनिक प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[2]

स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक-शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं परतन्त्र भारत में सरकार का प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा था और व्यक्ति भी सरकार से इस शिक्षा की निरन्तर माँग कर रहे थे। इसके फलस्वरूप शिक्षा पर प्राविधिक प्रभाव पड़ा था परन्तु उस प्रति आज हो

1. The Report of the Committee on Indian Students in England Para 84
2. Oxford Pamphlets on Indian Affairs No 15 p 54

कहा जा सकता है। स्वतन्त्र भारत में इस अभाव में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका सब प्रधान कारण है—प्राविधिक शिक्षा के प्रति देश के नेताओं तथा शिक्षाविदों का परिवर्तित दृष्टिकोण। यह दृष्टिकोण क्यों परिवर्तित हो रहा है इसकी ओर हम निम्नांकित पंक्तियों में संकेत कर रहे हैं।

विकास एक ऐसी प्रक्रिया है—जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समाज के साधनों का अधिकाधिक सफलतापूर्वक उपयोग करना होता है। ये साधन कुछ प्रकृति के द्वारा दिये हुए होते हैं परन्तु इनका नवीन वैज्ञानिक उपायों और ज्ञान के प्रयोग द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है और कर लिया जाता है। इस दृष्टि से वैज्ञानिक उपायों और ज्ञान का मुख्य पूंजी निर्माण का महत्व भी अधिक है। किसी भी अल्प उन्नतिशील अर्थ-व्यवस्था में प्रकृति द्वारा दिए हुए साधनों का पूरा ज्ञान नहीं होता है और उनको उपयोग में लाने के लिये नवीन वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। भारत में इन साधनों की खोज और इनका उपयोग प्रारम्भिक अवस्था में है। आवश्यक वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान भी अपूर्ण है। इस कारण ज्ञात साधनों का उपयोग करने के लिये भी उन पर वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना सरल नहीं है। रहन-सहन के स्तर को निरन्तर और अधिक ऊँचा उठाने के लिये न केवल ज्ञात साधनों के अधिक सफल उपयोग की अपितु ज्ञात वैज्ञानिक विधियों के भी अधिक उत्तम प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसके लिए नए-नए साधनों की निरन्तर खोज करते रहना और नवीन उत्पादन विधियों का विकास करते रहना आवश्यक होता है।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि देश का आर्थिक विकास अधिक तीव्रता से करने के लिए किस एक वस्तु का महत्व और स्थान अधिक है वह उत्पादन की प्रक्रियाओं में आधुनिक प्राविधिक विधियों का प्रयोग करने के लिए समाज की इच्छा और तत्परता है। इस क्षेत्र में सब से प्रगति अति तीव्र हो रही है और उसका प्रयोग न केवल उत्पादन, परिवहन एवं अन्य कार्यों के सम्पादन के लिए अपितु आर्थिक तथा सामाजिक संगठन से सम्बद्ध [illegible] करने में भी महत्वपूर्ण है। विकास [illegible] ज्ञान का [illegible] विधियों में [illegible] परिवर्तन होता है और इस [illegible] का कारण—[illegible] सामाजिक और [illegible] है। [illegible] परिवर्तन [illegible] विकास [illegible] है। [illegible] विकास [illegible] है [illegible] क्योंकि [illegible]

उन प्राविधिक विधियों का प्रयोग कर सकते हैं जिनकी अन्य उन्नत देशों में परीक्षा हो चुकी है। परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में अन्यत्र जो प्रगति हो चुकी है उसके साथ-साथ चलने का भी ध्यान रखा जाय। सारांश यह है कि नए-नए साधनों की खोज, नवीन वैज्ञानिक प्राविधिक तथा प्रौद्योगिक विधियों का प्रयोग और उपलब्ध जनशक्ति का विकास-कार्यों के लिए आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार उपयोग, विकास की नींव का काम देता है।

स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रति जिस परिवर्तित दृष्टिकोण का वर्णन हमने ऊपर किया है, उसके परिणामस्वरूप शिक्षा पर प्राविधिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। हम इसका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं

१९४७ से १९६५ तक

स्वातन्त्र्योत्तर काल में देश के औद्योगीकरण के साथ-साथ व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा की भी अभिनन्दनीय प्रगति हुई है। १९४७ में केवल ६,६०० छात्रों को व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा देने का प्रबन्ध था। १९५३ में १२,७०० छात्रों के लिये इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। १९५८-५९ में इञ्जीनियरिंग तथा टेक्नॉलोजी के डिग्री पाठ्य-क्रम वाले ८३ कॉलेज तथा डिप्लोमा पाठ्य-क्रम के १४६ पॉलीटेक्नीक थे जिनमें प्रतिवर्ष क्रमशः ११,१०० एवं १६,४०० छात्रों के प्रवेश की सुविधा थी। नवीन स्वीकृत परियोजनाओं के परिणामस्वरूप द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक डिग्री पाठ्य-क्रम में १३,००० से अधिक एवं डिप्लोमा पाठ्य-क्रम में २५,००० स्थानों का प्रबन्ध कर दिया गया। १९५८-५९ में विभिन्न व्यावसायिक, प्राविधिक एवं इञ्जीनियरिंग संस्थाओं के विकास के लिए ११६.२० लाख रुपये दिये जाने का अनुमान है एवं आगामी वर्ष में १४५.३१ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

द्वितीय एवं तृतीय योजना की परियोजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कार्यकर्ताओं के अभाव को दूर करने के विचार से १६ कॉलेजों एवं ४१ पॉलीटेक्नीकों को विकास के लिए चुना गया है जिससे कि २,२५८ डिग्री स्तर के तथा ५,४०० डिप्लोमा स्तर के अतिरिक्त स्थान निकल आए। १९५८-५९ में अतिरिक्त भर्ती किये गये छात्रों की संख्या डिग्री पाठ्य-क्रम में २,१७८ एवं डिप्लोमा पाठ्य-क्रम में १,६३८ की वृद्धि। १९५७-५८ में अतिरिक्त

भर्ती किये गए छात्रों की संख्या इन पाठ्य-क्रमों में क्रमशः २,०६६ एवं १,६६६ थी। केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तावित ८ स्नातकोत्तर इंजीनियरिंग कालिजों एवं २७ पॉलीटेकनीकों एवं स्कूलों में एक इंजीनियरिंग कालिज की स्थापना की योजना में कुल ३,०३५ डिग्री पाठ्य-क्रम एवं ४०२४ डिप्लोमा पाठ्य-क्रम के स्थानों की व्यवस्था की गई है। विभिन्न राज्यों की योजनाओं में सम्मिलित ८ इंजीनियरिंग कालिजों में से केवल अगस्त में आरम्भ कालिज के अतिरिक्त शेष सभी की स्थापना हो चुकी है। स्थिति के कालिज का शिलान्यास २७ जनवरी १९४६ को हिज रॉयल हाइनेस ड्यूक ऑफ एडिनबरा द्वारा किया गया था।

१९४६ के विशेष वर्ष से राज्यों की प्राविधिक प्रणाली में परिवर्तन कर लिया गया है। अब केन्द्रीय सरकार पूर्व स्नातक पाठ्य-क्रम की परियोजनाओं के व्यय का ५० प्रतिशत तथा स्नातकोत्तर एवं विशेष्य या शोधसम्बन्धी पाठ्य-क्रमों के व्यय का १०० प्रतिशत भार देगी।

सरकार ने निजी संगठनों द्वारा सहयोजित व्यवस्था पर नवा प्राविधिक संस्थाओं के प्रति उदार नीति अपनायी है। इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप निजी क्षेत्रों में जो रुचि प्रदर्शित की है उससे इन का व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा के विकास में प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हुआ है।

व्यावसायिक एवं प्राविधिक संस्थाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये कई परियोजनायें प्रारम्भ की गई हैं। 'योजना आयोग' ने सिद्धान्त रूप में इन संस्थाओं की वेतन श्रेणी तथा काम की दशाओं के सुधार की बात को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया है कि केन्द्र इसका सार्वजनिक समस्त अतिरिक्त व्यय को केवल पाँच वर्ष तक उठावे और उसके उपरान्त तत्कालीन वित्तीय आधार स्थिति का पुनरावलोकन करे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

प्रथम पंचवर्षीय योजना में व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस निमित्त खड़गपुर में इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स बंगलोर का विकास किया गया। इंजीनियरिंग के १४ कालिज स्थापित किये गये। विशेष व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की गई एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिये बहुधन्धी स्कूलों की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त ग्रामीण स्कूलों तथा अनेक व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना जूनियर स्कूलों का जूनियर टेक्निकल हाई स्कूलों में परिवर्तन, जूनियर बहुउद्देशीय स्कूलों के निर्माण, स्थानीय माध्यमिक विद्यालयों का टेक्निकल हाई स्कूलों में परिवर्तन, प्रौद्योगिक संस्थाओं का विस्तार

पाठ्य-क्रमों में कृषि शिक्षा को उपयुक्त स्थान, वाणिज्य, प्रौद्योगिक एवं प्राविधिक स्कूलों को कॉलेजों में रूपान्तर और विदेशों में उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की योजनाओं का निर्माण किया गया। कारीगरों एवं शिल्पकारों को प्रशिक्षण देने की अधिक सुविधाएँ तथा ग्रामों में भी प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

प्रथम पंचवर्षीय योजना में किये गये उपायों के अतिरिक्त द्वितीय योजना में व्यावसायिक तथा प्राविधिक कर्मचारियों की बढ़ती हुई माँग के कारण प्रौद्योगिक एवं प्राविधिक शिक्षा के विस्तार को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसी उद्देश्य से द्वितीय योजना में व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिये ४८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है जबकि प्रथम योजना में यह धन राशि कुल २३ करोड़ थी। द्वितीय योजना के लिये निर्धारित धन का कुछ भाग उन कार्य-क्रमों पर व्यय किया जायगा जो प्रथम योजना में प्रारम्भ किये गये थे।

इनके अन्तर्गत इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी खड़गपुर को स्नातक तथा स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए पूर्णतया विकसित कर दिया जायगा। इस इन्स्टीट्यूट में योजना के अनुसार १२०० छात्रों के लिये प्राक्-स्नातक, और ६०० छात्रों के लिए स्नातकोत्तर एवं शोध की व्यवस्था की जायगी। यहाँ विषयों की दृष्टि से बहुत व्यापक विषयों के प्रशिक्षण की सुविधाएँ हैं जैसे— जलपोत निर्माण शिल्प और सामुद्रिक इंजीनियरी, ईंधन और ज्वलन इंजीनियरी, उत्खनन टेक्नॉलॉजी, पदार्थों का यान्त्रिक प्रणयन, कृषि इंजीनियरी, भूभौतिकी, नगर व ग्रामीण निर्माण योजना और निर्माण शिल्प।[1]

बंगलौर में इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स नामक संस्था का विकास वायु एवं जल सेना इंजीनियरी, शक्ति इंजीनियरी, आन्तरिक दहन इंजीनियरी, धातु विज्ञान और विद्युत इंजीनियरिंग विषयक शोध प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिए किया गया है।

प्रथम योजना-काल में स्थापित किये गये व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा के अन्य केन्द्रों में स्नातकोत्तर-समान पाठ्य क्रमों एवं इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में अनुसंधान की व्यवस्था की जायगी। वर्तमान संस्थाओं को डिग्री और डिप्लोमा पाठ्य क्रमों के लिए विकसित करने का जो कार्य-क्रम प्रथम योजना में प्रारम्भ किया गया था उसे द्वितीय योजना में पूर्ण किया जायगा। इस पर ८७

---

१ द्वितीय पंचवर्षीय योजना पृष्ठ ५१९

के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी प्रदेशों में उच्चतर व्यावसायिक तथा प्राविधिक संस्थाओं की स्थापना में व्यय किया जायगा। इनमें से दो संस्थाओं का निर्माण बम्बई और कानपुर में किया जायगा। पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर प्रत्येक संस्था में १२०० प्राक्-स्नातक और ६०० स्नातकोत्तर छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

द्वितीय योजना-काल में शिल्पी पॉलीटेक्नीक संस्थाओं में इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जायगा। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्रदान करने के लिये १९ संस्थायें डिग्री स्तर की और २१ संस्थायें डिप्लोमा स्तर की स्थापित की जायेंगी। कारखानों में प्रशिक्षण की योजना को उद्योग-संस्थाओं के सहयोग से क्रियान्वित किया जायगा। छात्रवृत्तियों की संख्या को ६३३ से बढ़ाकर ८०० कर दिया जायगा। प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा-संस्थाओं में योग्य छात्रों के लिये कुछ निःशुल्क स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे। १३००० टेक्निकल छात्रों और ३३०० जूनियर टेक्निकल स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये अतिरिक्त छात्रावासों का निर्माण किया जायगा। मुद्रण-शिल्प विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिए एक संस्था का निर्माण किया जायगा। धनबाद के इण्डियन स्कूल ऑफ माइन्स एण्ड ऐप्लाइड ज्यालोजी का विस्तार किया जायगा जिससे खान की इंजीनियरिंग एवम् उससे सम्बद्ध विषयों में प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध हो जायेंगी। यान मोटर तथा इस्पात और रेलवे मन्त्रालय भी टेक्निकल स्कूलों की स्थापना का कार्यक्रम बना रहे हैं। इन समस्त प्रयासों के फलस्वरूप १९६०-६१ तक प्रतिवर्ष ५७०० स्नातक तथा ६८०० डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति उपलब्ध हुआ करेंगे। यह संख्या प्रथम योजना के अन्त में प्राप्त होने वाले स्नातकों तथा डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों से क्रमशः दुगुनी और तिगुनी होगी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

द्वितीय योजना की अवधि में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार हुआ है। इंजीनियरिंग कॉलेजों की संख्या ६५ से बढ़कर १०० और उनमें प्रविष्ट किये जा सकने वाले छात्रों की संख्या ५८८० से बढ़कर १३ [illegible] हो गई है। पॉलिटेक्निकों की संख्या ११४ से बढ़कर १९५ और उनमें प्रविष्ट किये जा सकने

वालों की संख्या १७ ४८४ से बढ़कर २४०२० हो गई है। स्नातकों की शिक्षा में ५ वर्ष और डिप्लोमाधारियों की शिक्षा में ३ वर्ष लगते हैं। इस कारण प्रतिवर्ष निकलने वाले स्नातकों और डिप्लोमाधारियों की संख्या में वृद्धि इस अनुपात से नहीं हुई। उनकी वार्षिक संख्या क्रमशः ४,००० से ८ ३०० और ४००० से १७ ००० तक ही पहुँच पाई है। परन्तु इन शिक्षा संस्थाओं का जितना विस्तार अब तक हो चुका है उसके आधार पर भी १९६५ तक वर्तमान इंजीनियरिंग कॉलेजों से पढ़ाई पूरी करके निकलने वाले स्नातकों की वार्षिक संख्या ११ ५०० और पालिटेक्नीकों से निकलने वालों की संख्या १८ ६०० हो जायगी।[1]

तृतीय योजना के समय ४५ ००० स्नातकों तथा ८०,००० डिप्लोमाधारियों की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना है। यह सब पूरा हो जायगी। डिप्लोमाधारियों की जो थोड़ी कमी रहेगी उसे पूरा करने के लिये तृतीय योजना के आरम्भ में ही यथाशीघ्र अतिरिक्त शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

तृतीय योजना की अवधि में डिग्री लेने वाले छात्रों के वार्षिक प्रवेश में ६ ००० की वृद्धि कर देने का विचार है—५ ००० को इंजीनियरिंग कॉलेजों में प्रविष्ट करके तथा १ ००० को आंशिक समय में अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा पढ़ाकर। अब वार्षिक दाखिला की संख्या १९६१ में १३ २०० से बढ़कर १९६६ में १९ ७०० हो जायगी। इस प्रकार चौथी योजना के समय ७५ ०० इंजीनियर स्नातकों की सम्भावित माँग इंजीनियरिंग कॉलेजों से निकले हुए और आंशिक समय में अथवा पत्र व्यवहार द्वारा पढ़े हुए स्नातकों को मिलाकर पूरी हो जायगी।

इसी प्रकार डिप्लोमा लेने वाले छात्रों के वार्षिक दाखिला की संख्या में १५ ००० की वृद्धि कर देने का विचार है—१० ००० को पालिटेक्नीकों में प्रविष्ट करके तथा ५ ००० को आंशिक समय में अथवा पत्र व्यवहार द्वारा पढ़ाकर। अब वार्षिक दाखिला की संख्या जो द्वितीय योजना के अन्त में २४ ०० थी वह तृतीय योजना के अन्त तक बढ़कर ६६ ००० हो जायगी। इससे चौथी योजना के समय डिप्लोमाधारियों की सब माँग पूरी हो जायगी। इस समय उसका अनुमान १ ० ० ० लगाया जा रहा है। सम्भव है कि

1 Third Five-Year Plan PP 607-617

माँग इससे भी बढ़ जाय। यदि ऐसा हुआ तो उसे पूरा करने के लिये आवश्यक उपाय किए जायेंगे।

तृतीय योजना में प्राविधिक शिक्षा के विकास कार्य-क्रम को पूरा करने के लिए १४२ करोड़ रुपये रखे गए हैं।[1]

आधुनिकतम गति विधियाँ

विज्ञान-मन्दिर

देश के विभिन्न भागों में ३८ विज्ञान मंदिर स्थापित किए जा चुके हैं। प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात हुआ है कि ये विज्ञान मंदिर लोकप्रिय सिद्ध हो रहे हैं। सरकार का विचार इनकी संख्या को बढ़ाकर ३०० कर देना है जिससे कि प्रत्येक जिले में एक विज्ञान मन्दिर हो जाय। ये विज्ञान मन्दिर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से सम्बन्धित रहेंगे। सम्भवतः इन ज्ञान मन्दिरों के साथ एक सांस्कृतिक अंग भी स्थापित किया जायगा।

छात्रवृत्तियाँ

विभिन्न संस्थाओं में दी जाने वाली छात्रवृत्ति के अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुसंधान मन्त्रालय ने इस वर्ष से योग्यता और साधन छात्रवृत्ति आरम्भ की है ताकि एक बड़े पैमाने पर व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा को सहायता प्राप्त हो सके।

अनुसंधान छात्रवृत्तियाँ

इस वर्ष अनुसंधान छात्रवृत्ति की योजना के अन्तर्गत ११६ छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। इस प्रकार अब तक ८०० छात्रवृत्तियाँ दी जा चुकी हैं। इन [illegible] राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाओं व विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों में अन्य कार्य करा [illegible] रहा।

प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति[1]

संस्थाओं के प्रकार	१९४९–५०		१९५८–५९	
	सस्थाओं की सख्या	छात्रों की संख्या	सस्थाओं की सख्या	छात्रों की सख्या
१ कृषि कलिज	१५	४ ५३८	२९	१० ८०१
२ कामर्स कलिज	२१	३२,१०८	३५	६६ ६१३
३ इ जीनियर कलिज	२३	१० ९०६	५३	३० ७४९
४ वन शिक्षा के कलिज	४	३८९	३	५९९
५ कानून के कलिज	२०	१० ६३३	३२	२४ ०५५
६ मेडिकल कलिज	३५	१२ ८३५	१०९	३२,२४२
७ शारीरिक शिक्षा के कलिज	५	१९२	१५	७४५
८ शिक्षक प्रशिक्षण कलिज	४८	४ ७११	२३३	२४ ४२८
९ टेकनालोजी के कलिज	५	१ २५३	९	४ ४५७
१० वेटेरिनरी कलिज	१०	१ ४८६	१७	४ ७३५
११ आर्किटेक्चर और टेकनिकल स्कूल	२० २८	१ ६२ ५३२	३ ५६३	३ ४१ ६७५
१२ कृषि स्कूल	३९	१ ८८२	१०२	७ ४११
१३ आर्ट और क्राफ्ट स्कूल	१३७	९ ८८७	३७४	१५ ९९६
१४ कामर्स के स्कूल	४१२	२७ ९८२	९९९	९८ ७५४
१५ इ जीनियरिंग स्कूल	११	३ ८७०	११८	४७ ९७७
१६ वन शिक्षा के स्कूल	२	५३	५	२३७
१७ टेकनिकल और इडस्ट्रियल स्कूल	४८६	३४ ३२६	८३३	६४ ५५८
१८ शिक्षक-प्रशिक्षण स्कूल	७२०	६७ ०४६	९७४	८६,३७९
१९ शारीरिक शिक्षा के स्कूल	१७४	१३,९९६	३८	७३ ९३९

1 *Review of Education in India (1947 1961) p 935 to p 955*

समस्यायें और उनके समाधान

(Problems & Their Solutions)

अंग्रेजी शासन काल में भारतीय शिक्षा पर औद्योगिक प्रभाव अति अल्प था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त से इस प्रभाव में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों का समावेश किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त डिप्लोमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की शिक्षा प्रदान करने के लिए विशिष्ट प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जा रही है। सरकार तथा व्यक्तिगत संस्थाएं इस शिक्षा में पूर्ण रूप से व्यस्त हैं पर अभी भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति मन्थर गति से हो रही है। इसका कारण यह है कि अनेक बाधाओं तथा समस्याओं ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार को अवरुद्ध कर रखा है। ये बाधायें, कठिनाइयाँ तथा समस्याएं क्या हैं? इन्हीं पर हम विचार करेंगे।

१ समस्या—अनुचित दृष्टिकोण (Wrong Attitude)

भारत में अति प्राचीन काल से मानसिक श्रम को मस्तक पर प्रतिष्ठित किया गया है और शारीरिक श्रम को हीन दृष्टि से देखा गया है। कार्य अथवा श्रम के आधार पर ही हमारे देश में जाति-व्यवस्था का निर्माण किया गया था। पठन-पाठन करने वाले ब्राह्मणों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया और व्यवसाय तथा हस्तकार्य करने वाले व्यक्तियों को उनसे निम्नतर स्थान दिया गया था। सहस्रों वर्ष प्राचीन जाति-व्यवस्था पर आधारित श्रम विभाजन की जड़ें हमारे समाज में इतनी गहरी पैठ गई हैं कि उनको निकालना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि आज के प्रगतिशील युग में भी हस्तकार्य करने वालों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। प्राविधिक शिक्षा में हस्तकार्यों तथा कौशलों का प्रमुख स्थान है। अतः अनेक स्वाभिमानी भारतीय इस शिक्षा को सम्मान नहीं देते हैं। इस अनुचित दृष्टिकोण का परिणाम यह है कि उच्च जातियों तथा परिवारों के बालक प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने के प्रति उदासीन रहते हैं। फलतः इस शिक्षा का उचित विस्तार नहीं हो रहा है।

समाधान

इस समस्या का समाधान कठिन नहीं है। यदि सरकार और [illegible] समाज [illegible] यह [illegible] कि [illegible]

श्रम से हीन नहीं है तो देश के नवयुवकों को प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रति आकर्षित किया जा सकता है। परन्तु केवल आन्दोलन से ही काम नहीं चलेगा। इससे जनता के दृष्टिकोण के परिवर्तन में सहायता अवश्य मिलगी परन्तु केवल यही पर्याप्त नहीं होगा। सरकार को उन छात्रों को अध्ययन की सुविधाएं देनी होगी जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। अतः यह आवश्यक है कि सरकार उनको छात्रवृत्तियाँ दे, अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त उनके लिये नौकरियाँ सुलभ बनाए और उन्हें अधिक वेतन तथा अन्य सुविधाओं का आश्वासन दे।

२ समस्या—शिक्षालयों का अभाव (Dearth of Institutions)

यद्यपि स्वतन्त्र्योत्तर काल में अनेक प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना की गई है, तथापि उनकी संख्या को पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है। आज की जागरूक भारतीय जनता समझने लगी है कि प्राविधिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों का भविष्य उज्ज्वल है। परन्तु विद्यालयों की न्यूनता के कारण लगभग ६० प्रतिशत छात्रों को इस शिक्षा की सुविधा न प्राप्त होने के कारण महान् निराशा होती है। ऐसी स्थिति में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के विकास की आशा करना व्यर्थ है।

समाधान

इस कठिनाई पर विजय तभी प्राप्त की जा सकती है जब देश में और अधिक प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों की आधार शिला रखी जाय और उनमें सभी स्तरों की प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय जिससे कि विभिन्न शारीरिक योग्यता वाले छात्र उनमें प्रवेश लेकर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने की अपनी इच्छा को सन्तुष्ट कर सकें। इस समय भारत में व्यावसायिक तथा प्राविधिक विद्यालयों की संख्या २१४ है।[1] इतने विशाल जनसंख्या वाले देश के लिए विद्यालयों की यह संख्या अति न्यून है। अतः सरकार का कर्तव्य है कि त्वरित गति से नवीन प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना करे।

३ समस्या—संकीर्ण पाठ्य-क्रम (Narrow Curriculum)

हमारे प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम संकीर्ण हैं अर्थात् उनमें प्रौद्योगिक विषयों को ही स्थान दिया गया है। उनमें सामान्य

---

१ तृतीय पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा) पृष्ठ १०३।

तथा सरकारी शिक्षा (Liberal Education) का कोई स्थान नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षा प्राप्त करके भी नवयुवक उत्पादन कार्य के सामाजिक उद्देश्य तथा मानव-सम्बन्धी का ज्ञान प्राप्त करने में असफल रहते हैं। फलस्वरूप उत्पादन काम सुचारु रूप से नहीं चल पाता है। अतः हम कह सकते हैं कि संकीर्ण पाठ्य-क्रम के कारण प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रायः निरर्थक हो जाता है।

पाठ्य क्रम के इस दोष का निवारण करने के लिए उनमें प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के साथ साथ सामान्य तथा सरकारी शिक्षा को भी उचित स्थान प्रदान करना चाहिये। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वह प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों के पाठ्य क्रमों को विस्तृत करके उनमें सामान्य तथा सरकारी शिक्षा को स्थान दे रही है।

४ समस्या—शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम (Unsuitable Medium of Instruction)

आधुनिक भारत के सभी प्राविधिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन में २ सितम्बर १९५६ को स्व० पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहेगा। पर क्या ? क्या अंग्रेजी के कारण छात्रों को कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ रहा है ? उदाहरणार्थ—उत्तर प्रदेश में इण्टरमीडिएट कक्षाओं तक शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। अब यदि एक छात्र इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त किसी प्रौद्योगिक विद्यालय में प्रवेश करता है तो उसे वहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी मिलता है। अब तक तो उसने हिन्दी में पढ़ा और समझा है पर अब सहसा उसे अंग्रेजी में सुनना, पढ़ना और लिखना है। इस परिवर्तन के कारण कितने ही छात्र तो निराश होकर अपना अध्ययन स्थगित कर देते हैं और कितने ही कम के कम में परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण विद्यालय का त्याग करने के लिए बाध्य कर दिए जाते हैं। तनिक विचार कीजिए इस दशा की निराशा पर उनके परिवार के सदस्य पर और उनके अभिभावकों के कष्ट धन पर।

समाधान

यह स्पष्ट है कि इस समस्या का निराकरण करने के लिए भारत के प्रदेशों को अपना दृष्टिकोण का परिवर्तन करना पड़ेगा। हिन्दी का

विभिन्न राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं को प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाना पड़ेगा। हमने माना कि इस कार्य में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा क्योंकि न तो अभी हमारे पास प्राविधिक विषयों की भारतीय भाषाओं में पुस्तकें ही हैं और न उनकी उपयुक्त शब्दावली ही तैयार है। परन्तु दृढ़ निश्चय इस कार्य में अवश्य सफलता प्रदान करेगा। अन्य देशों के उदाहरण हमारे समक्ष हैं। चीन जापान रूस जर्मनी और कितने ही अन्य देशों में शिक्षा का माध्यम वहाँ की भाषाएँ हैं न कि अंग्रेजी। यदि उन देशों में यह कार्य सम्भव हो सकता है तो अंग्रेजों की दासता से मुक्ति प्राप्त करके अंग्रेजी की दासता की बेड़ियाँ भारत को क्यों पहनाई जायें?

५ समस्या—प्रायोगिक शिक्षा का न्यून महत्त्व (Less Importance of Practical Education)

हमारे प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों में सैद्धान्तिक शिक्षा (Theoretical Education) को प्रायोगिक शिक्षा (Practical Education) की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। परिणाम यह होता है कि प्राविधिक विद्यालयों से निकले हुए स्नातक प्रायोगिक कार्य में दक्ष नहीं होते हैं। यथार्थ में उन्हें इसी कार्य से अधिक प्रयोजन रहता है। फलतः उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्हें साधारण अपने अधीनस्थ और कम शिक्षित कर्मचारियों पर निर्भर होना पड़ता है। इससे उनके सम्मान की हानि होती है।

समाधान

इस दोष का उन्मूलन करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे प्राविधिक विद्यालय प्रायोगिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करें। इस कार्य में उन्हें योरप तथा अमरिका के प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों से पाठ सीखना चाहिए। वहाँ छात्रों को कारखानों फैक्ट्रियों आदि में भेजकर इतना प्रायोगिक ज्ञान करा दिया जाता है कि उन्हें कोई भी कार्य करने में असफल होने की आशंका नहीं रहती है और न उन्हें अन्य व्यक्तियों का मुँह ताकना पड़ता है।

६ समस्या—उपरान्त शिक्षा का अभाव (Lack of Continuation Education)

प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त नवयुवक किसी उद्योग में प्रवेश करते हैं। कुछ समय तक तो उनके मस्तिष्क अधिक ज्ञान से परिपूर्ण रहते हैं परन्तु धीरे धीरे उनमें शिथिलता आने लगती

है। वे अनेकों बातें विस्मृत कर देते हैं। फलतः उनकी दक्षता में न्यूनता आ जाती है। जितना अधिक प्रौद्योगिक ज्ञान एक मनुष्य में होगा उतनी ही अधिक कुशलतापूर्वक वह प्राविधिक कार्य को सम्पन्न कर सकेगा। परन्तु यदि ऐसा नहीं है तो वह कुशलता के स्तर से नीचे गिर जायगा। साधारणतः देखा तो ऐसा हो जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्राविधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए अध्ययन समाप्ति के उपरान्त शिक्षा की व्यवस्था नहीं है।

समाधान

प्राविधिक शिक्षा की इस समस्या का निवारण अनेक विधियों द्वारा किया जा सकता है। प्रथम अंशकालिक शिक्षा (Part time Instruction) की व्यवस्था की जाय। परन्तु यदि दिन में किसी समय इस शिक्षा की व्यवस्था की जाय तो कर्मचारियों को उसे प्राप्त करने की सुविधा दी जानी चाहिए। इस शिक्षा में केवल 'सिद्धान्त' (Theory) को ही स्थान दिया जाय क्योंकि प्रायोगिक कार्य में तो कर्मचारी अपनी कर्मशालाओं में ही कार्य करके कुशल हो जाते हैं। द्वितीय कर्मचारियों के लिये 'अभिनव पाठ्यक्रमों' (Refresher Courses) की व्यवस्था की जाय। यहाँ यह लिख देना समीचीन है कि प्रत्येक कर्मचारी को प्रतिवर्ष या दो वर्ष के उपरान्त उत्तरोत्तर [illegible] किसी एक [illegible] एक निश्चित अवधि में साथ लगाने के लिए बाध्य किया जाय।

७ समस्या— शिक्षकों का अभाव (*Dearth of Teachers*)

प्राविधिक शिक्षा की एक प्रमुख समस्या है—उत्तम शिक्षकों का अभाव। प्राविधिक विद्यालयों के लिए उपयुक्त अर्हताओं वाले शिक्षकों को प्राप्त करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। कारण यह है कि उद्योगों में प्राविधिक शिक्षा प्राप्त योग्य व्यक्तियों को इतना अधिक वेतन और इतने प्रकार की सुविधायें मिलती हैं कि वे प्राविधिक विद्यालयों में शिक्षकों का कार्य करने की बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोचते हैं। फिर शिक्षकों का समाज में कोई सम्मान नहीं है। इसके विपरीत किसी उद्योग तथा व्यवसाय में कार्य करने वाले अधिक ठाट-बाट से रहने वाले व्यक्तियों का समाज में आदर होता है। फलतः विद्यालय उत्तम शिक्षकों को सरलता से आकर्षित नहीं कर पाते हैं। फलतः इन विद्यालयों का शिक्षा स्तर गिर गया है।

एवं व्यावसायिक विद्यालयों के लिये योग्य शिक्षकों की सेवाओं को सुलभ बनाये। इस कार्य में सरकार को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह प्राविधिक एवं व्यावसायिक विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनों में वृद्धि करे और उनकी सेवाओं की शर्तों को उत्तम बनाये। यदि सरकार ने ऐसा नहीं किया, तो प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार नहीं हो सकेगा।

हमें हर्ष है कि सरकार इस समस्या के समाधान में व्यस्त है। 'तकनीकी शिक्षा के विस्तार की एक कठिन समस्या—शिक्षकों की कमी है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि आजकल यह कमी डिग्री कॉलिजों में लगभग १३ प्रतिशत और डिप्लोमा-संस्थाओं में २५ प्रतिशत है। दूसरी योजना में कुछ योजनायें चुने हुए इन्जीनियरी कॉलिजों में शिक्षावृत्ति देकर शिक्षक तैयार करने की और स्नातकों को इस शर्त पर विदेशी छात्रवृत्तियाँ देनी शुरू की गई थीं कि वे वहाँ से लौटकर भी शिक्षक का कार्य करेंगे। इन्हें तीसरी योजना में भी जारी रखा जायगा। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् ने सिफारिश की है कि तकनीकी विषय पढ़ाने वालों की वेतन दरें ऊँची कर दी जायें। आशा है कि इस सिफारिश के कारण भी कुछ अधिक लोग इस पेशे की ओर आकृष्ट होंगे।'[1]

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What in your opinion is the importance of Technical and Vocational Education? How has this need been met in Free India?
2. What problems are being faced in the expansion of technical and vocational education? How can they be tackled?

---

1 तीसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० १ ५ ।

२६

अध्यापक-शिक्षा

(Teacher Education)

विषय प्रवेश

एस० बालकृष्ण जोशी के शब्दों में — एक सच्चा शिक्षक धन के अभाव में धनी होता है उसकी सम्पत्ति का विचार कभी भी रुपया पैसा में नहीं किया जाना चाहिए अपितु उस प्रेम और भक्ति में जो उसने अपने छात्रों से उपार्जित की है। वह सम्राट है जिसका शासन न उसके शिष्यों के हृदय [illegible] में सामना किसी से नहीं है जिसका [illegible] को कोई भी शक्ति छीन नहीं सकता है और न किसी को कभी कम नष्ट कर सकता है। अध्यापक एक निर्माणकर्ता है। [illegible] और शिक्षा निकाय के रूप में इसकी चर्चा करना [illegible] करता है। उन विभिन्न को बतलाना जिनसे व्यक्ति अध्यापकों के प्रति रुचित हो जायँ उनके कार्य को प्रभावित करता है। वह मनुष्य महत्वाकांक्षी है जो शिक्षक है। उसकी दूसरी महत्वाकांक्षी यह है जिसने हमारे इस महान देश में शिक्षक का प्रथम स्थान है जहाँ गुरु के प्रति प्रेम और सम्मान प्रकट किया गया है एवं उसे देवताओं की श्रेणी में रखा गया है [illegible] और देश के उत्थान में [illegible] उसकी निपुणता महत्वाकांक्षी यह है जो इस देश के इस [illegible] में निहित है

जो अनिर्वचनीय प्रगति और समृद्धि की सम्भावनाओं से आलोकित है जबकि मातृभूमि स्वर्णयुग में पदार्पण कर रही है।"[1]

ऐसे पुनीत व्यक्ति व पुनीत कार्य की सुदूर प्राचीन युग में भी अवहेलना नहीं की गई और उसके प्रशिक्षण की ऐसी व्यवस्था की गई जिससे वह अपने उत्तरदायित्व का पालन कर सके।

प्राचीन भारत में अध्यापक शिक्षा

प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि अध्यापक अपने प्रत्येक छात्र के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देता था। कभी-कभी एक गुरु के पास विद्या अर्जन के लिये इतने छात्र आ जाते थे कि वह उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर पाता था। अतः वह उच्च कक्षा के सबसे अग्रिम छात्रों की सहायता और सहयोग प्राप्त करता था। ये 'पित्ति आचार्य' (Pittiacharya) कहे जाते थे। ये छात्रों के शिक्षण में गुरु की सहायता करते थे। यदि कभी गुरुजी कुछ समय के लिये कहीं चले जाते थे तो वे अध्यापन और विद्यालय का समस्त कार्य उनको सौंप जाते थे। यह कक्षा-नायकीय पद्धति (Monitorial System) थी जिसमें कक्षा के कुछ नायक अथवा अग्रिम छात्र विद्यालय-संचालन और शिक्षण का कार्य करते थे। जिन छात्रों को यह कार्य सौंपा जाता था वे समय की गति के साथ कुशल अध्यापक और विद्यालय संचालक हो जाते थे। इस प्रकार प्रशिक्षित होकर वे भविष्य में अध्यापन कार्य में रत हो जाते थे। यद्यपि इनका शिक्षा सिद्धान्त ऐसे विषय की शिक्षा न भी

---

1 "A true teacher is rich without money. His wealth is to be reckoned not in terms of bank balance but in the bounteous love and loyalty he has evoked in his pupils. He is an emperor whose empire is carved in the grateful minds of his pupils which no power on earth can shake, no atom bomb can destroy. Teaching is a divinely ordained mission. To talk of it in terms of trade union and craft guild is to degrade it, to adopt tactics intended to frighten people into pity is to desecrate it. Blessed is he who is a teacher, twice blessed is he who is born a teacher in this great land of ours where the preceptor has been loved, honoured and lifted to the rank of the gods, where prince and peasant have vied with each other in showing him reverence, thrice blessed is he who is teacher here in this glorious dawn which is flushed with the possibilities of unprecedented progress and prosperity when the motherland is on the Threshold of a Golden Era."

—S. Bala Krishna Joshi

जाती था पर उनको इतना क्रियात्मक (Practical) प्रशिक्षण दे दिया जाता था कि उनका अपना कार्य में असफल होने का प्रश्न उठता ही नहीं था। भारत में 'कक्षानायकीय पद्धति' अंग्रेजों के आगमन तक विद्यमान थी। १७८७ में ऐन्ड्रयू बल (Andrew Bell) ने अपने विद्यालय में इस पद्धति को अपनाया। इसी के आधार पर इंगलैण्ड में बेल पद्धति का विकास हुआ।

मुस्लिम-काल में अध्यापक-शिक्षा

भारत के मुस्लिम शासकों का ध्येय था अपने धर्म का प्रचार करना और हिन्दुओं को मुसलमान बनाना। अतः अनेक मुस्लिम शासकों के अतिरिक्त और किसी ने भी मुस्लिम शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया। ऐसी दशा में अध्यापक शिक्षा का विचार मस्तिष्क में आना कठिन था।

अध्यापक शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास (Early Efforts for Teacher Education)

आधुनिक युग में सर्वप्रथम बम्बई, मद्रास और कलकत्ता की शिक्षा-परिषदों ने अध्यापकों की शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया और उन्होंने थोड़े से प्रशिक्षण-कक्षाओं की स्थापना की। पर इन कक्षाओं में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था।

'बम्बई प्रान्त की देशी शिक्षा परिषद्' (Native Education Society) ने २४ अध्यापकों को प्रशिक्षण देकर प्रान्त के विभिन्न भागों में भेजा जिससे कि प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके।

१८१९ में कलकत्ता विद्यालय परिषद् (Calcutta School Society) स्थापित की गई। इसने कक्षानायकीय पद्धति पर आधारित शिक्षकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया। १८२५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सचालकों ने नॉर्मल स्कूल की स्थापना करने के लिये ५००) मासिक सहायता प्रदान की।

१८२६ में मद्रास के गवर्नर मुनरो (Munro) के सुझाव के अनुसार अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये मद्रास में एक विद्यालय का उद्घाटन किया गया।

वुड का घोषणा-पत्र एवं अध्यापक शिक्षा (Wood's Despatch & Teacher Education)

प्रशिक्षण विद्यालय निर्मित किये जायें ।[1] औषधि शास्त्र इन्जीनियरिंग तथा कानून आदि में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय ।

संचालकों ने यह भी आशा प्रकट की कि छात्राध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा विभाग को उतना ही आकर्षक बनाया जाय जितने कि अन्य राजकीय विभाग थे ।[2]

वुड के घोषणा-पत्र में कम्पनी के संचालकों ने अध्यापक शिक्षा के लिये जो आशा व्यक्त की थी वह पूर्ण न हुई । भारत स्थित कम्पनी के कर्मचारियों ने संचालकों के आदेश के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया । इसका उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम भारत मंत्री (Secretary of State for Inaia) लार्ड स्टनले (Lord Stanley) ने अपने १८५६ के आदेश-पत्र (Despatch) में लिखा— कम्पनी के संचालकों ने जिन प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना के सम्बन्ध में आदेश दिये थे उनकी स्थापना अभी तक नहीं की गई है ।

१८५९ से १८८२ तक अध्यापक शिक्षा

लार्ड स्टनले ने अपने आदेश-पत्र में इस बात का उल्लेख किया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय । सत्ता हस्तान्तरण के उपरान्त भारत स्थित अंग्रेज प्रशासकों के लिये भारत मंत्री के आदेश की अवज्ञा करना सम्भव नहीं था । अतः उन्होंने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अत्यन्त उत्साह से कार्य किया और १८८२ तक प्रत्येक प्रान्त में अनेक प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित हो गये । १८८२ में बम्बई में ७ प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषों के लिये और ३ स्त्रियों के लिये थे । इनमें अध्ययन करने वालों की कुल संख्या ५५३ थी । मध्य प्रदेश में ४ प्रशिक्षण विद्यालय थे—३ पुरुषों के लिये और १ स्त्रियों के लिये । इनमें पढ़ने वालों की संख्या १८८ थी । १८६२ में बंगाल में नार्मल स्कूल प्रणाली (Normal School System) प्रारम्भ की गई । इसके अनुसार देशी पाठशालाओं के शिक्षकों या उनके सम्बन्धियों को नार्मल स्कूल में भेजा जाता था । प्रत्येक शिक्षक को ५ रु॰ मासिक छात्रवृत्ति दी जाती थी । १ वर्ष के प्रशिक्षण के बाद अध्यापक का

---

1 "We desire to see the establishment with as little delay as possibe of training schools and classes for masters in each Presidency in India

—Wood s Despatch

2 "Our wish is that the profession of schoolmaster may for the future afford inducements to the natives of India such as are held out in other branches of the public service

—Ibid

अपने विद्यालय को सौंपना पड़ता था। छात्राध्यापकों को शिक्षण-विधि-गणित इतिहास आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। धनाभाव के कारण 'नार्मल स्कूल प्रणाली' को विस्तृत न किया जा सका और १८७१ तक बंगाल में ४१ नार्मल स्कूलों की स्थापना हुई। १८७४ में प्रान्त के गवर्नर कैम्पबेल (Campbell) ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक नवीन योजना की रूप रेखा तैयार की। इसके अनुसार १ लाख ६४ हजार रुपये व्यय करके ४६ नार्मल स्कूलों का निर्माण किया गया। बंगाल में ३२ प्रशिक्षण विद्यालय थे जिनमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों की संख्या ६ ७ थी। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया गया था। १८८२ में सम्पूर्ण भारत में १०६ नार्मल स्कूल थे जिनमें ३ ८८६ पुरुषों एवं स्त्रियों को प्रशिक्षित किया जा रहा था। इन स्कूलों का वार्षिक व्यय लगभग ८ लाख रुपया था।[1]

१८८२ में अध्यापक शिक्षा की स्थिति (Position of Teacher Education in 1882)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १८८२ तक प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कुछ कार्य किया गया। नव-स्थापित प्रशिक्षण विद्यालयों में विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया। प्रारम्भ में तो इन विद्यालयों में कक्षानायकीय पद्धति (Monitorial System) को प्रचलित किया गया। कुछ समय के उपरान्त उनमें शिक्षार्थी प्रणाली (Apprentice System) को अपनाया गया। इस प्रणाली के अनुसार छात्राध्यापक किसी अनुभवी अध्यापक के साथ एक निश्चित समय तक रहकर शिक्षण-सम्बन्धी विधियों का ज्ञान प्राप्त करता था। बम्बई प्रान्त में अवधि तीन वर्ष की थी। छात्राध्यापकों को ३ से ५ रु० मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी।

जहाँ तक माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रश्न था, उस ओर न्यूनतम ध्यान दिया गया। १८८२ तक सम्पूर्ण देश में केवल दो प्रशिक्षण महाविद्यालय थे—एक मद्रास में जिसकी स्थापना १८५६ में हुई थी और दूसरा लाहौर में जिसका शिलान्यास १८८१ में किया गया था। इन महाविद्यालयों में कुल ४१ छात्राध्यापक थे जो २ वर्ष के शिक्षण का कोर्स पूर्ण करने में असमर्थ थे। इनके प्रशिक्षण एवं विद्यालयों का पाठ्यक्रम निम्न कोटि का था और इनके पास अभ्यास के लिए स्कूल (Practising schools) भी नहीं थे।

अध्यापक शिक्षा की नियमित व्यवस्था (Regular Provision for Teacher Education)

अध्यापक शिक्षा की निश्चित व्यवस्था करने के लिए सबसे पहिला कदम १८८२ में भारतीय शिक्षा-आयोग ने उठाया। उसने प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाय जहाँ से वे समस्त प्राथमिक पाठशालाओं की स्थानीय माँगों की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक विद्यालय निरीक्षक के क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल की स्थापना की जाय।[1]

२ नार्मल स्कूलों को सफल बनाने के लिए यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक निरीक्षक अपने अधीनस्थ प्रशिक्षण विद्यालय में रुचि ले और उसके कुशल संचालन की व्यवस्था करे।

३ प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिए स्वीकृत धन राशि में से प्रारम्भिक विद्यालयों के निरीक्षण तथा नार्मल स्कूलों की स्थापना की उचित व्यवस्था की जाय।[2]

४ प्रशिक्षण विद्यालय कुछ स्थानों तक ही सीमित न रखे जाकर समस्त देश में फैला दिये जायें।[3]

५ स्नातक एवं अस्नातक — दोनों प्रकार के शिक्षकों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम हों और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था भी पृथक हो।

परिणाम—भारतीय शिक्षा आयोग के सुझावों के अनुसार अध्यापक शिक्षा की नियमित व्यवस्था आरम्भ कर दी गई। फलस्वरूप १९ वीं शताब्दी के अन्त तक

---

1 "We recommend that the supply of Normal Schools, whether Government or aided be so localised as to provide for the local requirements of all primary schools whether Government or aided within the division under each Inspector." —*Indian Education Commission Report*

2 "We recommend that the first charges on provincial funds assigned for Primary Education be the cost of the direction and inspection and the provision of an adequate supply of Normal Schools."—*Indian Education Commission Report.*

3 "It seems to us a matter of the greatest importance not merely that normal schools should be established at a few centres, but they should be widely distributed throughout the country."—*Indian Education Commission Report*

सम्पूर्ण देश में ६ प्रशिक्षण महाविद्यालय—(मद्रास, लाहौर, इलाहाबाद, कुरसोंग, राजमुन्दरी और जबलपुर)—और ५० प्रशिक्षण विद्यालय अध्यापक शिक्षा का कार्य करने लगे।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव १९०४ (Government Resolution on Educational Policy, 1904)

शिक्षा प्रिय लार्ड कर्ज़न (Curzon) ने अध्यापक प्रशिक्षण की ओर समुचित ध्यान दिया। उनके द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' पर अध्यापक प्रशिक्षण की समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार किया गया और निम्नांकित सिद्धान्त स्वीकार किये गये —[1]

१ भारतीय शिक्षा सेवा विभाग (Indian Educational Service) के लिए योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों के उच्च प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाय।

२ प्रशिक्षण महाविद्यालय के लिए उपकरणों (Equipment) का महत्त्व उतना ही है जितना कि सामान्य महाविद्यालय के लिए।

३ स्नातकों के लिए प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष की हो। इसके पश्चात् उन्हें विश्वविद्यालय द्वारा उपाधि प्रदान की जाए। पाठ्यक्रम में शिक्षा-कला का ज्ञान तथा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण का सम्मिलित हों। उपस्नातकों के लिए प्रशिक्षण काल दो वर्ष हो।

४ सैद्धान्तिक प्रशिक्षण तथा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण परस्पर सम्बन्धित हों एवं प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय के साथ एक अभ्यासात्मक विद्यालय (Practising School) संलग्न हो।

५ प्रशिक्षण महाविद्यालयों का सम्बन्ध सामान्य विद्यालयों से होना चाहिए जिससे कि अध्यापक अपनी शिक्षा की विधियों का प्रयोग कर सकें।

परिणाम—उपरोक्त सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत किया गया, जिसके अति सुन्दर परिणाम निकले, यथा —(१) प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई (२) स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए (३) स्नातकों के लिए प्रशिक्षण की अवधि १ वर्ष और उपस्नातकों

---

1 Government Resolution on Educational Policy 1904 Para 37

(Under-graduates) के लिए २ वर्ष रखी गई और (४) प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के साथ अभ्यासात्मक विद्यालय संलग्न कर दिये गये।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, १९१३ (Government Resolution on Educational Policy 1913)

१९१३ के सरकारी प्रस्ताव में अध्यापक प्रशिक्षण के महत्त्व पर बल दिया गया और यह घोषित किया गया—

शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था में किसी भी शिक्षक को उस समय तक अध्यापन-कार्य न सौंपा जाय जब तक कि उसके पास तत्सम्बन्धी प्रमाण-पत्र न हो।[1]

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग और अध्यापक शिक्षा

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (१९१७-१९) ने अध्यापक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और इस सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये—

१ प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या में वृद्धि की जाय।
२ शिक्षा में शोध-सम्बन्धी कार्य को प्रोत्साहन दिया जाय।
३ प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय में एक प्रदर्शन विद्यालय (Demonstration School) संलग्न हो जिसमें प्रायोगिक कार्य किया जा सके।
४ बी० ए० एवं इण्टरमीडिएट कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में शिक्षा के विषय को स्थान दिया जाय।
५ कलकत्ता एवं ढाका विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग की स्थापना की जाय।

हर्टॉग समिति और अध्यापक शिक्षा

१९२९ की हर्टॉग समिति (Hartog Committee) ने प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण पर अत्यधिक बल दिया और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये—

१ अध्यापकों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाया जाय।

---

1 Under modern system of education no teacher should be allowed to teach without a certificate that he has qualified to do so —*Government Resolution on Educational Policy*, 191 Para 51

२ प्रशिक्षण की अवधि को बढ़ाया जाय।
३ प्रशिक्षण संस्थाओं में सुयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति की जाय और उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।
४ समय-समय पर प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम (Refrelsher Courses) की व्यवस्था की जाय।
५ सुयोग्य व्यक्तियों को अध्यापन-कार्य के प्रति आकर्षित करने के लिये अध्यापकों की सेवा-दशाओं में सुधार किया जाय।

अध्यापक शिक्षा पर विहंगम दृष्टिपात (१८८२ १९४७)

उपरोक्त कमीशनों, आयोगों और समितियों के सुझावों के कारण अध्यापक प्रशिक्षण की सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि हुई। १९ २ में समस्त देश में १०७२ नार्मल स्कूल थे जिनमें २७००० छात्राध्यापक शिक्षा का अर्जन कर रहे थे। उस वर्ष प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या १२ और छात्राध्यापकों की संख्या ५११ थी।

१९१७ में देश में ३४६ नार्मल स्कूल थे और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्राध्यापकों की संख्या ११,७४२ थी। महिलाओं के लिये १११ नार्मल स्कूल थे जिनमें ७९०९ महिलायें प्रशिक्षण प्राप्त कर रही थीं। १९४१ तक भारत में उपलब्ध प्रशिक्षण-सुविधाओं का अनुमान नीचे की तालिका से लगाया जा सकता है —

अध्यापक प्रशिक्षण की प्रगति (१९१ -४१)

विवरण	१९११ १२	१९१६ १७	१९४० ४१
प्रशिक्षण महाविद्यालय	१३	१	२५
छात्र	१३८५	१,७३९	२,१९८
पुरुष नार्मल स्कूल	५२१	३४६	३७६
छात्र	२१८३३	११७४२	२७४१५
महिला नार्मल स्कूल	१०६	१११	२३५
छात्राएं	५९४२	७९०९	८८९९

प्रशिक्षण संस्थायें (Training Institutions)—१९४७ में भारत में निम्नलिखित तीन प्रकार की प्रशिक्षण संस्थायें कार्य कर रही थीं—

(१) नार्मल स्कूल (Normal Schools)—इनमें प्राथमिक विद्यालयों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता था। इनमें मिडिल पास व्यक्ति प्रवेश पाते थे।

(२) सेकेंडरी ट्रेनिंग स्कूल (Secondary Training Schools)—इनमें मिडिल स्कूलों के अध्यापकों को दीक्षित किया जाता था। इनमें मेट्रीकुलेशन पास विद्यार्थी ही प्रवेश पा सकते थे।

(३) ट्रेनिंग कालेज (Training Colleges)—इनमें हाई स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें केवल स्नातक और पर-स्नातक ही प्रवेश पाने के अधिकारी थे।

स्वतन्त्र भारत में प्रशिक्षण सुविधाएं
(Training Facilities in Independent India)

स्वतन्त्र भारत में अध्यापक प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार करने के लिये सराहनीय प्रयत्न किये गये हैं। इस दिशा में १९४९ के विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग और १९५३ के माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने जो सुझाव दिये हैं, उनको भारत-सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। यहाँ इन सुझावों का संक्षिप्त वर्णन वांछनीय जान पड़ता है।

१ विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (University Education Commission)—अध्यापक शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने अधोलिखित सिफारिशें कीं—

१ प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्य क्रम में सुधार किया जाय। पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा विद्यालय में अध्यापन के अभ्यास को अधिक महत्व दिया जाय।

२ छात्रों के कार्य का मूल्याङ्कन करने में उनके अध्यापन की सफलता पर विशेष ध्यान रखा जाय।

३ अध्यापन के अभ्यास के लिए केवल उपयुक्त विद्यालयों को ही चुना जाय।

४ प्रशिक्षण विद्यालय में ऐसे व्यक्ति अध्यापक हों जो स्कूलों में पढ़ाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हों।

५ शिक्षा सिद्धान्त (Theory of Education) के पाठ्यक्रम सयोग और स्थानीय वातावरण के अनुकूल हो।

६ एम० एड० डिग्री के लिये उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाय जिन्हें कुछ वर्ष के शिक्षण का अनुभव हो।

७ शोध कार्यों तथा सम्मेलनों द्वारा मौलिक कार्य अखिल भारतीय स्तर पर किया जाय।

(२) माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission)—आयोग ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के विषय में नीचे लिखे सुझाव दिये—

१ प्रशिक्षण विद्यालय केवल दो प्रकार के होने चाहिए —(क) प्रथम उनके लिए जो माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं। इनका प्रशिक्षण-काल दो वर्ष का होना चाहिए (ख) द्वितीय उनके लिए जो स्नातक हैं। इनका प्रशिक्षण-काल इस समय एक वर्ष रहे परन्तु कुछ समय के पश्चात् दो वर्ष कर दिया जाय।

२ छात्राध्यापकों को एक या अधिक अतिरिक्त पाठ्य क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाय।

३ प्रशिक्षण विद्यालयों में अभिनवन पाठ्य क्रमों (Refresher Courses) विशेष विषयों के लघु गहन पाठ्य-क्रमों (Short Intensive Courses) और कार्य-शालाओं में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) की व्यवस्था की जाय।

४ प्रशिक्षण विद्यालयों में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय। सब छात्राध्यापकों को राज्य की ओर से उपयुक्त छात्रवृत्तियाँ (Stipends) दी जायें। जो शिक्षक किसी स्कूल में कार्य कर रहे हों उन्हें प्रशिक्षण-काल के लिये पूर्ण वेतन प्रदान किया जाय।

५ स्त्री अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिए अंशकालिक प्रशिक्षण पाठ्य क्रमों की व्यवस्था की जाय।

स्वतन्त्र भारत में अध्यापक-शिक्षा का विस्तार

(Expansion of Teacher Education in Independent India)

उपरोक्त सुझावों और भारत सरकार की रुचि के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत में अध्यापक-प्रशिक्षण का जो विस्तार हुआ है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

अध्यापक-शिक्षा का विस्तार (१९४९-१९५८)[1]

संस्था का प्रकार	वर्ष	संस्थाओं की संख्या	छात्र एवं छात्राओं की संख्या	व्यय (रुपयों में)
प्रशिक्षण	१९४९—५०	४८	४,७६१	३३ ५५,१५६
महाविद्यालय	१९५३—५४	६१	८ ८४८	४३ ५८ ४७२
	१९५८—५९	२३३	२४,४२८	१,१६ ३४,४४१
"				
प्रशिक्षण	१९४९—५०	७२०	६७,०४६	१ ६०,६३,६७२
विद्यालय	१९५३—५४	८०८	७६ ६६३	१ ६८,३७ ७२१
	१९५८—५९	६७४	८६,३७६	२ ५५ ७८,३५२

वर्तमान प्रशिक्षण संस्थायें

(Present Training Institutions)

इस समय हमारे देश में निम्नलिखित ६ प्रकार की अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थायें कार्य कर रही हैं —

१ पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण केन्द्र (Pre Primary Training Centres)
२ नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय (Normal or Primary Training Schools)
३ उपस्नातकों के लिये माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालय (Secondary Training Schools for Under-graduates)
४ स्नातकों के लिये प्रशिक्षण महाविद्यालय (Training Colleges for Graduates)
५ शिक्षिका प्रशिक्षण-संस्थाएँ (Training Institutions for Women Teachers)
६ विशेषज्ञ प्रशिक्षण-केन्द्र (Training Centres for Specialists)

1 *Review of Education in India* (1947-61), pp 939 – 970

१ पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण-केन्द्र (Pre-Primary Training Centres)

हमारे देश में पूर्व प्राथमिक शिक्षा अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। अतएव पूर्व प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की प्रशिक्षण व्यवस्था भी अभी अधूरी है। १९५६ में भारत में २४ पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण केन्द्र थे जिनमें से २१ स्वयंचालित (Private) और ३ राजकीय थे।[1] इनमें मैट्रिक और अपर प्राइमरी पास छात्रों को १ वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रशिक्षण-केन्द्रों के पाठ्य-क्रम विभिन्न हैं। ये केन्द्र विभिन्न पूर्व प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जैसे—पूर्व प्राथमिक किंडरगार्टन (Kindergarten) एवं मॉण्टेसरी (Montessori)। इतने पर भी पाठ्य-क्रम बहुत कुछ समान है। उदाहरणार्थ—मद्रास प्रान्त की नर्सरी मॉण्टेसरी किंडरगार्टन सर्टिफिकेट परीक्षा के लिए अधोलिखित विषय स्वीकृत हैं[2] —

१ मनोविज्ञान
२ आरोग्य विज्ञान तथा आहार
३ विद्यालय-प्रशासन
४ शिक्षण-पद्धति
५ बालक का निरीक्षण का रिकार्ड रखना और हस्तशिल्प तथा शारीरिक व्यायाम।

इसी प्रकार पूर्व बुनियादी (Pre Basic) पाठ्यक्रम में अधोलिखित विषय हैं[3] —

१ सामुदायिक जीवन का संगठन
२ समाज शिक्षण
३ बाल अध्ययन
४ बाल शिक्षा का इतिहास
५ पूर्व-बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्त तथा उद्देश्य
६ पूर्व-बुनियादी शिक्षा के पाठ्य विषय
७ कार्य-योजना
८ स्वच्छता एवं स्वास्थ्य
९ प्रकृति अध्ययन

१० भाषा एवं साहित्य (वाणी प्रशिक्षण सहित)
११ संगीत एवं ताल
१२ कला एवं शिल्प ।

२ नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय (Normal or Primary Training Schools)

भारत में दो प्रकार के प्राथमिक विद्यालय हैं (१) बुनियादी (Basic) एवं (२) गैर-बुनियादी (Non Basic)। अतः प्रशिक्षण विद्यालय भी दो प्रकार के हैं। १९५६ ५७ में सारे देश में ५८१ बुनियादी एवं ११५ गैर-बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय थे।[1] दोनों प्रकार के विद्यालयों की पाठ-चर्याओं की अवधि दो वर्ष की है।

दोनों प्रकार के विद्यालयों में दो प्रकार के सर्टिफिकेट प्रदान किए जाते हैं —(१) जो अपर-प्राइमरी पास छात्र इन विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं उनको 'जूनियर टीचर्स सर्टिफिकेट' (Junior Teachers' Certificate) प्रदान किया जाता है (२) जो छात्र मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करके इन केन्द्रों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं उनको सीनियर टीचर्स सर्टिफिकेट' (Senior Teachers Certificate) मिलता है।

विद्यालयों में बुनियादी एवं गैर बुनियादी प्रशिक्षण की व्यवस्था है और दोनों के पाठ्य-क्रमों में पर्याप्त अन्तर है।

(१) बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों का पाठ्य क्रम—यह पाठ्य-क्रम निम्न लिखित प्रकार का है[2] —

अ—सिद्धान्त—इसमें ७ प्रश्न-पत्र होते हैं यथा —

१ बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त
२ प्रारम्भिक शिक्षा-मनोविज्ञान
३ विद्यालय-व्यवस्था
४ (क) पाठ्य विषयों की शिक्षण विधियाँ (ख) कला तथा शिल्प की शिक्षण विधियाँ।
५ स्वास्थ्य विज्ञान मनोरंजक क्रियायें एवं सामाजिक अध्ययन के शिक्षण की विधियाँ।

---

1 Education in the States (1956-57) pp 3-5
2 बम्बई राज्य (१९५६ ५७) का पाठ्य क्रम।

६ मातृभाषा, गणित एवं सामान्य विज्ञान के शिक्षण की विधियाँ।

७ गुरुमुखी लिपि में पंजाबी भाषा।

ब—प्रायोगिक शिक्षण— इसमें निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं

१ ३० समवायी पाठ

२ प्रदर्शन सामग्री का उपयोग

३ शारीरिक शिक्षण।

स—कला और शिल्प में व्यावहारिक निपुणता —

(i) अनिवार्य विषय —

१ कृषि (केवल मनुष्यों के लिए) अथवा सिलाई (केवल स्त्रियों के लिए)

२ कताई और बुनाई

३ ड्राइंग (Drawing) तथा पट्ट का काम।

(ii) ऐच्छिक विषय निम्नांकित में से एक —

१ लकड़ी का काम

२ रासायनिक क्रियायें (इसमें साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, खार बनाना आदि क्रियायें सम्मिलित हैं)।

द सामाजिक कार्य तथा सामूहिक जीवन। —

१ दो सप्ताह का शिविर

प्राथमिक चिकित्सा।

(२) गैर बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों का पाठ्यक्रम —इस पाठ्यक्रम निम्नलिखित प्रकार का है : —

अ—सिद्धान्त इसमें ६ प्रश्नपत्र होते हैं—

१ आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी, पंजाबी अथवा उर्दू)

२ भाषा और गणित की शिक्षण विधियाँ

३ सामाजिक ज्ञान (अर्थात्—इतिहास, भूगोल), नागरिक शास्त्र और सामान्य विज्ञान की शिक्षण विधियाँ

४ पाठशाला प्रबन्ध

५ शिक्षा-सिद्धान्त एवं शिक्षा-मनोविज्ञान

६ हिन्दी अथवा अंग्रेजी।

पंजाब राज्य (१९६९-७०) का पाठ्यक्रम।

ब—प्रायोगिक शिक्षण —

१ भाषा भूगोल कृषि एवं विज्ञान सम्बन्धी मौखिक तथा प्रायोगिक कार्य

२ पढ़ाने का अभ्यास—३० पाठ

३ शिल्प—निम्नलिखित समूहों में से एक —

प्रथम समूह—लकड़ी का काम मिट्टी का काम जिल्दसाजी बुनाई मुर्गी पालन एवं चित्रकला।

द्वितीय समूह—टोकरी बनाना चटाई बनाना ईंट बनाना साबुन बनाना स्याही बनाना पट्टे का काम कपड़े की छपाई प्राथमिक चिकित्सा एवं बालचर।

३ माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालय (Secondary Training Schools)

इन विद्यालयों में हाई स्कूल या इण्टरमीडिएट पास छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। पाठ्य-क्रम की अवधि किसी राज्य में १ वर्ष है और किसी में २ वर्ष। उत्तीर्ण छात्रों को विश्वविद्यालय या शिक्षा विभाग द्वारा सर्टिफिकेट या डिपलोमा (Diploma) प्रदान किया जाता है। इन प्रमाण पत्रों के नाम विभिन्न राज्यों में विभिन्न हैं। (हम नीचे की तालिका में इनका स्पष्टीकरण कर रहे हैं) इन विद्यालयों द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक मिडिल स्कूलों में अध्यापन का कार्य करते हैं।

कुछ राज्यों द्वारा प्रदान किये जाने वाले प्रमाण पत्र

स्थान का नाम	प्रशिक्षण-अवधि	प्रमाण-पत्र का नाम
बम्बई	१ वर्ष	T D
बम्बई		S T C
बड़ोदा		T D
गुजरात	„	T D
कर्नाटक		T D
पूना	„	T D
नागपुर	२ वर्ष	Dip T
सागर		Dip T
बिहार		C T
मद्रास		T S L.
मैसूर	१ वर्ष	T C
उड़ीसा	२ वर्ष	C T
उत्तर-प्रदेश		J T C
कलकत्ता	१ वर्ष	L T

विभिन्न राज्यों और विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए निर्धारित किए जाने वाले पाठ्यक्रम में अन्तर है पर उनकी रूप रेखा प्रायः एक-सी है। इन विद्यालयों के पाठ्य-क्रम साधारणतः निम्नलिखित होते हैं—

अ—सिद्धान्त—इसमें अधोलिखित ४ प्रश्न-पत्र होते हैं—

१ शिक्षा-मनोविज्ञान

२ शिक्षा सिद्धान्त

३ विद्यालय-संगठन एवं स्वास्थ्य विज्ञान

४ शिक्षण विधियाँ।

ब—अध्यापन-अभ्यास—प्रशिक्षण काल में।

४ प्रशिक्षण-महाविद्यालय (Training Colleges)

इन महाविद्यालयों में केवल स्नातक और परास्नातक ही प्रवेश पा सकते हैं। ये प्रशिक्षण-संस्थायें दो प्रकार की हैं—(१) बुनियादी (Basic) और (२) गैर-बुनियादी (Non Basic)। १९५६ ई० में बुनियादी महाविद्यालयों की संख्या ३[illegible] और गैर बुनियादी महाविद्यालयों की [illegible]०० थी। इनमें क्रमशः २,४९९ और १२,६८० छात्राध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। ये संस्थायें राज्यों के शिक्षा विभागों और विश्वविद्यालयों द्वारा चलाई जाती हैं। कुछ राज्यों में [illegible] शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालय—दोनों के द्वारा चलाये जाते हैं।

इन प्रशिक्षण महाविद्यालयों की प्रशिक्षण अवधि एक वर्ष की है और उत्तीर्ण छात्रों को बी० टी० बी० एड० एल० टी० या डिप० एड० की उपाधि प्रदान की जाती है।

(१) बुनियादी पाठ्यक्रम—देश के विभिन्न राज्यों में बुनियादी पाठ्य-क्रम में समानता नहीं है। अतः बुनियादी प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के शिक्षकों ने पाठ्य-क्रम में अनुरूपता स्थापित करने के लिए उसमें निम्नलिखित विषयों को स्थान देने का सुझाव दिया है[१]—

अ—सिद्धान्त—इसमें निम्नलिखित ५ प्रश्न पत्र होने चाहिए—

१ शिक्षा-दर्शन एवं शिक्षा-समाजशास्त्र

२ शिक्षा मनोविज्ञान

३ शिक्षा प्रशासन एव निरीक्षण, या प्रायोगिक (Experimental) शिक्षा एव शिक्षा अनुसंधान की विधि
४ शिक्षण की बुनियादी पद्धतियाँ
५ हस्त शिल्प की शिक्षा—सिद्धान्त एव अभ्यास (Practice)

ब—मुख्य बुनियादी शिल्प—निम्नांकित में से एक —

१ कृषि एव पशु पालन
२ कताई एव बुनाई
३ गत्ते का काम लकड़ी का काम और इनसे सम्बन्धित धातु का काम।

स—सहायक शिल्प—निम्नलिखित म से एक या अधिक :—

१ गृह निर्माण
२ कताई, यदि यह मुख्य शिल्प के रूप म न लिया गया हो
३ सब्जी की बागवानी यदि मुख्य शिल्प क रूप म कृषि न लिया गया हो
४ चमड़े का काम
५ मधु-मक्खी पालन
६ मिट्टी क बर्तन बनाने का काम।

द—प्रयोगात्मक काय (Practical Work)—छात्राध्यापकों क लिए निम्नलिखित कार्य अनिवाय बताए गए हैं —

१ कार्य-योजनाओं का निर्माण।
२ चुने हुए विषयों मे किसी कक्षा क लिय योग्यता परीक्षण (Attainment Tests) का निर्माण।
३ वैयक्तिक (Individual) और सामूहिक परीक्षणों (Group-Tests) का परिचालन।
४ पढ़ाय जाने वाल पाठों के शिक्षा-साधनों का निर्माण।
५ बुनियादी विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण विधियां और उपयुक्त सामग्री का निर्माण।

(२) उत्तर बुनियादी पाठ्य-क्रम—उत्तर-बुनियादी पाठ्य-क्रम अग्रांकित दो भागों म विभाजित है—

अ—सिद्धान्त—इसमें ५ प्रश्न-पत्र होते हैं—

१ शिक्षा सिद्धान्त
२ शिक्षा-मनोविज्ञान तथा बाल्यविज्ञान
३ विद्यालय-संगठन एवं स्वास्थ्य विज्ञान
४ अध्यापन विधियाँ
५ शिक्षा का इतिहास एवं शिक्षा की समस्यायें।

ब—अध्यापन-अभ्यास—छात्राध्यापक को निर्धारित संख्या में पाठ पढ़ाने होते हैं।

५ शिक्षिका प्रशिक्षण-संस्थायें (Training Institutions for Women Teachers)

महिला अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिये पृथक विद्यालयों का निर्माण किया गया है। इनका विवरण नीचे की तालिका में स्पष्ट हो जाता है।

शिक्षिका प्रशिक्षण-संस्थायें (१९४६-५०)[1]

संस्था	संस्थाओं की संख्या	छात्राध्यापिका-संख्या
बुनियादी कालेज	१	४०७
गैर-बुनियादी कालेज	१०	८१२४
बुनियादी स्कूल	१८६	१३१६४
गैर-बुनियादी स्कूल	१४२	१२५२०

६ विशेषज्ञ प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centres for Specialists)

इन प्रशिक्षण केन्द्रों को अधोलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है —

(१) शारीरिक शिक्षा (Physical Education)—शारीरिक शिक्षा के प्रशिक्षण केन्द्र दो प्रकार के हैं —(१) स्नातकों के लिये और (२) उपस्नातकों के लिये। दोनों में प्रशिक्षण अवधि १ वर्ष की है। [illegible] द्वारा विशेष ... ... १९४८-४९ में सम्पूर्ण

देश में शारीरिक शिक्षा के १५ कॉलेज और ३८ स्कूल थे जिनमें क्रमशः ७८५ एवं ७३ ६३६ पुरुष व स्त्रियाँ प्रशिक्षित किये जा रहे थे। अभी तक हमारे देश के किसी भी विश्वविद्यालय ने शारीरिक प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं की है।

केन्द्रीय सरकार के संरक्षण में ३० जून, १९५७ को ग्वालियर में 'लक्ष्मी बाई शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय' का शिलान्यास किया गया। इसमें प्रशिक्षण की अवधि ३ वर्ष की है और उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को डिग्री दी जाती है।

(२) ललित कलाओं की शिक्षा (Aesthetic Education)—अभी तक हमारे देश में ललित कलाओं का प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं की संख्या अति न्यून है। इनमें से प्रमुख संस्थाओं का उल्लेख नीचे की पंक्तियों में किया जा रहा है —

१ विश्व भारती शान्तिनिकेतन—संगीत, नृत्य एवं चित्रकला।
२ सर जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स बम्बई—चित्राङ्कन (Drawing)।
३ बड़ौदा विश्वविद्यालय—संगीत एवं चित्रकला।
४ कला क्षेत्र अड्यार (मद्रास)—नृत्य।
५ टीचर्स कॉलेज ऑफ म्यूजिक मद्रास—संगीत।
६ गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ आर्ट्स लखनऊ—कला।
७ डिपार्टमेन्ट ऑफ आर्ट्स ऐजूकेशन जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली—कला एवं हस्तशिल्प।

(३) गृह विज्ञान (Home Science)—गृह विज्ञान की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। माध्यमिक विद्यालयों में अनेकों छात्रायें इस विषय का चयन करने लगी हैं। अतः इन विद्यालयों के लिये अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था कई स्थानों पर कर दी गई है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

१ लेडी इरविन कॉलेज दिल्ली
२ बड़ौदा विश्वविद्यालय
३ एस० एन० डी० टी० वीमेन्स यूनिवर्सिटी बम्बई
४ डामेस्टिक साइन्स ट्रेनिंग कॉलेज हैदराबाद
५ गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ होम साइन्स फॉर वीमन इलाहाबाद।

---

1 *Review of Education in India (1947-61)* pp 958 & 971

समस्यायें और उनके समाधान

(Problems and Their Solution)

विषय-प्रवेश

डा० एस० एन० मुकर्जी का कथन है¹ "स्वातन्त्र्योत्तरकाल में शिक्षक प्रशिक्षण का यथेष्ट विस्तार हुआ है तथापि वर्तमान स्थिति अभी सन्तोषप्रद नहीं है। शिक्षा की प्रगति के साथ साथ अध्यापन के नए पेचीदा प्रश्न खड़े हो गए हैं।" ऐसा क्यों है? इसका उत्तर डा० सैयदैन के इन शब्दों में दिया जा सकता है — "अन्य महान् कलाओं की तरह ही जिनकी सहायता से मानव जाति ने अपनी सांस्कृतिक तथा बौद्धिक निधि का संचय किया है शिक्षण कला के लिए भी जीवन भर तैयारी करने की ज़रूरत होती है। जिस दिन से अध्यापक अपना काम शुरू करता है उस दिन से लेकर जिस दिन तक वह अध्यापन का कार्य करता रहे इस प्रक्रिया का क्रम भंग नहीं होना चाहिए। भावी अध्यापक के किसी व्यावसायिक संस्था में प्रवेश करने से पहले उसे इसके लिए तैयार करने में कालिजों तथा विश्वविद्यालयों पर भी बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी होती है। इसके बाद प्रशिक्षण कालिजों को उसे न केवल प्राविधिक साधन प्रदान करने पड़ते हैं बल्कि उसे एक उचित दृष्टिकोण तथा उचित प्रेरणा भी प्रदान करना पड़ता है।"² खेद का विषय है कि कालिज, विश्वविद्यालय और प्रशिक्षण संस्थायें अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा नहीं कर रही हैं। इसीलिए

---

1. "The present position in relation to teacher education is by no means satisfactory in spite of its rapid progress during recent years. Numerous problems have arisen with this development." —S. N. Mukerji, *Education in India Today and Tomorrow*, pp. 289 & 290.
2. "Like the other great Arts through which mankind has built up its cultural and intellectual heritage, the Art of Education also requires a life-long preparation. And this process should be continuous, unbroken from the first day of work to the end of the teaching career. The colleges and the universities have a part to play in it before the prospective teacher enters any professional institution. The training colleges have then to provide not only technical equipment but a proper orientation and outlook when the teacher emerges from there." —K. G. Saiyidain, *Problems of Education in India*, p. 379.

आज शिक्षक प्रशिक्षण में बहुरंगी समस्यायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। अगली पंक्तियों में इन्हीं का अध्ययन करना हमारा ध्येय है —

१ समस्या—प्रशिक्षण एवं स्कूल कार्य की सम्बन्ध विहीनता (Training not related to School Work)

अध्यापक प्रशिक्षण की एक प्रमुख समस्या यह है कि प्रशिक्षण विद्यालयों द्वारा अध्यापकों को जो प्रशिक्षण दिया जाता है उसका स्कूल में काम करने की वास्तविक परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वहाँ की परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि अध्यापक अपने शैक्षणिक सिद्धान्तों को व्यवहार में कार्यान्वित करना असम्भव पाते हैं। के०जी० सयदन के शब्दों में "उनका सिद्धान्तों का ज्ञान और स्कूल की कक्षा में उनका व्यवहार एक दूसरे को समृद्ध बनाने और एक दूसरे में घुलमिल जाने के बजाय दो बिल्कुल अलग अलग चीजें बने रहते हैं।"[1] विद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारम्भ करने के कुछ ही समय बाद वे शिक्षण की परम्परागत तथा प्रेरणाहीन विधियों को अपना लेते हैं और उनका शिक्षा सिद्धान्तों का समस्त ज्ञान जो अत्यधिक परिश्रम से उन्हें प्रदान किया गया था और जिसे अत्यधिक परिश्रम से उन्होंने प्राप्त किया था बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है।

समाधान—सिद्धान्त एवं व्यवहार में संयोग (No Divorce between Theory and Practice)

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर कहा गया है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। के० जी० सयदन ने उचित ही लिखा है — सिद्धान्त का व्यवहार के साथ कोई सम्बन्ध न होना प्रशिक्षण कॉलेजों की पढ़ाई का सबसे बड़ा दोष है और जब तक इसे दूर नहीं किया जायगा तब तक इस पढ़ाई के प्रभावशाली होने में शंका ही रहेगी।[2] अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सिद्धान्त एवं व्यवहार में सम्बन्ध क्यों नहीं है और इसको किस प्रकार स्थापित किया जाय? कारण खोजना कठिन नहीं है। ऐसे ट्रेनिंग कॉलेज बहुत ही कम हैं जिनसे उचित प्रकार के प्रदर्शन विद्यालय' (Demonstration Schools) सम्बद्ध हैं। फलत छात्राध्यापक अपने विद्यार्थियों के हित के लिये

---

1 'Their knowled e of theory and their school room practice remain confined in two water tight comparments, instead of mutually enriching and interpreting each other" —K G Saiyidain op cit p 312

2 "The divorce of theory from practice is one of the most serious defects of training college education and unless it is removed its effectiveness will continue to be very questionable indeed".—Ibid p 313

शिक्षा सिद्धान्तों और विधियों का निर्धारित नहीं कर पाते हैं। उनको इस बात का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता है कि वे अपने सिद्धान्तों और प्रणालियों को व्यवहार में परख सकें और फलस्वरूप उनके शिक्षण में जीवन तथा वास्तविकता के उन गुणों का अभाव होता है जो केवल सफल व्यावहारिक अनुभव से ही प्राप्त हो सकता है। परिणाम यह होता है कि उनके विचार अस्पष्ट रहते हैं और वे स्कूल की पढ़ाई की निश्चित समस्याओं के रूप में उनकी कल्पना करने में असमर्थ रहते हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि प्रायः उनके प्रोफेसरों में भी चीज़ों को स्पष्ट रूप से देखने की क्षमता नहीं होती है क्योंकि उनमें यह गुण तभी उत्पन्न हो सकता है, जब उन्हें अपने सिद्धान्तों को व्यवहार की कसौटी पर परखने का अवसर प्राप्त हो और वे यह मालूम कर लें कि इन सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है या नहीं।

समस्या का समाधान बताते हुए के० जी० सैयदेन ने लिखा है : "व्यवहार तथा सिद्धान्त—दोनों ही को बढ़ती विकासशील सत्ता के रूप में देखी जानी चाहिए—सिद्धान्त व्यवहार का पथ आलोकित करे और व्यवहार सिद्धान्तों में निरन्तर सुधार करे।"[1] अतः यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज के अधीन समस्त आवश्यक साधनों से युक्त एक 'प्रदर्शन स्कूल' हो जो प्रयोगात्मक (Experimental) पद्धति के अनुसार चलाया जाय और जिसमें छात्राध्यापकों को बताई गई विधियों और सिद्धान्तों के अनुसार काम किया जाय। यदि छात्राध्यापक इन विधियों को व्यवहार में परख लेंगे और यदि वे इन सिद्धान्तों के अनुसार 'प्रदर्शन स्कूल' को चलाने में सहायता देंगे तो यह बात सम्भव हो सकेगी कि वे किसी विद्यालय में अध्यापन का कार्य करते समय सिद्धान्त और व्यवहार के अपने ज्ञान के बीच सम्बन्ध क्रिया प्रतिक्रिया स्थापित करने में सफल हों।

२. समस्या—सिद्धान्त पर अनुचित बल (Undue Emphasis on Theory)

शिक्षक-प्रशिक्षण की एक समस्या यह है कि प्रशिक्षण-काल में व्यवहार (Practice) की अपेक्षा सिद्धान्त (Theory) पर आवश्यक बल दिया जाता है। छात्राध्यापकों को अनेकों विषयों का और कुछ न कुछ अध्ययन करना पड़ता है। इसकी अति कटु आलोचना की गई है। कारण यह है कि जिन विषयों के

1 "Practice and theory must both be visualised as growing entities—theory illuminating practice, practice constantly modifying theory."—K. G. Saiyidain, op. cit. p. 314

अध्ययन में वे दिन रात जुटे रहते हैं उनमें से अधिकांश वास्तविक शिक्षण कार्य में उनके लिये किंचित् मात्र भी लाभप्रद सिद्ध नहीं होते हैं। वे उनका अध्ययन केवल डिप्लोमा या डिग्री प्राप्त करने के लिये करते हैं। वे तथा उनके प्रोफेसर इस बात को जानते हैं। इसके विपरीत उनको व्यवहार के लिए बहुत कम समय दिया जाता है। अपने प्रशिक्षण-काल में वे लगभग ५० पाठ पढ़ाते हैं। जैसा कि सर्वविदित है प्रायः प्रत्येक अध्यापक को विद्यालय में प्रतिदिन ७ या ८ पाठ पढ़ाने पड़ते हैं। इस हिसाब से उनके ५० पाठ एक सप्ताह के लिये हुए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उनको अपने प्रशिक्षण-काल में कक्षा में पढ़ाने के लिये केवल एक सप्ताह का समय मिलता है जब कि सैद्धान्तिक विषयों को वे जुलाई से अप्रैल तक पढ़ते रहते हैं। बात कितनी हास्यप्रद प्रतीत होती है कितनी विडम्बना पूर्ण। निरर्थक विषयों के लिए समय और शक्ति का इतना क्षय और लाभप्रद कक्षा शिक्षण-कार्य के लिए इतनी विरक्ति !

समाधान सिद्धान्त-सम्बन्धी पाठ्य-क्रम में कमी (Curtailment of Theoretical Courses)

उपरोक्त समस्या का समाधान इसी दशा में हो सकता है जब सिद्धान्त सम्बन्धी पाठ्य-क्रम को कम कर दिया जाए। छात्राध्यापकों को केवल वे ही विषय पढ़ाये जायें जो उनके अध्यापन जीवन में वस्तुतः लाभप्रद हों और जिनका उपयोग वे जीवन भर करते रहें। इस बात में तो कोई बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती है कि वे अपनी परीक्षा को समाप्त करने के बाद अपनी प्रशिक्षण-पुस्तकों और उनसे प्राप्त ज्ञान को अलविदा कह दें। पाठ्य क्रम को कम करने से पढ़ाई के घंटे स्वतः कम हो जायेंगे। इस बचे हुए समय को शिक्षण-कार्य में व्यय किया जाय। वांछनीय तो यह रहेगा कि वे सम्पूर्ण प्रशिक्षण-काल में कम से कम ३ या ४ कक्षा में शिक्षण कार्य करें जिससे वे अपने व्यवसाय के लिए पूर्ण रूप से दक्ष हो जायें।

३ समस्या—मानवीय पहलू की उपेक्षा (Neglect of Human Aspect)

वर्तमान प्रशिक्षण की एक अति गम्भीर तथा ध्यानापेक्षी समस्या यह है कि दीक्षा-काल में मानवीय पहलू की उपेक्षा की जाती है और प्राविधिक (Technical) पहलू पर ध्यान केन्द्रित रखा जाता है। प्रशिक्षण के दौरान में अध्यापन की विधियों और तकनीकों पर बल देते हैं। प्रवृत्ति इतनी अधिक रहती है कि छात्राध्यापकों को शिक्षा के उद्देश्यों प्रयोजनों और मान्यताओं (Aims Purposes and Values) से सम्बन्धित समस्याओं की पृष्ठभूमि में स्वतन्त्र आलोचनात्मक बुद्धि का उपयोग करने का कोई अवसर उपलब्ध नहीं।

होता है। वे वृक्षों को तो देखते हैं पर उस वन को नहीं देख पाते हैं जहाँ वे उगे हुए हैं। वे इस बात की कल्पना नहीं कर पाते हैं कि शिक्षा एक विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन-व्यवस्था की सीमाओं के अन्दर एक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रिया है। अदूरदर्शिता के कारण छोटी-छोटी ब्यौरे की बातों और प्राविधिक आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित रखने के कारण समाज के साथ स्कूल का सम्बन्ध और उसकी मोटी-मोटी समस्यायें और समस्त दृष्टि से ओझल हो गए हैं।'[1]

समाधान—प्रशिक्षण केन्द्रों के मानदण्डों में संशोधन (Revision in the Values of Training Centres)

प्रशिक्षण-काल में मानवीय पहलू की उपेक्षा तो की जाती है पर प्रशिक्षण संस्थायें अपने को इस आरोप का भागी नहीं समझती हैं। उनका कथन है कि उन्हें प्रशिक्षण के लिये इतना कम समय दिया जाता है कि वे मानवीय-पहलू को उचित सम्मान स्थान दें तो फिर भी छात्र को असमर्थ पाता है। दलील तो सुन्दर है पर है कितनी निराधार! पर यदि हम इस बहाने का व्यवहार करके प्रशिक्षण विद्यालयों में वर्तमान स्थिति को बनाये रखते हैं तो यह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण होगा कि हम पुराने मानदण्डों में विश्वास करते हैं और उनमें सुधार करने का प्रयास नहीं करते हैं। इसका केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि प्रशिक्षण-संस्थायें अपने मानदण्डों में आमूल परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दें। अपने विचार की पुष्टि में हम के० जी० सैयदैन के अधोलिखित शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं — 'अध्यापकों के प्रशिक्षण [illegible] मानदण्डों में परिवर्तन कर और कुएँ में रहने वाले मनुष्य की उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बचें जो अपने चारों ओर के [illegible] के कारण दुनिया नहीं देख सकता था [illegible] उसकी दृष्टि उसके [illegible] तक सीमित थी।

---

1. They have failed to visualise education as a social and cultural activity carried on within the pattern of a characteristic social and cultural life. The relation of the school to society and its basic problems and issues have been obscured by concentration on petty [illegible] details and technical requirements.—K. G. Saiyidain: [illegible] p. 31[illegible]

व्यावहारिक कार्य की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया जाता है और इस कमी को दूर किया जाना चाहिये।"[1]

४ समस्या—स्वतन्त्रता रहित वातावरण (Unfree Environment)

प्रशिक्षण-काल में छात्राध्यापक जिस वातावरण में काम करते हैं वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्रतारहित है। प्रशिक्षण-संस्थाओं में 'नवीन शिक्षा' (New Education) और उसकी बहुरंगी सरचना में सन्निहित अनेक विचारों और आन्दोलनों की बहुत गरम चर्चा है यथा—स्वतन्त्रता, पहलकदमी (Initiative), नेतृत्व, सामुदायिक जीवन, सामाजिक प्रेरणा इत्यादि। छात्राध्यापकों से आशा की जाती है कि वे इन विचारों के सार को किसी प्रक्रिया द्वारा पुस्तकों से ग्रहण कर लें और फिर उनको अपने स्कूलों में वास्तविकता का रूप प्रदान करें। आश्चर्य इस बात का है कि ट्रेनिंग कॉलेज ऐसी बात की आशा क्या करते हैं जब कि वे अपने छात्राध्यापकों को उन विचारों को करके सीखने का अवसर नहीं प्रदान करते हैं। कटु सत्य तो यह है कि प्रशिक्षण विद्यालय स्वयं ही करके सीखने (Learning by Doing) के अपने प्रिय सिद्धान्त को कार्य रूप में पालन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। के० जी० सैयदैन के शब्दों में, "स्वतन्त्रता या आत्म क्रिया या सहकारी कार्य जैसी किसी भी महत्त्वपूर्ण तथा गर्भित परिकल्पना के पूरे महत्त्व को उस समय तक नहीं समझा जा सकता है जब तक कि इन परिकल्पनाओं में निर्दिष्ट परिस्थितियों में काम करने का वास्तविक अनुभव न प्राप्त किया जाय।"[2]

समाधान—स्वतन्त्र वातावरण (Free Environment)

उपरोक्त समस्या का समाधान करने के लिए यह आवश्यक है कि ट्रेनिंग संस्थाओं को कठोर नियमों व बन्धनों से और छात्राध्यापकों को उनके जीवन एवं उनकी गतिविधियों पर लग जाने वाले नियन्त्रण से मुक्त किया जाय। साथ ही ट्रेनिंग

1 "It is essential for the training colleges to revise their values and avoid the misfortune of the man in the cave who could see nothing of the fascinating vista around because his vision was bounded by the four walls of his prison. There is an inadequate appreciation of the social and cultural back-ground of educational work which must be set right."—K G Saiyidain op cit p 319

2 "It is impossible to realize the full significance of any important and pregnant conception like freedom or self activity or cooperative work without an actual experience of working under conditions which they postulate."—K G Saiyidain op cit, pp 320-321

कालिजों को ऐसे स्वतन्त्र एवं सक्रिय समाजों (Active Communities) के रूप में संगठित किया जाय जिनमें छात्राध्यापक उन्हीं परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं के अधीन कार्य कर सकें जिन्हें नवभारत अपने नये एवं प्रगतिशील स्कूलों में स्थापित करना चाहता है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो ट्रेनिंग कालिजों से निकलने वाले छात्राध्यापकों का कोई हित नहीं होगा। इस पाने वाले तन्त्रात्मक वातावरण में प्रशिक्षण प्राप्त करके वे उस दूषित प्रक्रिया को जारी रखेंगे, जिसमें से होकर वे स्वयं गुजरे हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने प्रशिक्षण की गलत धारणाओं को अपने स्कूलों में भी चलाते रहेंगे।

हर्ष का विषय यह है कि बुनियादी ट्रेनिंग कालिजों को सामुदायिक केन्द्रों (Community Centres) के रूप में संगठित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है और परस्नातक प्रशिक्षण के कालिजों में भी पूर्व से अधिक स्वतन्त्रता छात्राध्यापकों को दी जा रही है। पर इस आन्दोलन को और अधिक रूप में प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अभी बहुत परिश्रम किया जाना है।

५ समस्या—प्रशिक्षण के लिये व्यक्तियों का चुनाव (Selection of Candidates for Training)

अध्यापक-प्रशिक्षण सम्बन्धी एक समस्या प्रशिक्षण के लिए उचित व्यक्तियों के चुनाव की है। कुछ समय पूर्व जब व्यक्तियों में अध्यापक बनने की इच्छा प्रबल नहीं थी और प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या माँग से अधिक नहीं थी तब यदि इतना उग्र एवं महत्त्वपूर्ण नहीं थी जितनी कि आज है। इस समय समस्या के दो पहलू हैं। एक ओर तो ट्रेनिंग कालिजों में प्रवेश पाने के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या अत्यधिक है। दूसरी ओर सभी प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए नौकरियाँ नहीं हैं। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि केवल उचित व्यक्तियों को ही प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए चुना जाय जिनमें अध्यापन और अध्यापन-वृत्ति—दोनों का सम्मान हो। अब यह स्पष्ट नहीं है कि ट्रेनिंग कालिज किस प्रकार की योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रवेश दें और इस सम्बन्ध में और उनकी दृष्टि में क्या अनुभव हो सकता।

समाधान—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

उपर्युक्त समस्या का समाधान करने के लिए डा० श्री … ने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं[1] —

---

1 डा० श्री० … शिक्षा की पुनर्रचना पृ० … ।

(१) प्रत्येक राज्य के ट्रेनिंग कॉलेज शिक्षा विभाग की सहायता से अधिक से अधिक पाँच वर्ष में एक बार अपने राज्य का सर्वेक्षण करके यह मालूम करें कि राज्य में स्थित समस्त स्कूलों को कितने शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की आवश्यकता होगी और इसी सम्भावित माँग के आधार पर छात्रों को भरती करने की योजना बनाई जाय।

(२) पुराने तथा अनुभवी अध्यापकों के लिए जो किसी कारणवश ट्रेनिंग कॉलेजों में प्रवेश नहीं ले सकते हैं अल्पकालीन पाठ्य-क्रमों (Short Term Cousres) की व्यवस्था की जाय। प्रशिक्षण प्राप्त करके ये अध्यापक अपनी व्यावसायिक कार्य कुशलता में वृद्धि करेंगे अपने पद को उन्नत करेंगे और उनकी नौकरी भी सुरक्षित रहेगी।

(३) उपरोक्त ढंग से पुराने एवं अनुभवी अध्यापकों की प्रशिक्षण-व्यवस्था के उपरान्त केवल उन व्यक्तियों के प्रशिक्षण का प्रश्न रह जाता है जो किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ट्रेनिंग कॉलेजों में प्रवेश करना चाहते हैं। इनमें से उन्हीं व्यक्तियों का चुनाव किया जाय, जो होनहार तथा योग्य अध्यापक बन सकें।

(४) नये छात्रों को चुनने के जो मोटे मोटे बने बनाये तरीके इस्तेमाल किये जाते हैं उनकी अपेक्षा कोई अधिक कारगर एवं पर्याप्त उपाय खोजा जाय। ये उपाय ऐसे हों जिनसे अध्यापक बनने की इच्छा रखने वालों के मानसिक एवं नैतिक गुणों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके।

(५) अध्यापन-कार्य करने के इच्छुक व्यक्ति विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त करते समय अपने भावी व्यवसाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखें ताकि ऐसा न हो कि वे नाना प्रकार का फुटकर ज्ञान अर्जित करके ट्रेनिंग कॉलेजों में प्रवेश करें ऐसे ज्ञान का अर्जन जिसका उनके भावी व्यवसाय से कोई सम्बन्ध न हो।

(६) डिग्री की परीक्षा के लिये शिक्षण शास्त्र को एक वैकल्पिक विषय बना दिया जाय जैसा कि कुछ विश्वविद्यालयों में है।

६ समस्या—बुनियादी एवं गैर-बुनियादी पाठ्य-क्रमों की विभिन्नता (Difference between the Basic and Non-Basic Courses)

इस समय हमारे देश में दो प्रकार के प्रशिक्षण विद्यालय काम कर रहे हैं—बुनियादी और गैर-बुनियादी। दोनों के पाठ्य-क्रम विभिन्न हैं। इस प्रकार अध्यापक प्रशिक्षण में दो धाराएँ भिन्न भिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं। बुनियादी पद्धति में क्रिया-विधि (Activity Method) सामुदायिक जीवन

(Community Life) और अभ्यास (Practice) पर बल दिया जाता है। इसका सबसे बड़ा पाठ्यक्रम निर्बल है। इसमें विस्तार और सुविधा। पद्धति में सैद्धान्तिक ज्ञान और शिक्षण विधियों पर बल दिया जाता है। पर इसमें अभ्यास का स्थान गौण है। इस प्रकार दोनों पद्धतियों में कुछ न कुछ निर्बलताएँ विद्यमान हैं।

समाधान—बुनियादी एवं गैर बुनियादी पाठ्यक्रमों का एकीकरण
(Integration of Basic and Non Basic Courses)

आवश्यकता इस बात की है कि बुनियादी और गैर-बुनियादी पद्धतियों का इस प्रकार सम्मिश्रण किया जाय कि उनके दोष दूर हो जायँ और एक नवीन तथा शक्तिशाली पद्धति का निर्माण हो जाय। इससे शिक्षक प्रशिक्षण का महान् हित होगा। इसी बात का ध्यान में रखकर 'अखिल भारतीय प्रशिक्षण महाविद्यालय सम्मेलन' (All India Conference of Training Colleges) ने दोनों पद्धतियों के एकीकरण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ सामान्य प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम के सैद्धान्तिक भाग को कम किया जाय और उसमें आवश्यक सुधार किया जाय।

२ अभ्यास कार्य (Practical Work) को अधिक महत्त्व दिया जाय और उसमें इस प्रकार परिवर्तन किया जाय कि वह सामुदायिक जीवन शिल्प और समवाय शिक्षा (Correlated Teaching) का प्रतिरूप हो।

उपसंहार

अध्यापक प्रशिक्षण की जिन समस्याओं का हमने वर्णन किया है वे सिद्ध करती हैं कि हमारे देश में शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल रहा है और इसका उत्तरदायित्व सरकार पर है। पर ये समस्याएँ ऐसी नहीं हैं जिनका समाधान न किया जा सके। आवश्यकता केवल इस बात की है कि देश के शिक्षाविद् सरकार को इस बात के लिए बाध्य करें कि अध्यापक प्रशिक्षण में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया जाय। यदि शिक्षक-प्रशिक्षण को दोष-मुक्त नहीं किया गया तो हमारा शैक्षिक पुनरुत्थान का स्वप्न स्वप्न ही रह जायगा और देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। शैक्षिक पुनरुत्थान में अध्यापक की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है पर वह अपने दायित्व को तभी निभा सकता है—जब उसको उचित सुविधाएँ और कुशल प्रशिक्षण दिया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Trace briefly the history of Teacher Education during the British period

2. What provision has been made for the training of teachers in new India ?

3 Give a brief account of the various types of Teacher Education Institutions in India at present

4 The present position in relation to Teacher Education is by no means satisfactory in spite of its rapid progress during recent years Discuss

5 What, in your opinion are the problems in the training of teachers in India ? What measures can you suggest to solve them ?

३०

अपव्यय एवं अवरोधन
(Wastage and Stagnation)

विषय प्रवेश

भारत में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्याएँ शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर इतनी व्यापक सिद्ध हो गई हैं कि वर्तमान और निकट भविष्य में इन समस्याओं का पूर्ण निराकरण असम्भवप्राय स्वीकार किया गया है। भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में सक्रिय पग उठा रही है, माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन कर रही है और विश्वविद्यालय शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रशंसनीय परिवर्तन कर रही है परन्तु फिर भी इन समस्याओं की विकट प्रकृति के कारण सरकार शिक्षा के किसी भी स्तर को ऊँचा करने में निराशा का अनुभव कर रही है। इन समस्याओं का क्या रूप है और इनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है—यह प्रस्तुत पाठ का प्रमुख विषय-वस्तु है।

अपव्यय का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition of Wastage)

शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम की एक निश्चित अवधि है। उदाहरणार्थ- प्राथमिक शिक्षा की अवधि ५ या ४ वर्ष, माध्यमिक शिक्षा की ६ वर्ष

111

(हाई स्कूल परीक्षा पास करने के लिये) और विश्वविद्यालय शिक्षा की २ वर्ष (जब डिग्री कोर्स २ वर्ष का है)। जो छात्र किसी स्तर पर शिक्षा प्राप्त करता है उससे यह आशा की जाती है कि वह निश्चित अवधि में अपनी शिक्षा समाप्त कर लेगा। परन्तु व्यावहारिक रूप में हमें ऐसे अनेकों छात्र मिलते हैं जो अति उत्साह से विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं किन्तु कुछ समय के पश्चात् शिक्षा संस्था से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं। इस प्रकार के छात्र अपने पाठ्य-क्रम को समाप्त नहीं करते हैं। अतः इन छात्रों पर समय धन और शक्ति का अपव्यय होता है। इस प्रकार से अपव्यय (Wastage) से हमारा अभिप्राय है उन विद्यार्थियों पर व्यय किया हुआ समय धन और शक्ति जो किसी न किसी कारणवश प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण करने से पूर्व ही अपना अध्ययन स्थगित कर देते हैं।

अपव्यय का जो अर्थ हमने ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट किया है उसके आधार पर हम अपव्यय की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं :— शिक्षा में अपव्यय शब्द का सर्वमान्य अर्थ है—उन छात्रों पर समय धन और शक्ति का अपव्यय जो अपने पाठ्य-क्रम को सफलता पूर्वक पूर्ण नहीं करते हैं।[1]

अवरोधन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition of Stagnation)

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्य-क्रम की एक निश्चित अवधि होती है। उस स्तर पर अध्ययन करने वाले छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे उस अवधि में अपना पाठ्य क्रम समाप्त करके परीक्षा में उत्तीर्ण हो जायेंगे। पर यह सामान्य अनुभव की बात है कि अनेकों छात्र एक या एक से अधिक कक्षाओं में एक या इससे भी अधिक वर्ष व्यतीत करते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वे प्रत्येक कक्षा में प्रतिवर्ष उत्तीर्ण नहीं होते हैं। इस प्रकार वे कक्षा में स्थिर (Stagnate) हो जाते हैं। इसी क्रिया को 'स्थिरता' अथवा अवरोधन (Stagnation) की संज्ञा दी गई है। अतः हम कह सकते हैं कि अवरोधन से हमारा अभिप्राय है—एक छात्र का एक कक्षा में एक से अधिक वर्ष रोका जाना।

1 "The most popular use of the word wastage in education means the waste of time effort and money after those students who do not successfully complete the course of study undertaken by them."—Johri & Pathak

अवरोधन के अर्थ का जो स्पष्टीकरण हम कर चुके हैं उसके आधार पर हम अवरोधन की परिभाषा अग्रलिखित शब्दों में कर सकते हैं — शिक्षा में अवरोधन शब्द का सामान्य अर्थ है—एक छात्र का उसकी असंतोषजनक प्रगति के कारण एक कक्षा में एक से अधिक वर्ष रोका जाना।[1] Hartog Committee ने 'अवरोधन' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है — "अवरोधन से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का एक निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।"[2]

अपव्यय एवं अवरोधन—क्षय के दो पहलू
(Wastage & Stagnation Two Aspects of Waste)

अपव्यय एवं अवरोधन को क्षय के दो पहलू कहा जा सकता है। जो छात्र अपना पाठ्य-क्रम पूर्ण करने से पूर्व सरस्वती मन्दिर की आराधना से मुख मोड़ लेते हैं उन पर समय, धन और शक्ति का व्यय व्यर्थ में अपव्यय होता है। पर जो छात्र एक निश्चित अवधि में अपना पाठ्य-क्रम पूर्ण करके परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो जाते हैं उन पर भी किसी अंश तक समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है। अन्तर केवल इतना है कि यह अपव्यय प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अवरोधन में अपव्यय सदैव निहित रहता है।

वास्तविकता यह है एक निम्न कक्षा से उच्च कक्षा में छात्र-संख्या में क्षय अथवा न्यूनता होती चली जाती है। इस न्यूनता अथवा ह्रास के दो शक्तिशाली कारण हैं— 'अपव्यय' और 'अवरोधन'। इन दोनों कारणों में कौन-सा कारण अधिक शक्तिशाली है इस सम्बन्ध में Hartog Committee के ये विचार उल्लेखनीय हैं — "छात्र-संख्या में यह ह्रास मुख्यतः दो कारणों के फलस्वरूप होता है जिन्हें हम अपव्यय तथा अवरोधन की संज्ञा देते हैं। उपलब्ध आँकड़ों से यह स्पष्ट नहीं होता है कि एक कक्षा से दूसरी कक्षा में छात्र-संख्या में होने वाला यह अन्तिम ह्रास किस सीमा तक अपव्यय के कारण

---

1. "The most popular use of the word stagnation in education means the retention of a student in a class for more than a year on account of his unsatisfactory progress."
—John & Pathak

2. "By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year."
—Report of the Hartog Committee, P. 4

होता है और कितना 'अवरोधन' के कारण। पर हमारे अन्वेषणों से व्यक्त होता है कि अपव्यय की अपेक्षा 'अवरोधन' कम शक्तिशाली कारण है।'[1]

प्राथमिक शिक्षा में 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन'

प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन के प्रति सबसे पहिले १६२६ में Hartog Committee का ध्यान आकर्षित हुआ। अपव्यय' के अर्थ को स्पष्ट करते हुए 'हर्टाग समिति' ने अपनी रिपोर्ट में लिखा—"अपव्यय से हमारा अभिप्राय है—प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बच्चा को विद्यालय की किसी भी कक्षा से हटा लेना।'[2] समिति ने इसको अपव्यय' इसलिए कहा क्योंकि जो शिक्षा इस प्रकार के छात्र प्राप्त करते हैं वह उनको स्थायी रूप से साक्षर बनाने में असफल होती है। इसकी पुष्टि में हम हर्टाग समिति के इन शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं— जब तक प्राथमिक शिक्षा कम से कम साक्षरता न प्रदान कर दे वह व्यर्थ है। सामान्यतः कोई भी बच्चा जिसने कम से कम ४ वर्ष का प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम पूर्ण नहीं किया है स्थायी रूप से साक्षरता प्राप्त नहीं कर सकता है।'[3]

'अवरोधन' के अर्थ को समिति ने अग्रलिखित शब्दों में व्यक्त किया— अवरोधन से हमारा अभिप्राय है—एक बच्चे का एक निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।'[4]

प्राथमिक शिक्षा में कितना अपव्यय और अवरोधन है इसका अनुमान अग्रांकित तालिकाओं से सहज ही लगाया जा सकता है —

---

1 The diminution is mainly due to two causes, which we shall term 'wastage and stagnation The figures taken by themselves do not indicate how far the excessive diminution in numbers from class to class is due to 'wastage and how far is due to stagnation but our enquiries show that by far the more important factor is wastage "—*Report of the Hertog Committee* p 47

2. By wastage we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course "—*Ibid* p 47

3 "Primary education is ineffective unless is at least produces literacy On the average no child who has not completed primary course of at least four years will become permanently literate "—*Ibid* p 48

4 "By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year —*Ibid* p 47

तालिका ६[1]

राज्य	बालकों की संख्या कक्षा १ (१९४४-४५)	बालकों की संख्या कक्षा ४ (१९४७-४८)	स्थायी साक्षरता प्रतिशत (१९४७-४८)	अपव्यय प्रतिशत १९४७-४८
आसाम	१३१ ८७६	५५, ८७५	४५ ८	५४ २
बंगाल	८३२ ८५५	१४३ [illegible]२५	१७ २	८२ ८
बिहार	१६४ २०४	११२ ६७३	४८ ७	४७ ०
बम्बई	२७१ ३३०	१७१ ३४१	६[illegible] १	३६ ९
मध्य प्रदेश	११६ ०७३	७९ ५१६	५१ २	४९ १
मद्रास	९९० ७१४	७१९, १५८	७४ ६	२५ ४
उड़ीसा	५९, ३५२	२० ७३२	५ ०	६५ [illegible]
पंजाब	१४९ ३१०	६ ७४१	४[illegible] ४	५७ ६
उत्तर प्रदेश	२०१, १०४	१६६ ६२[illegible]	५५ ३	४८ ७
अजमेर मारवाड़	९ ९०४	५४८	३५ ८	६४ २
कुर्ग	३ ७५२	२ १४२	५७ १	४२ ९
दिल्ली	१७ ७६७	७ ८५८	४९ [illegible]	५० ७
कुल संख्या	३ १०८ ४९७	१, ५९७ १७४	[illegible]० ४	४९ ६

तालिका ७[2]

कक्षा	परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों की औसत प्रतिशत संख्या	
	१९२७—२८ से १९३५—३६	१९३६—३७ से १९४४—४५
१	४८ ०२	५१ ८१
२	६६ ०९	६८ ६१
३	६५ ४५	६८ ८७
४	६७ ३०	७० १३
५	५५ ४७	६५ ७०

माध्यमिक शिक्षा में 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन'

माध्यमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन की ओर भी Hartog Committee का ध्यान आकर्षित हुआ। प्राथमिक स्तर के समान इस स्तर पर भी अपव्यय तथा अवरोधन शिक्षा के क्षेत्र को बर्बाद कि

---

1 Review of Education in India pp 905-1007

2 K G Saiyidain, Compulsory Education in India p 58

हास रहे हैं। इनके कारण कितनी भीषण क्षति हो रहा है इसका आभास नीचे की तालिका से हो जाता है —

हाई स्कूल एवं उसके समान परीक्षाओं के परीक्षा फल[1]

वर्ष	परीक्षा देने वाले छात्र	उत्तीर्ण होने वाले छात्र	उत्तीर्ण छात्रों का प्रतिशत
१९५१-५२	५८३,४७०	२६१,०५९	४४ ७
१९५२-५३	७२४ ७९९	३३४ ७६०	४६ २
१९५३-५४	८१८ १२०	३९७ ००४	४८ ५
१९५४-५५	८३० ००१	४०० ०१४	४८ २
१९५५-५६	९२० ०२६	४२९ ४९४	४६ ७

विश्वविद्यालय शिक्षा में 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन'

विश्वविद्यालय शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय एवं अवरोधन है। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है 'सार्वजनिक धन का प्रतिवर्ष भयानक अपव्यय हो रहा है परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की गम्भीर हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है जितनी कि छात्रों और उनके अभिभावकों के समय, शक्ति और धन के नाश तथा उनकी आशाओं और अभिलाषाओं पर भयंकर कुठाराघात के प्रति।'[2] विश्वविद्यालय शिक्षा में होने वाले 'अपव्यय' एवं अवरोधन का अनुमान निम्नांकित तालिका से लगाया जा सकता है —

1. *Review of Education in India* pp 905-1007
2. "A deplorable wastage of public funds goes on year after year but what is worse there is an unconcerned complacency about this serious loss of public funds on the one hand and waste of time, energy and funds of students and their parents besides terrible frustration of their hopes and aspirations on the other."—*Report of the University Education Commission*, p 86

विभिन्न परीक्षाओं के फल (१६५५—५८)[1]

परीक्षा	सम्मिलित होने वाले	उत्तीर्ण होने वाले	प्रतिशत
इन्टर	३००४२३	३१७६	४४०
बी० ए०	७६६०	३७६६८	४७४
बी० एस-सी०	१२,०७	१४६६८	४६०
एम० ए०	१३२१४	६३१	७४
एम० एस-सी०	,१४२	४६	७८२
व्यावसायिक विषय	४८४४०	३४७७२	७१८

अपव्यय और अवरोधन के कारण तथा उनके निवारण के उपाय
(Causes of Wastage & Stagnation and Measures to Overcome Them)

१ कारण—दोषपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था (Faulty Administration of Education)

हमारी शिक्षा को पूर्णतया दोषपूर्ण [illegible] कहा जा सकता है। [illegible] की [illegible] प्रति [illegible] है [illegible] बालक के मानसिक [illegible] विकास करने का [illegible] कर सकें। [illegible] विद्यालय [illegible] [illegible] [illegible] अध्यापकों का अभाव है [illegible] और [illegible] में [illegible] शिक्षा-व्यवस्था का [illegible] है और न [illegible] की पूर्ण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

1 [illegible] (194 -61) pp. 975-100.

अपर्याप्त भवन और नीरस तथा उत्साह-हीन वातावरण—दुर्भाग्य से छात्रों को अध्ययन करते रहने के लिये प्रभावपूर्ण प्रेरणा न प्रदान कर सके।'[1]

उपचार—शिक्षा-व्यवस्था में सुधार (Reform in Administration of Education)

अपव्यय' एवं अवरोधन' का निराकरण करने के हेतु शिक्षा-व्यवस्था में त्वरित सुधार किया जाना अनिवार्य है। शिक्षालयों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाया जाय अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाय शिक्षा-उपकरणों में वृद्धि की जाय स्वस्थ पर्यावरण में शिक्षालय भवनों का निर्माण किया जाय, शिक्षालयों के वातावरण को आकर्षक बनाया जाय और छात्रों के मनोरंजन तथा खेल-कूद की उचित व्यवस्था की जाय। जब तक शिक्षालयों को इस प्रकार से संगठित नहीं किया जायगा तब तक वे शिक्षा के वास्तविक केन्द्र न बन सकेंगे और परिणामतः वे शिक्षा प्रसार का कार्य सफलता पूर्वक न कर सकेंगे।

२ कारण—दूषित वातावरण (Vicious Environment)

साधारणतः छात्रों को शिक्षालयों और उनसे बाहर दूषित वातावरण में अपना समय व्यतीत करना पड़ता है। किसी भी कक्षा में ऐसे बालकों का अभाव नहीं होता है जिनकी आदतें व्यवहार, बातचीत का ढङ्ग और अभिरुचियाँ निन्दनीय न हों। इस प्रकार के विद्यार्थी प्रति वर्ष कक्षा में उत्तीर्ण होने का कभी विचार ही नहीं करते हैं और अन्य छात्र भी उनके सम्पर्क में आकर विद्याध्ययन से जी चुराने लगते हैं।

शिक्षालयों से बाहर का वातावरण—विशेष रूप से नगरों में—अति विषाक्त हो गया है। ध्वनिप्रसारक यन्त्रों पर सुनाये जाने वाले अश्लील गीत चलचित्रों के उत्तेजक विज्ञापन चित्ताकर्षक अनूप खेल-तमाशे तथा सिनेमाघर कितने ही छात्रों के अध्ययन में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों में अपव्यय' एवं अवरोधन की समस्याओं का भविष्य में और अधिक विकराल रूप धारण कर लेना कोई आश्चर्य की बात न होगी।

कुछ विद्यार्थी इस प्रकार के भी होते हैं जिनमें विद्या देवी के उपासक बनने की प्रबल आकांक्षा होती है परन्तु उन्हें अपनी आकांक्षा को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर दुर्लभ हो जाता है। यदि वे पिछड़े वर्गों के

---

1 "The educational institutions being ill-equipped poorly housed and with dull and depressing environment unfortunately could not exercise effective counter-acting influence."
—*Education in India* 1955-56 p 64

निवासी हैं तो उन्हें अपने परिवार में विद्याध्ययन का वांछनीय वातावरण सुलभ नहीं हो पाता है। यदि वे किसी निर्धन सामान्य परिवार के सदस्य हैं तो उन्हें पारिवारिक व्यय की पूर्ति करने में योग प्रदान करने के लिये प्रातः एवं सायंकाल कोई कार्य करना पड़ता है।

उपचार—वातावरण में सुधार (Improvement in Environment)

छात्रों को शिक्षालय तथा उसके बाहर जिस दूषित वातावरण में अपना समय व्यतीत करना पड़ता है उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। इस कार्य को सरकार, जनता तथा अध्यापकों के सम्मिलित प्रयास से सम्पादित किया जा सकता। यदि ये तीनों अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए कटिबद्ध हो जायें तो वातावरण को निस्सन्देह रूप से परिवर्तित किया जा सकता। सरकार का कर्त्तव्य यह है कि वह छात्रों व अभिभावकों में समाज सुधार, सफाई, स्वास्थ्य, सहकारिता आदि के गुणों का विकास करे और उनके लिये सामाजिक शिक्षा, मनोरंजन तथा प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करे। सरकार को एक नियम बनाकर ध्वनि प्रसारक यन्त्रों द्वारा अश्लील गानों के सुनाये जाने, चलचित्रों के उत्तेजक विज्ञापन प्रदर्शित किये जाने और १८ वर्ष से कम आयु के लड़कों को सिनेमा घरों में प्रवेश पाने से वर्जित कर देना चाहिए। जनता का कर्त्तव्य है कि वह सरकार को इन कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिये तन मन से चेष्टा करे। जहाँ तक अध्यापकों का सम्बन्ध है वे अपने शिक्षालयों में शिक्षोपयोगी वातावरण का निर्माण करके अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं।

२. कारण—प्रभावहीन शिक्षण-पद्धति (Ineffective Method of Teaching)

अधिकांश विद्यालयों की शिक्षण-पद्धति छात्रों पर ईप्सित प्रभाव नहीं डाल पाती है। शिक्षण-पद्धति के दोषों के लिए अप्रशिक्षित एवं अकुशल अध्यापक, उचित शिक्षण-सामग्री का अभाव, स्थान की कमी, कक्षाओं में छात्रों की अधिकता जिसके फलस्वरूप शिक्षक छात्रों की ओर व्यक्तिगत ध्यान दिये जाने की असमर्थता और विभिन्न शिक्षण-विधियों के ज्ञान का अविकसितता उत्तरदायी है। शिक्षण-पद्धति के दोषपूर्ण होने के कारण उसका प्रभावहीन होना अनिवार्य है और फलस्वरूप छात्रों की शिक्षा में रुचि कम हो जाती है।

उपचार— नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति (New & Psychological Method of Teaching)

अपव्यय एवं अवरोधन के समाप्त करने के लिये विद्यालयों में नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति का प्रचलन अनिवार्य है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षित अध्यापक, पर्याप्त शिक्षा उपकरण, उत्तम विद्यालय भवनों आदि की उपस्थिति आवश्यक है। इतने विशाल देश में अल्प समय में इन सब की व्यवस्था कर देना सम्भव नहीं प्रतीत होता है। परन्तु यदि सरकार और देश के उदार हृदय धनी व्यक्ति शिक्षा के कार्य में पूर्ण हृदय से योग दें, तो कुछ ही वर्षों में इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पादित किया जा सकता है।

४ कारण— दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम (Defective Curriculum)

शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का एक अन्य कारण दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम है। पाठ्य-क्रम एक मार्गीय तथा कठोर है और उसमें विषयों का आधिक्य है। नगर तथा ग्राम के समस्त बालक बालिकाओं को एक ही पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पड़ता है, चाहे उन्हें उसमें रुचि हो अथवा नहीं। साथ ही पाठ्य-क्रम में किसी हस्त-कार्य को समाविष्ट करके उसे रोचक बनाने का प्रयास नहीं किया गया है। यद्यपि इस दिशा में सक्रिय पग उठाया जा रहा है तथापि अब भी ऐसे अनेकों प्राथमिक विद्यालय हैं जिनमें हस्तकार्य के शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। पाठ्य-क्रम में विषय इतने अधिक हैं कि बालकों के लिए उन सब का अध्ययन करना सरल तथा सम्भव नहीं होता है।

उपचार—पाठ्य क्रम में सुधार (Reform in Curriculum)

अपव्यय एवं अवरोधन का उन्मूलन करने के लिये पाठ्य क्रम में सुधार किया जाना आवश्यक है। किसी भी पाठ्य क्रम को एक अनिश्चित काल के लिये निश्चित नहीं माना जा सकता है। इसमें अनुभव तथा पर्यवेक्षण के आधार पर परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। अतः प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में स्थानीय वातावरण तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर परिवर्तन किया जाय। नगर तथा ग्राम के बालकों के लिये पृथक् पाठ्य-क्रम तैयार किए जायें और बालकों एवं बालिकाओं की आवश्यकताओं तथा रुचियों का ध्यान रखकर विषयों का निर्धारण किया जाय। सर्वोपरि [illegible] किया जाना चाहिए कि पाठ्य-क्रम रोचक [illegible] हो और [illegible] आवश्यक कार्यों को पूर्ण करने [illegible]

बालक की निर्माणकारी एवं सामञ्जस्य काम करने की आन्तरिक मनोभावना को सन्तुष्ट कर सकें।

५ कारण—दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective System of Examination)

लगभग ५० प्रतिशत छात्र परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण रहते हैं। इसका दोष दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली पर दिया जाता है न कि विद्यार्थियों पर। विद्यार्थी एक वर्ष तक कक्षा में जो कार्य करता है उस पर किसी प्रकार का भी विचार उनकी उन्नति देने के समय नहीं किया जाता है अपितु वार्षिक परीक्षा के आधार पर जो मुख्य रूप से छात्रों की स्मरण अथवा उनकी रटने की शक्ति की कसौटी होती है उनकी कक्षा उन्नति का निर्णय किया जाता है।

उपचार—परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Change in Examination System)

प्रचलित परीक्षा प्रणाली में समाविष्ट दूषणों का उन्मूलन करने के लिए इसमें आमूल परिवर्तन किया जाना चाहिए। छात्रों की उन्नति वर्ष के कार्य के आधार पर दी जानी चाहिए न कि वार्षिक परीक्षा के। श्री पारुलेकर (Parulekar) के इस कथन पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना चाहिए "विद्यालयों की स्थापना इसलिए की जाती है जिससे कि बच्चों को शिक्षा दी जाय न कि उन्हें परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण किया जाय।" जब तक हम वर्तमान परीक्षा प्रणाली में संशोधन करके वास्तविक शिक्षा के सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं करेंगे तब तक छात्र बड़ी संख्या में अनुत्तीर्ण होते रहेंगे और परिणामस्वरूप अपव्यय भी वर्तमान रूप में प्राप्त होता रहेगा। पर इतना आवश्यक बना रहेगा।

पूर्व काल व ग्राम में पहुँच जाते हैं। जन्म लेने वाले बच्चों में से आधे कभी भी १० वर्ष की आयु को नहीं प्राप्त कर पाते हैं।'[1] ऐसी दशा में हमारे छात्रों की शारीरिक दुर्बलता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। दुर्बल तथा अस्वस्थ रहने के कारण वे अनवरत रूप से अध्ययन नहीं कर पाते हैं और फलस्वरूप प्रायः एक वर्ष का पाठ्यक्रम दो या अधिक वर्षों में समाप्त करते हैं।

उपचार—छात्रों की स्वास्थ्य-उन्नति (Improvement in Pupils' Health)

छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति की ओर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जाना है। आज के बालक—भविष्य के नागरिक हैं। आज जब कि संसार तृतीय विश्व युद्ध के काले बादलों से आच्छादित हो रहा है, देश की सुरक्षा के लिये बलिष्ठ सैनिकों की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब बालकों के स्वास्थ्य के प्रति उनके बाल्यकाल से ही ध्यान दिया जाय। अतः सरकार पर यह दायित्व है कि वह उनके लिये पौष्टिक आहार की व्यवस्था करे। आज के सभी प्रगतिशील देशों ने छात्रों के लिए किसी न किसी रूप में पौष्टिक भोजन की व्यवस्था कर दी है। यदि भारत की निर्धन जनता के बच्चों के लिए कोई ऐसी योजना क्रियान्वित कर दी जाय तो उनके स्वास्थ्य की अवश्य उन्नति होगी और इस कारण से फलस्वरूप होने वाला अवरोधन शून्य हो जायगा।

७. कारण—अभिभावकों की अशिक्षा (Illiteracy of Guardians)

बम्बई राज्य में किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि पिछड़ी हुई जातियों के बच्चों में अधिक अपव्यय है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन बच्चों के अभिभावकों में शिक्षा का अभाव है। स्वयं शिक्षित न होने के कारण वे अपने बच्चों की शिक्षा का भी सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व समझने में विफल रहते हैं। अतः शिक्षा का मूल्य समझ कर वे यदि अपने बच्चों को शिक्षा उपलब्ध करने के लिए विद्यालयों में प्रविष्ट भी करा देते हैं तो भी कुछ समय उपरान्त वे उन्हें वहाँ से हटाकर उनके साथ अपने ही काम में

1 India's strength is sapped by the constant ill health of her people ... One quarter of all babies die before they are one year old and four out every ten die before they are five. Half the babies born never reach the age of ten. —James H. Manning, Mask & Dagger, the Killers, p. 75

हिकर शिक्षा कार्य में लगा देते हैं। जो बात हम पिछड़ी हुई जातियों के अभिभावकों के सम्बन्ध में कह जा सकती है वही भारत की अधिकांश जनता के विषय में भी सत्य है क्योंकि आज भी हमारे देश के मस्तक पर निरक्षरता की कलंक कालिमा लगी हुई है।

उपचार—अभिभावकों की शिक्षा (Education of Guardians)

अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के महत्त्व को तभी हृदयंगम कर सकेंगे और तभी वे उनको कम से कम प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य क्रम को पूरा करने की अनुमति प्रदान करेंगे जब वे स्वयं शिक्षित होंगे। अतः अभिभावकों को शिक्षित करने के लिये रात्रि-पाठशालाओं, प्रौढ़ विद्यालयों और अल्पकालिक विद्यालयों (Part time Schools) की स्थापना की जानी चाहिये। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है। १९५५-५६ में ९१,२१४ पुरुषों और ५३,९८७ स्त्रियों को साक्षर बनाया गया और उनकी शिक्षा पर ६६,८६,५६२ रुपया व्यय किया गया।[1] द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस कार्य को अधिक प्रोत्साहन देने के लिए लगभग १ करोड़ रुपया व्यय किया गया और तृतीय योजना में लगभग १२ करोड़ रुपये की धनराशि निर्धारित की गई है।[2]

८ कारण—आर्थिक कठिनाइयाँ (Financial Handicaps)

आर्थिक कारण भी अपव्यय एवं अवरोधन के लिए उत्तरदायी है। सत्य तो यह है कि प्राथमिक शिक्षा में होने वाले ६० प्रतिशत अपव्यय का कारण भारतीय जनता की प्रतिकूल आर्थिक परिस्थिति ही है।[3] इस दरिद्रता [illegible] निर्धनता के कारण तथा मजदूरी के लालच में [illegible] कि यदि उनके बच्चों के लिये शिक्षा निःशुल्क भी कर दी जाय तो भी उनके लिए कपड़ा किताब तथा शिक्षा से सम्बद्ध [illegible] के लिए धन जुटाने में भारत की अधिकांश जनता असमर्थ पाती है। फिर उनके समक्ष निरन्तर यह प्रश्न उपस्थित रहता है कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें अथवा उन्हें आर्थिक [illegible] में लगा दें। जैसा कि [illegible] है वे [illegible] विचार कर ही निर्णय करते हैं [illegible] [illegible] है। [illegible] इस बात को स्पष्ट [illegible] है। [illegible]

बालिकाओं की शिक्षा का प्रश्न है उनको अधिक से अधिक अ य स का ज्ञान कराने के उपरान्त विद्यालयों से पृथक कर लिया जाता है। ऐसा किये जाने के समय अभिभावक उचित विचार नहीं करते हैं कि बालिकाओं को शिक्षित करने से परिवार का कोई आर्थिक हित नहीं होगा। इसके लिये अभिभावकों पर दोषारोपण करना व्यर्थ है क्योंकि जिस सामाजिक वातावरण म य पल और बढ़ हुए है उसम उन्होंने ऐसा ही देखा और सुना है।

उपचार—व्यक्ति की आय मे वृद्धि और मूल्यों पर अंकुश (Increase In Individual's Income & Control on Prices)

अभिभावकों की आर्थिक कठिनाइयों का निवारण अति आवश्यक है क्योंकि इनके कारण शिक्षा म अत्यधिक अपव्यय एव अवरोधन हो रहा है। भारत सरकार इस दिशा म प्राण प्रण से चेष्टा कर रही है। देश का औद्योगीकरण किया जा रहा है और अन्न तथा कृषि-सम्बन्धी अन्य पदार्थों के उत्पादन म वृद्धि की जा रही है। देश के आर्थिक विकास का जो अनवरत प्रयास किया जा रहा है उसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति की आय म पर्याप्त वृद्धि हो गई है। १९४८ ४९ म प्रति व्यक्ति की आय २४६ ९ रुपए थी। १९६० ६१ म यह आय बढ़कर ३२७ १ रुपए हो गई है।[1] निस्सन्देह आय की इस वृद्धि से जनता की आर्थिक कठिनाइयों का बहुत कुछ निवारण हो सकता है परन्तु विचारणीय बात यह है कि क्या यह वृद्धि जीवन की आवश्यक वस्तुओं के द्रुत गति से बढ़ते हुए मूल्यों के अनुपात म पर्याप्त होगी? अनेक वस्तुओं के मूल्यों म १०० प्रतिशत स कहीं अधिक वृद्धि हो चुकी है। गत कुछ वर्षों का अनुभव बताता है कि मध्य तथा निम्न वर्ग के व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति पूर्व की अपेक्षा अधिक शोचनीय हो गई है। क्या इस परिस्थिति के फलस्वरूप सामान्य जनता की आर्थिक कठिनाइयों से मुक्ति की आशा की जा सकती है? यदि नहीं तो शिक्षा म अपव्यय एव अवरोधन के समाप्त होने की आशा करना केवल काल्पनिक तथा निराधार है। आर्थिक कठिनाइयों स मुक्ति केवल सरकार की सतर्कता से प्राप्त हो सकती है और इस दिशा म प्रथम पग होगा—निरन्तर बढ़ते हुए मूल्यों पर अंकुश लगाना। यदि सरकार यह नहीं करती है तो राष्ट्रीय उन्नति तथा सर्वविकास की योजनाओं के बावजूद भी जनसाधारण की आर्थिक समस्या का हल न होगा और शिक्षा म होने वाला अपव्यय तथा अवरोधन अपने स्थान पर विराजमान रहेंगे।

---

1 [illegible] 1962 p 161

६ कारण—सामाजिक कुरीतियाँ (Social Evils)

रूढ़िवादिता पर आधारित भारतीय समाज अपव्यय एवं अवरोधन में अतिशय योग दे रहा है। आज के आधुनिक युग में भी देश के प्रत्येक कोने में अनेक हास्यास्पद सामाजिक कुरीतियों का बोलबाला है। बालक तथा बालिकाओं की सह शिक्षा को सन्देह दृष्टि से देखा जाता है। फलस्वरूप यदि एक स्थान पर बालिकाओं की शिक्षा के लिये पृथक व्यवस्था नहीं है तो उनको शिक्षा से वंचित रखा जाता है और यदि सौभाग्य से किसी विद्यालय में प्रवेश पा चुकी है तो [illegible] आयु अधिक हो जाने पर ही उन्हें सरस्वती की आराधना समाप्त करने के लिये बाध्य कर दिया जाता है। फिर बाल विवाह की एक ऐसी दूषित प्रथा है जो अनेक बालिकाओं को ही नहीं अपितु कुछ बालकों को भी शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण करने से पूर्व ही उसकी ओर से मुख मोड़ने के लिये अधिकाधिक [illegible] देती है। इन कारणों से [illegible] अपव्यय एवं अवरोधन होता है [illegible] कम है परन्तु तथा [illegible] हिन्दुओं और साधारण [illegible] में अति शोचनीय है।

उपचार—कुछ सुझाव (Some Suggestions)

जिस प्रकार आर्थिक कठिनाइयों ने 'अपव्यय एवं अवरोधन' के उन्मूलन में गतिरोध उपस्थित कर रखा है उसी प्रकार हमारे समाज की दुर्बलता—ऐसी दुर्बलता [illegible] किस प्रकार के कार्य का समर्थन किये गए हैं।' इस की सामाजिक आर्थिक संरचना जिसमें बालक मजदूरी करते हैं अपव्यय एवं अवरोधन में योग प्रदान करने वाला एक कारक है। इस व्यवस्था में केवल बालक को मजदूरी करने से रोककर परिवर्तन नहीं किया जा सकता है क्योंकि रूढ़िवादिता पर आधारित हमारे समाज में स्त्री शिक्षा की विरोधी भावना, बाल विवाह तथा मानसिक [illegible] इतनी गहरी पैठ चुकी है कि उनको समूल नष्ट करके शिक्षा [illegible] अपव्यय एवं अवरोधन [illegible] नहीं बन पड़ता है। समाज में व्याप्त शिक्षा विरोधी इन समस्याओं के निराकरण के लिए दो ही उपाय हो सकते हैं—(१) तो समाज में [illegible] पुनर्गठन [illegible] या फिर (२) तो समाज के इन [illegible] उन्मूलन किया जाय। द्वितीय मार्ग [illegible] अधिक [illegible] है पर

इसका दायित्व देश के युवक युवतियों पर है। यदि वे कमर कसकर इन समस्याओं से मोर्चा लें तो वे जनता में नवीन चेतना और देश में नवीन युग का सूत्रपात कर सकते हैं। उनके इसी कार्य पर उपर्युक्त सामाजिक दुर्गुणों के फलस्वरूप होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन की इतिश्री हो सकती है।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Explain fully what is meant by wastage and 'stagnation in Primary Education
2. How do you account for wastage and stagnation in Primary Education in India ? What measures should be taken to overcome them ?
3. What are the causes of wastage and stagnation in Secondary Education in India ? How would you combat them ?
4. Define 'wastage and stagnation To what extent are they present in Higher Education in India ?

— इति शुभम् —